प्रथमावृत्ति
८००

वीर संवत् २४६४
विक्रम संवत् २०२५
ईस्वी सन् १९६८

स्वल्प मूल्य १-५०

मुद्रक-श्री जैन प्रिंटिंग प्रेस सैलाना (म प्र)

सस्कृति रक्षक सघ साहित्य रत्नमाला का २५ वां रत्न

जैन सिद्धांत थोक संग्रह

भाग २

द्रव्य-सहायक—

श्रीमान् सेठ हस्तीमलजी जेठमलजी बागरेचा
गढसिवाना (मारवाड)

प्रकाशक—

श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी
जैन सस्कृति-रक्षक सघ
सैलाना (म प्र)

प्रथमावृत्ति
८००

वीर सवत् २४६४
विक्रम सवत् २०२५
ईस्वी सन् १६६८

स्वल्प मूल्य १—५०

मुद्रक—श्री जैन प्रिंटिंग प्रेस सैलाना (म प्र)

प्रकाशकीय निवेदन

जैनसिद्धात थोक सग्रह प्रथम भाग प्रकाशन के दो वर्ष वाद यह दूसरा भाग छप रहा है। इसकी सामग्री भी प्रिय दढ धर्मी तत्त्ववेत्ता श्रीमान सेठ धीगडमलजी सा गिडिया जोधपुर की चुनी हुई है। इसमे आठ थोकडो का सग्रह हुआ है। जिनेश्वर भगवतो का ज्ञान असीम—अनन्त है। साहित्य विशाल है। फिर भी इन दो भागो मे आवश्यक थाकडा का सग्रह हो गया है। इनका अभ्यास करलेने पर मनुष्य जैन तत्त्वज्ञान का ज्ञाता हो सकता है।

इस प्रकाशन का सम्पूण व्यय श्रीमान सेठ हस्तीमलजी जेठमलजी जिनाणी वागरेचा गढमिवाना निवासी ने प्रदान किया है। श्रीमान् हस्तीमलजी साहब वडे ही धर्मात्मा, सम्यग्-ज्ञान से युक्त एव दढश्रद्धावान सुश्रावक ह। आप स्वय थोक ज्ञान के प्रेमी एव धम साधक हैं।

श्रीमान् जेठमलजी साहव भी अच्छे धम साधक, शान्त, सरल, उदार एव धमप्रिय है। व्रत, त्याग, तप आदि करते रहते हैं। इस पुस्तक के प्रकाशन की वात गत पर्युपण पर्वाधि राज पर खीचन मे निकली, तव आपने विना प्रेरणा के ही अपनी इच्छा से कह दिया कि—'इसका प्रकाशन व्यय मैं दूगा।" भगव-वती सूत्र भाग ३ मे भी आपका अच्छा योगदान हुआ है। आप की उदारता अन्य वहुतो के लिए अनुकरणीय है। आपकी इस उदारता का जितना अधिक लाभ लिया जाय—थोडा है।

सैलाना
अक्षय ततीया, वीर स २४९४
वि स २०२५
ता ३०-४-६५

रतनलाल डोशी
प्रधान मन्त्री—
अ भा साधुमार्गी
जैन सस्कृति रक्षक सघ

विषयानुक्रमाणिका—

प्रकाशकीय निवेदन

जैनसिद्धात थोक सग्रह प्रथम भाग प्रकाशन के दो वप वाद यह दूसरा भाग छप रहा है। इसकी सामग्री भी प्रिय दढ धर्मी तत्त्ववेत्ता श्रीमान सेठ धीगडमलजी सा गिडिया जोधपुर की चुनी हुई है। इसमे आठ थोकडो का सग्रह हुआ है। जिनेश्वर भगवतो का ज्ञान असीम–अनन्त है। साहित्य विशाल है। फिर भी इन दो भागो मे आवश्यक थाकडो का सग्रह हो गया है। इनका अभ्यास करलेने पर मनुष्य जैन तत्त्वज्ञान का ज्ञाता हो सकता है।

इस प्रकाशन का सम्पूण व्यय श्रीमान सेठ हस्तीमलजी जेठमलजी जिनाणी बागरेचा गढसिवाना निवासी ने प्रदान किया है। श्रीमान् हस्तीमलजी साहब वडे ही धर्मात्मा, सम्यग्-ज्ञान से युक्त एव दढश्रद्धावान सुश्रावक है। आप स्वय थोक ज्ञान के प्रेमी एव धम साधक हैं।

श्रीमान् जठमलजी साहव भी अच्छे धम साधक, शान्त, सरल, उदार एव धमप्रिय है। व्रत, त्याग, तप आदि करते रहते हैं। इस पुस्तक के प्रकाशन की बात गत पर्युपण पर्वाधिराज पर खीचन मे निकली, तब आपने बिना प्रेरणा के ही अपनी इच्छा मे कह दिया कि–'इसका प्रकाशन व्यय मैं दूगा।" भगवती सूत्र भाग ३ मे भी आपका अच्छा यागदान हुआ है। आप की उदारता अन्य बहुतो के लिए अनुकरणीय है। आपकी इस उदारता का जितना अधिक लाभ लिया जाय–थोडा है।

सैलाना
अक्षय तृतीया, वीर स २४९४
वि स २०२५
ता ३०–४–६५

रतनलाल डोशी
प्रधान मन्त्री–
अ भा साधुमार्गी
जैन सस्कृति रक्षक सघ

विषयानुक्रमणिका

जैन सिद्धांत थोक संग्रह

भाग २

लघुदंडक

चौबीस दडक के नाम–

गाथा–नेरइआ असुराई, पुढवाई बेइंदियादओ चेव ।
पचिंदियतिय नरा, वतर जोइसिय वेमाणी ॥१॥

अथ–१ नेरइआ–सात नारकी का एक दण्डक । २–११ असुराई–असुरकुमारादि दस भवनपति के दस दण्डक १२–१६ । पुढवाई–पथ्वीकायादि पाच स्थावर के पाच दण्डक । १७–१६ बेइंदियादओ–बेइन्द्रियादि तीन विकलेंद्रिय के तीन दण्डक । २० पचेंदियतियनरा–पचेंद्रिय तियञ्च का एक दण्डक तथा २१ मनुष्य का एक दण्डक । २२ वतर–व्यन्तर देव–वाण व्यन्तर देव का एक दण्डक । २३ जोइसिय–पाच ज्योतिषी देवता का एक दण्डक । २४ वेमाणी–वैमानिक देवता का एक दण्डक । ये चौबीस दण्डक हुए ।

सग्रहणी गाथाएँ–

सरीरोगाहण सघयण-सठाण-कसाय तह य हुति सन्नाओ ।
लेसिंदिय-समुग्घाए सन्नी वेए य पज्जत्ती ॥१॥
दिट्ठी दसण नाणे जोगुवओगे तहा किमाहारे ।
उववाय ठिई समुग्घाय चवण गइरागई चेव ॥२॥
पाणे जोगे ।

अथ–१ शरीर २ अवगाहना ३ सहनन ४ सस्थान ५ कपाय ६ सज्ञा ७ लेश्या ८ इद्रिय ९ समुदघात १० सज्ञी ११ वेद १२ पर्याप्ति १३ दष्टि १४ दशन १५ ज्ञान १६ योग १७ उपयोग १८ आहार १९ उत्पाद २० स्थिति २१ समुद्घात २२ च्यवन २३ गतिआगति २४ प्राण और २५ योग–ये पच्चीस द्वार हैं ।

१ शरीर द्वार–

शरीर–शीण होने वाला अर्थात विनाश होने वाला है, इसलिए इसको शरीर कहते हैं । इसके पाच भेद हैं–१ औदारिक, २ वक्रिय, ३ आहारक ४ तैजस और ५ कामण ।

१ उदार अर्थात प्रधान अथवा स्थूल पुदगलो से बना हुआ शरीर– औदारिक' कहलाता है ।

तीथकर और गणधरो का शरीर प्रधान पुदगलो से बनता है १ साधारण और सवसाधारण का शरीर स्थूल साधारण पुदगलो से बनता है । मनुष्य और तियञ्च को औदारिक शरीर प्राप्त होता है ।

२ जिस शरीर से विविध क्रियाएँ होती है, उसे वैक्रिय शरीर कहते है।

विविध क्रियाएँ ये है–एक स्वरूप धारण करना, अनेक स्वरूप धारण करना, छोटा शरीर धारण करना, बडा शरीर धारण करना, आकाश मे चलने योग्य शरीर धारण करना, भूमि पर चलने योग्य शरीर धारण करना, दृश्य शरीर धारण करना, अदृश्य शरीर धारण करना, इत्यादि अनक प्रकार की अवस्थाओ को वैक्रिय शरीरधारी जीव कर सकता है।

वक्रिय शरीर दो प्रकार का है,–(१) औपपातिक और (२) लब्धिप्रत्यय।

देव और नारको का शरीर 'औपपातिक' कहलाता है अर्थात उनको जन्म से ही वक्रिय शरीर मिलता है। लब्धिप्रत्यय शरीर तियञ्च और मनुष्यो को होता है। मनुष्य और तियञ्च तप आदि के द्वारा प्राप्त की हुई शक्ति विशेष से वैक्रिय शरीर प्राप्त कर लेते हैं।

३ चतुदश पूवधारी मुनि, अन्य क्षेत्र मे वत्तमान तीर्थंकर से अपना सदेह निवारण करने के लिए अथवा उनका ऐश्वय देखने के लिए जब उस क्षेत्र को जाना चाहते है तब लब्धिविशेष से जघन्य देशोन एक हाथ उत्कृष्ट एक हाथ प्रमाण अति विशुद्ध स्फटिक के समान निमल जो शरीर निकालत है, उस शरीर को 'आहारक शरीर' कहते है।

४ तैजस् पुद्गलो से बना हुआ शरीर 'तैजस्' कहलाता

है। इस शरीर की उष्णता से खाये हुये अन्न का पाचन होता है और कोई कोई तपस्वी जो क्रोध से तेजालेश्या के द्वारा औरो को हानि पहुँचाता है, तथा प्रसन्न होकर शीतललेश्या के द्वारा लाभ पहुँचाता है, वह इसी तजस् शरीर के प्रभाव से समझना चाहिए अर्थात् आहार के पाचन का हेतु तथा तेजोलेश्या और शीतललेश्या के निगमन का हेतु जो शरीर है, वह 'तैजस शरीर' कहलाता है।

५ कर्मो का बना हुआ शरीर 'कामण शरीर' कहलाता है, अर्थात जीव के प्रदेशो के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कम पुदगला को कामण शरीर कहते है। यह कामण शरीर सब शरीरो का बीज है। इसी शरीर से जीव अपने मरणदेश को छोड कर उत्पत्ति स्थान को जाता है।

समस्त ससारी जीवो के तैजसशरीर और कामणशरीर, ये दो शरीर अवश्य होते है।

२ अवगाहना द्वार

जीव का शरीर जितने आकाश प्रदेशो को अवगाहे (रोके) उसको अवगाहना कहते हैं। वह जघन्य अगुल के अस-ख्यातवे भाग, और उत्कृष्ट १००० योजन झाझेरी (कुछ अधिक), उत्तर वक्रिय करे, ता जघ य अगुल के असख्यातवें भाग उत्कृष्ट एक लाख योजन झाझेरी ।

३ सहनन द्वार

हड्डियों की रचना विशप का 'सहनन' कहते हैं। इसके

छ भेद हैं।

(१) वज्रऋषभ नाराच सहनन–वज्र का अर्थ कील है ऋषभ का अथ वेप्टन–पट्ट (पट्टी) है और नाराच का अर्थ दोनो ओर से मकट बन्ध है। जिस सहनन मे दोनो ओर से मकट बन्ध द्वारा जुडी हुई दो हड्डियो पर तीसरी पट्ट की आकृति वाली हड्डी का चारो ओर से वेप्टन हो और जिसमे इन तीनो हड्डियो को भेदने वाली वज्र नामक हड्डी की कील हो, उसे 'वज्र ऋषभ नाराच सहनन' कहते है।

(२) ऋषभ नाराच सहनन–जिस सहनन मे दोनो ओर से मक्ट-बन्ध द्वारा जुडी हुई दो हड्डियो पर तीसरी पट्ट की आकृति वाली हड्डी का चारो ओर से वेप्टन हो, परतु तीनों हड्डियो को भेदने वाली वज्र नामक हड्डी की कील नही हो, उसे 'ऋषभ नाराच सहनन' कहते है।

(३) नाराच सहनन–जिस सहनन मे दोनो ओर से मकट बन्ध द्वारा जुडी हुई हड्डिया हो, परतु इनके चारो ओर वेप्टन–पट्ट और वज्र नामक कील नही हो उसे 'नाराच सहनन' कहते हैं।

(४) अधनाराच सहनन–जिस सहनन मे एक ओर तो मकट बन्ध हो और दूसरी ओर कील हो, उसे 'अध नाराच' सहनन कहत हैं।

(५) कीलिका सहनन–जिस सहनन मे हड्डिया केवल कील से जुडी हुई हो, उसे 'कीलिका सहनन' कहते है।

(६) सेवात्तक सहनन–जिस सहनन मे हड्डिया पयन्त-

भाग मे एक दूसरे को स्पश करती हुई रहती है तथा सदा चिकने पदार्थो के प्रयोग एव तलादि की मालिश की अपेक्षा रखती हैं, उसे 'सेवात्तक सहनन' कहते है।

४ सस्थान द्वार

नामकम के उदय से बनने वाली शरीर की आकृति को 'सस्थान' कहते हैं। उसके छह भेद है–

१ समचतुरस्र (समचोरस) ऊपर नीचे तथा बीच मे समभाग से शरीर की सुन्दराकार आकृति को 'समचोरस सस्थान' कहते हैं।

२ न्यग्रोधपरिमण्डल–वट वृक्ष के समान शरीर की आकृति अर्थात नाभि से ऊपर का भाग त्रिकलक्षणोपेत पूण प्रमाण हो और नाभि से नीचे का भाग हीन हो उसे 'न्यग्रो घपरिमडल सस्थान' कहते हैं।

३ सादि–ऊपर वाले लक्षण से बिलकुल विपरीत हो, जसे साप की बाबी, अर्थात नाभि से नीचे का भाग उत्तम प्रमाण वाला हो और नाभि से ऊपर का भाग हीन हो, उसे 'सादि सस्थान' कहते है।

४ कुब्जक (कुवडा)–जिस शरीर के हाथ, पाव, मुख और ग्रीवादिक उत्तम हो और हृदय, पेट, पीठ अधम (हीन) हो, उसे 'कुब्जक सस्थान' कहत हैं।

५ वामन–बौना शरीर हो अर्थात जिस शरीर मे हाथ, पाव आदि अवयव हीन हो और छाती, पेट आदि पूण हो, उसे 'वामन सस्थान' कहत हैं।

६ हुण्डक–जिस शरीर मे सभी अगोपाग किसी खास आकृति के न हो (खराब हो) उसे 'हुण्डक सस्थान' कहते है ।

५ कपाय द्वार

क्रोधादि रूप आत्मा के विभाव परिणामो को 'कपाय' कहते हैं । इसके चार भेद हैं–१ क्रोध, २ मान, ३ माया और ४ लोभ ।

६ सज्ञा द्वार

आहारादि की अभिलाषा करना 'सज्ञा' है । इसके चार भेद हैं–

१ आहार सज्ञा, २ भय सज्ञा, ३ मथुन सज्ञा और ४ परिग्रह सज्ञा ।

७ लेश्या द्वार

योग की प्रवत्ति से उत्पन्न आत्मा के शुभाशुभ परिणाम का 'लेश्या' कहते है । इसके छह भेद हैं–१ कृष्ण लेश्या, २ नील लेश्या, ३ कापोत लेश्या, ४ तेजो लेश्या ५ पद्म लेश्या और ६ शुक्ल लश्या ।

८ इन्द्रिय द्वार

आत्मा के चिन्ह को 'इद्रिय' कहते हैं । इसके पाच भेद है–

१ श्रोत्र इद्रिय (कान), २ चक्षु इद्रिय (आख), ३ घ्राण इद्रिय (नाक), ४ रसना इद्रिय (जीभ) और ५ स्पशन इद्रिय (सपूण शरीर व्यापी त्वचा) ।

९ समुद्घात द्वार

मूल शरीर को बिना छोडे जीव के प्रदेशो का बाहर निकलना 'समुदघात' कहाता ह । इसके सात भेद हैं । यथा–

१ वेदनीय, २ कषाय, ३ मारणान्तिक, ४ वक्रिय, ५ तैजस, ६ आहारक और ७ केवली ।

१० सज्ञी द्वार

जिसके मन हो, उसे 'सज्ञी' और जिसके मन नही हो, उसे 'असज्ञी' कहते हैं ।

११ वेद द्वार

नाम कम के उदय से होने वाले शरीर के स्त्री, पुरुष, और नपुसक रूप चिन्ह को 'द्रव्य वेद' कहते हैं और मोहनीय कम के उदय से जीव की विषयभोग की अभिलाषा को 'भाव वेद' कहते है । उसके तीन भेद ह–१ स्त्री वेद, २ पुरुष वेद, ३ नपुसक वेद ।

१२ पर्याप्ति द्वार

आहारादि के पुदगलो को ग्रहण करने तथा उन्हे आहार शरीरादि रूप परिणमाने की आत्मा की शक्ति विशेष को 'पर्याप्ति' कहते ह । इसके छह भेद ह–१ आहार पर्याप्ति २ शरीर पर्याप्ति, ३ इन्द्रिय पर्याप्ति, ४ श्वासोच्छवास पर्याप्ति, ५ भाषा पर्याप्ति और ६ मन पर्याप्ति ।

१३ दृष्टि द्वार

तत्त्व विचारणा की रुचि को 'दृष्टि' कहते हैं इसके

तीन भेद हैं–

१ सम्यग्दष्टि–दशनमोहनीय कम का उपशम, क्षय या क्षयोपशम हाने पर जो जीवादि तत्त्वो की यथाथ श्रद्धा उत्पन्न होनी है उसे 'सम्यग्दृष्टि' कहते है।

२ मिथ्यादष्टि–दशनमोहनीय कम के उदय से जो जीवादि तत्त्वो की विपरीत श्रद्धा होती है, उसे 'मिथ्यादृष्टि' कहते ह।

३ सम्यग्मिथ्यादष्टि (मिश्र)–मिश्र मोहननीय कर्म के उदय से कुछ सम्यक और कुछ मिथ्यात्वरूप मिश्रित परिणाम होता है, उसे 'सम्यग्मिथ्यात्व' कहते हैं। शक्कर मिले हुए दही के खाने से जसे खटमीठा मिश्ररूप स्वाद आता है, वैसे ही जो सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दोनो से मिला हुआ परिणाम होता है, उसे 'सम्यग्मिथ्यादृष्टि' कहते ह।

१४ दर्शन द्वार

जिसमे महासत्ता का सामान्य प्रतिभास (निराकार झलक) हो, उमे 'दशन' कहते ह। दशन के चार भेद हैं–

१ चक्षु दशन–नेत्रजन्य मतिज्ञान से पहिले होने वाले सामान्य प्रतिभास या अवलोकन को 'चक्षु दशन' कहते ह।

२ अचक्षु दशन–नेत्र के सिवाय दूसरी इन्द्रियो और मन सम्बन्धी मतिज्ञान के पहले होने वाले सामान्य अवलोकन को 'अचक्षु दशन' कहते ह।

३ अवधि दशन–अवधिज्ञान से पहले होने वाले सामान्य

अवलोकन को 'अवधि दशन' कहते हैं।

४ केवल दशन–केवलज्ञान के बाद होने वाले सामान्य धम के अवलोकन (उपयाग) का 'केवल दशन' कहते ह।

१५ ज्ञान द्वार

किसी विवक्षित पदाथ के विशेष धम को विषय करने वाला 'ज्ञान' कहाता है। उसके दो भेद हैं–सम्यग्ज्ञान, मिथ्याज्ञान। सम्यग्ज्ञान के पाच भेद है–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पययज्ञान और केवलज्ञान।

१ मतिज्ञान–इन्द्रिय और मन की सहायता से जो ज्ञान हो, उसे 'मतिज्ञान' कहते हैं।

२ श्रुतज्ञान–मतिज्ञान से जाने हुए पदाथ से सम्बध लिये हुए किसी दूसरे पदाथ के ज्ञान को 'श्रुतज्ञान' कहते हैं। जैसे "घट" शब्द सुनन के अनतर उत्पन्न हुआ कंबुग्रीवादि रूप घट का ज्ञान।

३ अवधिज्ञान–द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिय हुए जो रूपी पदाथ का स्पष्ट जाने।

४ मन पययज्ञान–द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा को लिये हुए जो दूसरे के मन मे रहे हुए रूपी पदाथ को स्पष्ट जाने।

५ केवलज्ञान–जो त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को हस्तामलकवत स्पष्ट जाने।

मिथ्याज्ञान के तीन भेद ह–१ मतिअज्ञान, २ श्रुतअज्ञान

३ विभगज्ञाना–ये तीन अज्ञान है ।

१६ योग द्वार

मन वचन और काया की प्रवृत्ति को 'योग' कहते हैं । इाके पद्रह भेद हैं–४ मन के, ४ वचन (भापा) के और ७ काया के । मन के चार भेद इस प्रकार हैं–१ सत्य मनयोग, २ असत्य मनयाग, ३ मिश्र मनयोग और ४ व्यवहार मनयाग । वचन (भापा) के चार भेद इस प्रकार हैं–१ सत्य वचन योग, २ असत्य वचन योग, ३ मिश्र वचन योग और ४ व्यवहार वचन योग । काया के सात भेद इस प्रकार ह–१ औदारिक-शरीर काय-योग २ औदारिक मिश्रशरीर काययाग, ३ वैक्रिय शरीर काय योग, ४ वैक्रियमिश्र शरीर काययोग ५ आहारक शरीर काययोग, ६ आहारकमिश्र शरीर काययाग ७ कामणशरीर काययोग ।

१७ उपयोग द्वार

ज्ञान और दशन मे होती हुई आत्म प्रवृत्ति को 'उपयोग' कहते हैं । मक्षेप मे उपयोग के दो भेद ह–१ साकारोपयोग और २ अनाकारोपयोग । ये सभी दडको मे मिल्ते ह । विस्तार से उपयोग के वारह भेद हैं–५ ज्ञानोपयोग, ३ अनानोपयोग और ४ दशनोपयोग ।

१८ आहार द्वार

जीव किस प्रकार के पुदगलो का आहार करता है ? २८८ प्रकार के पुद्गलो का आहार करता है ।

१६ उपपात द्वार

जीव पूर्वभव से आकर उत्पन्न हो उसे 'उपपात' कहते है। उसका प्रमाण–एक समय मे १–२–३ यावत् सरयाता, असरयाता और अनन्ता है।

२० स्थिति द्वार

जीव जितने काल तक जिस भव की पर्याय को धारण करे, उसे 'स्थिति' कहते है। उसका प्रमाण–जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम।

२१ समोहया असमोहया द्वार

समोहया मरण–जो ईलिका गति समुदघात करके मरे, *अर्थात कीडी की कतार की तरह जीव के प्रदेश पथक पथक* निकलें, उसे 'समोहया मरण' कहते हैं। असमोहया मरण–जो गेंद (दडी) के उछलने की गति से समुदघात करके मरे अर्थात् बन्दूक की गोली के समान जीव के प्रदेश एक साथ निकल उसे 'असमोहयामरण' कहते ह।

२२ चवण द्वार

जीव वर्त्तमान भव को छोडकर अन्य भव की पर्याय को धारण करे, उसे च्यवन कहते हैं। इसका प्रमाण एक समय मे–१–२–३ यावत सरयाता, असख्याता और अनन्ता।

२३ गति आगति द्वार

जीव मर कर भवान्तर मे जावे उसे 'गति' कहते हैं।

इसके पाच भद हैं–१ नारकी, २ तिर्यंच, ३ मनुष्य ४ देवता और ५ सिद्ध गति । आगति–भवान्तर से आकर उत्पन्न होने को 'आगति' कहते हैं। उसके चार भेद हैं–१ नारकी, २ तिर्यंच, ३ मनुष्य और ४ देवता । दडक की अपेक्षा २४ दडक से २४ दण्डक मे तथा मोक्ष मे जावे ।

२४ प्राण द्वार

जीवन के आधारभूत पदार्थो को अर्थात जिनके सदभाव से जीव किसी शरीर के साथ वधा रहे, उन्हे 'प्राण' कहते ह । इसके दस भेद ह–१ श्रोत्रेन्द्रिय २ चक्षुरिन्द्रिय, ३ घ्राणेन्द्रिय ४ जिव्हेन्द्रिय ५ स्पशनेन्द्रिय, ६ मनोवल, ७ वचन वल, ८ काय वल, ९ श्वासोच्छवास और १० आयुष्यवल ।

२५ योग द्वार

जिसके द्वारा आत्मा प्रवृत्ति करे वह 'योग' कहलाता है। उसके तीन भेद हैं–१ मनयोग २ वचन योग और ३ काययोग ।

अब एक दण्डक नारकी का, और तेरह दडक देवता के (भवनपति के १० दण्डक,वाणव्यन्तर का १ दण्डक ज्योतिषी का १ दडक, वमानिक का १ दण्डक) इन १४ दडको पर २५ द्वार कहते हैं–

१ शरीर–शरीर पावे तीन–वैक्रिय, तजस् और कामण ।

२ अवगाहना-पहली नारकी से सातवी नारकी तक भवधारिणी शरीर की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवें

भाग, उत्कृष्ट पहली नारकी की ७॥। धनुष ६ अगुल की होती है।

दूजी नारकी की १५॥ धनुष १२ अगुल की
तीजी „ ३१। „
चौथी „ ६२। „
पाचवी „ १२५ „
छट्ठी „ २५० „
सातवी „ ५०० „

उत्तरवैक्रिय करे, तो जघन्य अगुल के सख्यातवे भाग, उत्कृष्ट अपनी अपनी अवगाहना से दुगुनी। जसे सातवी नारकी की भवधारिणीय शरीर की ५०० धनुष की और उत्तरवैक्रिय करे तो १००० धनुष की। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी तथा पहिले दूसरे देवलोक की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवें भाग, उत्कृष्ट ७ हाथ की। तीजे देवलोक से सर्वार्थसिद्ध तक जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग, उत्कृष्ट इस प्रकार है।

तीसरे और चौथे देवलोक की ६ हाथ की
पाँचवे, छठे „ ५ „
सातवे आठवे देवलोक की ४ हाथ की
नौवें से बारहवें „ ३ „
नवग्रवेयक की „ २ „
पाच अनुत्तर विमान मे १ हाथ की।

उत्तर वैक्रिय करे, तो जघन्य अगुल के सख्यातवें भाग,

उत्कृष्ट बारहवें देवलाक तक लाख योजन की। नवग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देव विक्रिया नही करत।

३ महनन—सहनन नही। नारकी मे अशुभ पुद्गल परिणमे और देवता मे शुभ पुद्गल परिणमे।

१ सस्थान—नारकी के भवधारणीय शरीर और उत्तर वैक्रिय शरीर मे एक हुण्डक सस्थान। देवता के भवधारणीय शरीर मे एक समचोरस सस्थान और-उत्तर वैक्रिय-शरीर मे विविध प्रकार का सस्थान होता है।

५ कपाय—नारकी देवता के १४ दडक मे चारो कपाय होती है।

६ सज्ञा—नारकी और देवता के १४ दडको मे चारो सज्ञा पाई जाती है।

७ लेश्या—पहिली और दूसरी नारकी मे एक—कापोत लेश्या है। तीसरी नारकी मे कापोन और नील लेश्या। चौथी नारकी मे एक नील लेश्या। पाचवी नारकी मे नील और कृष्ण लेश्या। छठी नारकी मे कृष्ण लेश्या। सातवी नारकी मे महाकृष्ण लेश्या। भवनपति और वाणव्यन्तर देवता मे पहली चार लेश्या होती है। ज्योतिषी तथा पहिले दूसरे देवलोक मे तेजो लेश्या। तीसरे, चौथे और पाचवें देवलोक मे पदम लेश्या। छठ देवलोक से नवग्रवेयक तक शुक्ल लेश्या। पाच अनुत्तर विमान मे परम शुक्ल लेश्या।

८ इन्द्रिय—नारकी और देवता मे पाचो इन्द्रिय।

९ समुदघात-नारकी मे समुदघात चार—वेदनीय, कपाय,

मारणातिक और वक्रिय । भवनपति से यावत् बारहवें देवलोक तक अनुक्रम से पाच समुदघात । नव ग्रैवेयक और पाच अनुत्तर विमान मे शक्ति से समुदघात पाच पावे, परन्तु समुद्घात करे तीन–वेदनीय, कषाय और मारणातिक । ये वक्रिय और तेजस समुदघात नही करते ।

१० सन्नी–पहिली नारकी, भवनपति और वाणव्यतर मे सन्नी असन्नी दोनो उत्पन्न होते हैं। असन्नी कुछ देर असन्नी रहकर फिर सन्नी हो जाते है । दूसरी नारकी से सातवी नारकी तक तथा ज्योतिषी से पाच अनुत्तर विमान तक सन्नी ही उत्पन्न होते हैं।

११ वेद–नारकी मे एक नपुसक वेद पावे । भवनपति, वाणव्यतर ज्योतिषी और पहिले दूसरे देवलोक मे वेद पावे दो–स्त्रीवेद और पुरुष वेद । तीसरे देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान तक एक पुरुषवेद ही होता है ।

१२ पर्याप्ति–नारकी मे पर्याप्ति पावे छह और देवता मे पर्याप्ति पावे पाच । क्योकि भाषा और मन–ये दोनो पर्याप्तियाँ शामिल कुछ ही अन्तर से बधती हैं ।

१३ दृष्टि–नारकी और भवनपति से लगाकर ग्रवेयक तक दृष्टि पावे तीनो ही +। पाच अनुत्तर विमान मे एक सम्यग-दृष्टि ही होती है ।

१४ दशन–नारकी और देवता मे दशन पावे तीन–चक्षु दशन अचक्षुदशन और अवधिदशन ।

+ भगवतीसूत्र श १३ उ २ तथा श २४ उ १ में ग्रवेयक तक तीनों दृष्टि बताई है ।

१५ ज्ञान–नारकी और देवता में ज्ञान पावे तीन–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान।

अज्ञान–नारकी और भवनपति से नवग्रैवेयक तक अज्ञान पावे तीन–मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभगज्ञान। पाच अनुत्तर विमान मे अज्ञान नही होता।

१६ योग–नारकी और देवता मे योग पावे ग्यारह–४मन के, ४ वचन के और ३ काया के (वैक्रिय शरीर काय योग, वैक्रियमिश्रशरीर काय योग और कामणशरीर काय योग)।

१७ उपयोग–नारकी और देवता में नवग्रैवेयक तक उपयोग पावे नौ–३ ज्ञान, ३ अज्ञान और ३ दशन। पाच अनुत्तर विमान मे उपयोग पावे छह-तीन ज्ञान और तीन दशन।

१८ आहार–नारकी और देवता आहार लेवे २८८ भेद* का। जिसमें दिशा की अपेक्षा नियमा छह दिशा का आहार लेव।

१९ उपपात–नारकी और भवनपति से लगा कर यावत् आठवें देवलोक तक एक समय में ज० १–२–३ यावत सरयाता

---

* आहार के २८८ भेद ये ह। (१) पुट्ठा (२) ओघाढा (३) अनतरोगाढा (४) सूक्ष्म (५) बादर (६) ऊँची दिशा का (७) नीची दिशा का (८) तिरछी दिशा का (९) आदि का (१०) मध्य का (११) अत का (१२) स्वविषयक (१३) अनुक्रम से (१४) नियमात् छहों दिशा का (१५) द्रव्य से अनत प्रदेशी द्रव्य (१६) क्षेत्र से असख्य प्रदेशावगाढ पुदगलों का। (१७ से २८ तक) काल के १२ भेद। एक समय की स्थिति के पुदगलों का यावत दस समय की स्थिति के पुद्गलों

उ० असख्याता उत्पन्न होवे। नौवें देवलोक से लगा कर यावत सर्वार्थसिद्ध तक ज० १-२-३ उ० सख्याता उत्पन्न होवे।

२० स्थिति—समुच्चय नारकी का नेरिया की स्थिति ज० दस हजार वष की, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की।

१ पहिली नरक के नेरिये की स्थिति ज० दस हजार वष की, उ० १ सागरोपम की।

२ दूसरी नारकी के नेरिये की स्थिति ज० एक सागरोपम की, उ० ३ सागरोपम की।

३ तीसरी नारकी के नेरिये की स्थिति ज० ३ सागरोपम की, उ० ७ सागरोपम की।

४ चौथी नारकी के नेरिये की स्थिति ज० ७ सागरोपम की उ० १० सागरोपम की।

५ पाचवी नारकी के नेरिये की स्थिति ज० १० सागरोपम की, उ० १७ सागरोपम की।

६ छठी नारकी के नेरिये की स्थिति ज० १७ सागरोपम की, उ० २२ सागरोपम की।

७ सातवी नारकी के नेरिये की स्थिति ज० २२ सागरो

का सख्यात समय की और असख्यात समय की स्थिति के पुदगलों का लेवे। (२६ से २८८ तक) भाव के २६० भेद ह। पांच (वण दो गध पांच रस आठ स्पश—ये २० भेद। इनके प्रत्यक के १३ भेद हैं। एक गुण काला दो गुण काला, यावत दस गुण काला सख्यात गुण काला असख्यात गुण काला और अनत गुण काला। इसी तरह गन्धादि के तेरह तेरह भद करन से २०×१३=२६० हुए, २६०+२८=२८८।

पम की, उ० ३३ सागरोपम की ।

भवनपति देव की असुरकुमार जाति के दो इन्द्र हैं,– चमरेन्द्र और बलीन्द्र

चमरेन्द्रजी के रहने की चमरचचा राजधानी जम्बूद्वीप के मेरु पवत से दक्षिण दिशा मे अधोलोक मे है। वलीद्रजी के रहने की वलिचचा राजधानी जम्बूद्वीप के मेरु पवत से उत्तर दिशा मे अधोलोक मे है। चमरेद्रजी के भवनवासी देवता की स्थिति जघय दस हजार वप, उत्कृष्ट एक सागरोपम और उनकी देवी की स्थिति ज० दस हजार वप, उत्कृष्ट ३॥ पल्योपम की। शेप नौ जाति के दक्षिण दिशा के भवनपति देवो की स्थिति ज० दस हजार वप, उत्कृष्ट १॥ पल्योपम और उनकी देवी की स्थिति ज० दस हजार वप, उत्कृष्ट पौन ॥। पल्योपम ।

वलीद्रजी के भवनवासी देवता की स्थिति ज० दस हजार वप, उत्कृष्ट एक सागरोपम झाझेरी। उनकी देवी की स्थिति ज० दस हजार वप, और उत्कृष्ट ४॥ पल्योपम। शेप नौ जाति के उत्तर दिशा वाले भवनपति देवो की स्थिति ज० दस हजार वप, उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम। उनकी देवी की स्थिति ज० दस हजार वप, उत्कृष्ट देशोन एक पल्योपम ।

वाणव्यन्तर देवा की स्थिति ज० दस हजार वप, उत्कृष्ट १ पल्योपम। उनकी देवी की स्थिति ज० दस

हजार वष, उत्कृष्ट अद्ध पल्योपम ।

ज्योतिषी देवो की स्थिति

ज्योतिपियो के पाच भेद हैं–१ चन्द्र, २ सूय, ३ ग्रह, ४ नक्षत्र और ५ तारा ।

चन्द्रविमानवासी देवो की स्थिति ज० पाव पल्योपम, उ० १ पल्योपम और एक लाख वष । उनकी देवियो की स्थिति ज० पाव पल्योपम उ० आधा पल्योपम और ५० हजार वष ।

सूय विमानवासी देवो की स्थिति ज० पाव पल्योपम उ० १ पल्योपम और १ हजार वष । उनकी देवियों की स्थिति ज० पाव पल्योपम उ० आधा पल्योपम और ५०० वष ।

ग्रहविमानवासी देवो की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट एक पल्योपम । उनकी देवियो की स्थिति ज० पाव पल्योपम, उ० आधा पल्योपम ।

नक्षत्र विमानवासी देवो की स्थिति ज० पाव पल्योपम की उ० आधा पल्योपम, इनकी देवियो की स्थिति ज० पाव पल्योपम, उ० पाव पल्योपम झाझेरी ।

तारा विमानवासी देवो की स्थिति ज० पल्योपम के आठवें भाग, उ० पाव पल्योपम । उनकी देवियो की स्थिति ज० पल्योपम के आठवें भाग, उ० पल्योपम के आठवें भाग झाझेरी ।

वैमानिक देवता की स्थिति

१ पहिले देवलोक के देवता की स्थिति ज० १ पल्योपम, उ० २ सागरोपम । उनकी देवियां दो प्रकार की है–१ परिगृहीता और अपरिगहीता । परिगहीता देवियो की स्थिति ज० १ पल्योपम, उ० ७ पल्योपम । अपरिगृहिता देवियो की स्थिति ज० १ पल्योपम, उ० ५० पल्योपम ।

२ दूसरे देवलोक के देवता की स्थिति ज० १ पल्योपम झाझरी उ० २ सागरोपम झाझेरी, उनकी देविया दो प्रकार की है–परिगृहीता और अपरिगहीता । परिगृहिता देवियो की स्थिति ज० १ पल्योपम भाझरी, उ० ६ पल्योपम । अपरिगहीता देवियो की स्थिति ज० १ पल्योपम झाझेरी उ० ५५ पल्योपम ।

३ तीसरे देवलोक के देवता की स्थिति ज० २ सागरोपम, उत्कृष्ट ७ सागरोपम ।

४ चौथे देवलोक के देवता की स्थिति ज० २ सागरोपम झाझरी, उत्कृष्ट ७ सागरोपम झाझेरी ।

५ पाचवे देवलोक के देवता की स्थिति ज० ७ सागरोपम, उत्कृष्ट १० सागरोपम ।

६ छठे देवलोक के देवता की स्थिति ज० १० सागरोपम, उत्कृष्ट १४ सागरोपम ।

७ सातवें देवलोक के देवता की स्थिति ज० १४ सागरोपम, उत्कृष्ट १७ सागरोपम ।

८ आठवें देवलोक के देवता की स्थिति ज० १७ सागरो-

पम, उत्कृष्ट १८ सागरोपम।

९ नौवें देवलोक के देवता की स्थिति ज० १८ सागरोपम, उत्कृष्ट १९ सागरोपम।

१० दसवे देवलोक के देवता की स्थिति ज० १९ सागरोपम, उत्कृष्ट २० सागरोपम।

११ ग्यारहवें देवलोक के देवता की स्थिति ज० २० सागरोपम, उत्कृष्ट २१ सागरोपम।

१२ बारहवें देवलोक के देवता की स्थिति ज० २१ सागरोपम, उत्कृष्ट २२ सागरोपम।

१३ पहिले ग्रवेयक के देवता की स्थिति ज० २२ सागरोपम, उत्कृष्ट २३ सागरोपम।

१४ दूसरे ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० २३ सागरोपम, उत्कृष्ट २४ सागरोपम।

१५ तीसरे ग्रवेयक के देवता की स्थिति ज० २४ सागरोपम, उत्कृष्ट २५ सागरोपम।

१६ चाथे ग्रवेयक के दवता की स्थिति ज० २५ सागरोपम, उत्कृष्ट २६ सागरोपम।

१७ पाचवें ग्रैवेयक वे देवता की स्थिति ज० २६ सागरोपम उत्कृष्ट २७ सागरोपम।

१८ छठे ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० २७ सागरोपम, उत्कृष्ट २८ सागरोपम।

१९ सातवें ग्रैवेयक के देवता की स्थिति ज० २८ मागरोपम, उत्कृष्ट २९ सागरोपम की।

२० आठवे ग्रवेयक के देवो की स्थिति ज० २९ सागरोपम, उत्कृष्ट ३० सागरोपम ।

२१ नौवें ग्रैवेयक के देवो की स्थिति ज० ३० सागरोपम, उत्कृष्ट ३१ सागरोपम ।

२२ चार अनुत्तर विमान के देवो की स्थिति ज० ३१ सागरोपम, उ० ३३ सागरोपम ।

२३ सर्वार्थसिद्ध विमान के देवो की स्थिति अजघन्य अनुत्कृष्ट ३३ सागरोपम ।

२१ समोहया असमोहया मरण

नारकी और देव, दोनो प्रकार के मरण से मरते हैं ।

२२ च्यवन

नारकी और भवनपति देव से लगा कर आठवे देवलोक तक एक समय मे ज० १-२-३ यावत सख्याता, उ० असख्याता च्यवे । नौवे देवलोक से लगा कर सर्वार्थसिद्ध विमान तक, एक समय मे ज० १-२-३ उत्कृष्ट सख्याता च्यवे ।

२३ गति आगति

पहली नारकी से लगा कर छठी नारकी तक दो गतियो से आवे और गतियो मे जावे-तियच गति और मनष्य गति । दण्डक की अपेक्षा दो दण्डको से आवे और दो दण्डको मे जावे-२० तियच पचेद्रिय और २१ मनुष्य दण्डक । सातवी नारकी मे दो गतिया से आवे-तियच गति और मनुष्य गति से, और एक तियच गति मे जावे । दण्डक अपेक्षा दो दण्डको से आवे

(२०–२१ वा दण्डक) और एक तियचपचेंद्रिय (२० वा दण्डक) मे जावे। भवनपति, वाणव्यतर, ज्योतिषी और पहिले दूसरे देवलोक का देवता दो गतियो से आवे और दो गतियो मे जावे–तियच गति और मनुष्य गति। दण्डक की अपेक्षा दो दण्डक से आवे, तियचपचेन्द्रिय से और मनुष्य से और पाच दण्डक मे जावे–पथ्वीकाय, अपूकाय वनस्पतिकाय, तिर्यंच पचेंद्रिय और मनुष्य मे। तीसरे देवलोक से लगाकर आठवें देवलोक तक गत्यागति पहली नरकवत। नौवे देवलाक से लगाकर सर्वार्थसिद्ध विमान के देव, एक मनुष्य गति से आवे और उसी गति मे जावे। दण्डक आसरी एक दडक से आवे और एक दण्डक मे जावे, मनुष्य का दण्डक।

२४ प्राण

नारकी और देवता मे प्राण पावे दस, दस।

२५ योग

नारकी और देवता मे योग पावे तीनो ही।

पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य

१ शरीर–चार स्थावर–१ पथ्वीकाय, २ अपकाय, ३ तेउकाय, ४ वनस्पतिकाय और असन्नी मनुष्य, इन पाचो मे शरीर पावे तीन–औदारिक, तजस और कामण। वायुकाय मे शरीर पावे चार औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कामण।

२ अवगाहना–पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय और असन्नी मनुष्य इन पाचो की अवगाहना ज० अगुल के

असख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अगुल के असख्यातवें भाग। किंतु ज० से उत्कृष्ट असख्यात गुण हैं। वनस्पतिकाय की अवगाहना–ज० अगुल के असख्यातवें भाग, उत्कृष्ट १००० योजन झाझेरी, कमलनाल की अपेक्षा से।

३ सहनन पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य मे एक सेवातक सहनन पाता है।

४ सस्थान–पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य मे एक हुडक सस्थान पाता है।

५ कषाय–पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य मे चारो कषाय होती है।

६ सज्ञा–पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य मे चारो सज्ञा पाई जाती है।

७ लेश्या–पृथ्वीकाय, अपकाय और वनस्पतिकाय–इन तीनो मे चार लेश्या पावे–कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या और तेजो लेश्या। तेउकाय, वायुकाय और असन्नी मनुष्य मे तीन लेश्या पावे–कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या।

८ इन्द्रिय–पाच स्थावर मे एक स्पर्शनेन्द्रिय पावे। असन्नी मनुष्य मे पाचो ही इन्द्रियाँ पावे।

९ समदघात–चार स्थावर–पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वनस्पतिकाय और असन्नी मनुष्य, इन पाचो मे तीन समुदघात पावे–वेदनीय समुद्घात, कषाय समुदघात और मारणांतिक समुदघात। वायुकाय मे चार समुदघात पावे–वेदनीय समुदघात, कषाय समुद्घात, मारणातिक समुद्घात और वैक्रिय समुद्घात।

१० सन्नी–पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य असन्नी हैं, सन्नी नही ।

११ वेद–पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य मे एक नपुसक वेद पावे ।

१२ पर्याप्ति–पांच स्थावर मे चार पर्याप्ति पावे–आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति और श्वासोच्छ वास पर्याप्ति । असन्नी मनुष्य चौथी पर्याप्ति का अपर्याप्ता रहते हुए ही मर जाता है ।

१३ दष्टि–पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य मे एक मिथ्यादृष्टि पावे ।

१४ दशन–पाच स्थावर मे एक अचक्षुदशन होता है । असन्नी मनुष्य मे–चक्षुदशन और अचक्षुदशन–ये दो दशन है ।

१५ ज्ञान–पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य मे ज्ञान (सम्यग्ज्ञान) नही । मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान–ये दो अज्ञान होते हैं ।

१६ योग–चार स्थावर–पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय वनस्पतिकाय और असन्नी मनुष्य–इन पाचो म योग पावे तीन–औदारिक शरीर काय योग, औदारिक मिश्र शरीर काय योग और कामण शरीर काय योग । वायकाय मे योग पावे पाच–औदारिक शरीर काय योग, औदारिक मिश्र शरीर काय योग वैक्रिय शरीर काय-योग, वैक्रिय मिश्र शरीर काय योग और कामण शरीर काययोग ।

१७ उपयोग–पाच स्थावरो मे उपयोग पावे तीन–मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान और अचक्षुदशन। असन्नी मनुष्य मे उपयोग पावे चार–मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, चक्षुदशन और अचक्षुदशन।

१८ आहार–पाच स्थावर आहार २८८ भेदो का लेते है, जिसमे व्याघात हो, तो कदाचित तीन दिशाका, कदाचित चार दिशा का, कादाचित् पाच दिशा का और निर्व्याघात की अपेक्षा नियमा छह् दिशा का। असन्नी मनुष्य आहार लेवे २८८ भेद का, जिसमे दिशा की अपेक्षा नियमा छह् दिशा का।

१६ उपपात–चार स्थावर मे पाच स्थावर की अपेक्षा प्रति समय निरन्तर असख्याता उपजे और परस्थान की अपेक्षा प्रति समय मे ज० १–२–३ जाव सख्याता, उत्कृष्ट असख्याता उपजे। वनस्पतिकाय मे चार स्थावर की अपेक्षा प्रति समय असख्यात और वनस्पति की अपेक्षा अनन्ता उपजे और पर स्थान की अपेक्षा प्रति समय मे जघन्य १–२–३ जाव सख्याता, उत्कृष्ट असख्याता उपजे। असन्नी मनुष्य मे ज० १–२–३ यावत् सख्याता, उत्कृष्ट असख्याता उपजे।

२० स्थिति–पृथ्वीकाय की स्थिति ज० अतर्मुहूर्त्त की उ० २२००० वप की,

	जघन्य	उत्कृष्ट
अपकाय	अन्तर्मुहूर्त	७००० वप।
तेउकाय	,,	तीन अहोरात्रि।
वायुकाय	,,	३००० वप।

	जघय	उत्कृष्ट
वनस्पतिकाय	अन्तर्मुहूत	१०००० वप की।
असन्नी मनुष्य की	„	अतर्मुहूत्त की ।

२१ समोहया असमोहया मरण–पाच स्थावर और असनी मनुष्य, दोनो प्रकार के मरण मरते है।

२२ च्यवन–जिस प्रकार उपपात द्वार (१६ वा) है, उसी प्रकार च्यवन द्वार है।

२३ गति–पृथ्वीकाय, अपकाय और वनस्पतिकाय मे तीन गति से आवे–तिर्यचगति से, मनुष्य गति से और देवगति से और दो गति मे जावे–तिर्यच गति मे और मनुप्य गति मे। दण्डक की अपेक्षा २३ दण्डक से आवे (१० भवनपति, ५ स्थावर ३ विकलेद्रिय, १ तियचपचेद्रिय १ मनुष्य, १ वाण-व्यन्तर, १ ज्योतिषी और १ वमानिक से) और दस दण्डक मे जावे (५ स्थावर, ३ विकलेद्रिय, १ तियचपचेद्रिय और १ मनुष्य मे)। तेउकाय और वायुकाय मे दो गति से आवे (तिर्यच गति और मनुष्य गति से) और एक तिर्यंच गति मे जावे। दण्डक अपेक्षा दस दण्डक से आवे (औदारिक का दस दण्डक उपरोक्त) जावे नव दण्डक मे (५ स्थावर ३ विकलेद्रिय और १ तिर्यंच पचेद्रिय से) और असनी मनुष्य दो गति से आवे–तयचगति और मनुप्य गति से, और दो गति मे जावे–तियच गति और मनुष्य गति मे। दण्डक की अपेक्षा आठ दण्डक से आवे–(१ पृथ्वीकाय, १ अपकाय और १ वनस्पति काय ३ विकलेद्रिय, तियचपचेद्रिय और मनुष्य से,) जावे दस दण्डक में उपरोक्त

औदारिक मे ।

२४ प्राण–पाच स्थावर में प्राण पावे चार, (स्पर्शनेन्द्रिय प्राण, कायबल प्राण, श्वासोच्छवास प्राण और आयुष्य प्राण) और असन्नी मनुष्य में प्राण पावे कुछ ऊणा आठ, (पाच इंद्रिय के, कायबल प्राण, श्वासोच्छ्वास प्राण और आयुष्य प्राण)

२५ योग–पाच स्थावर और असन्नी मनुष्य में योग पावे एक काय का ।

तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय

१ शरीर–तीन विकलेंद्रिय और असन्नी तिर्यंच पचेन्द्रिय में शरीर पावे तीन–औदारिक, तैजस और कामण ।

२ अवगाहना–बेइंद्रिय की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग, उत्कृष्ट १२ योजन ।

तेइंद्रिय की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग, उत्कृष्ट ३ गाउ (कोस) ।

चौइन्द्रिय की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग, उत्कृष्ट ४ गाउ ।

असन्नी तिर्यंच पचेंद्रिय के पाच भेद–

जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसप और भुजपरिसप । जलचर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असख्यातवे भाग, उत्कृष्ट

१००० योजन की ।

स्थलचर की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग, उत्कृष्ट प्रत्येक (पथक्त्व) गाउ । खेचर की अवगाहना जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग, उत्कष्ट प्रत्येक (पथक्त्व) धनुष । उरपरिसप की अवगाहना जघन्य अगुल के असरयातवे भाग, उत्कष्ट प्रत्येक (पथक्त्व) योजन ।

भुजपरिसप की अवगाहना जघन्य अगुल के असरयातवे भाग, उत्कष्ट प्रत्येक (पृथक्त्व) धनुष ।

३ सहनन–तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पचेन्द्रिय में सस्थान एक छेवट सहनन है ।

४ सस्थान–तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तियच पचेन्द्रिय में सस्थान पावे एक हुडक ।

५ कषाय–तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तियच पचेन्द्रिय में चारो ही कषाय पावे ।

६ सज्ञा–तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पचेन्द्रिय में चारो ही सज्ञा पावे ।

७ लेश्या–तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तियच पचेन्द्रिय में तीन लेश्या पावे–कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या ।

८ इन्द्रिय–बेइन्द्रिय में इन्द्रिय पावे दो–रसनेन्द्रिय और स्पशनेन्द्रिय । तेइन्द्रिय मे इन्द्रिय पावे तीन–घ्राणन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पशनेन्द्रिय । चोइन्द्रिय में चार इन्द्रिय पावे–चक्षुइन्द्रिय, घ्राणन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पशनेन्द्रिय । असन्नी तिर्यंच पचेन्द्रिय

मे पाच इद्रिय पावे-श्रोतेद्रिय, चक्षुइद्रिय, घ्राणेद्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पशनेद्रिय ।

९ समुदघात-तीन विकलेद्रिय और असन्नी तिर्यंच पचेद्रिय मे समुदघात पावे तीन तीन-वेदनीय, कपाय और मारणान्तिक ।

१० सन्नी-तीन विकलेद्रिय और असनी तिर्यंच पचेद्रिय-ये सभी सन्नी नही, असन्नी हैं ।

११ वेद-तीन विकलेद्रिय और असन्नी तिर्यंच पचेद्रिय मे एक नपुसक वेद पावे ।

१२ पर्याप्ति-तीन विकलेद्रिय और असन्नी तिर्यंच पचेद्रिय मे पर्याप्ति पावे पाच-आहार पयाप्ति, शरीर पर्याप्ति, इद्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छवास पयाप्ति और भापा पर्याप्ति ।

१३ दृष्टि-तीन विकलेद्रिय और असन्नी तिर्यंच पचेद्रिय मे दो दष्टि-सम्यगदष्टि और मिथ्यादष्टि ।

१४ दशन-वेइद्रिय और तेइद्रिय मे एक अचक्षु दशन है । चौरिद्रिय और असनी तियच पचेद्रिय मे दो दशन-चक्षु दशन और अचक्षुदशन ।

१५ ज्ञान-तीन विकलेद्रिय आर असन्नी तियच पचेद्रिय मे दो ज्ञान-मतिनान और श्रुतज्ञान । अज्ञान-दो-मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान ।

१६ योग-तीन विकलेद्रिय और असन्नी तिर्यंच पचेद्रिय मे योग पावे चार-व्यवहार वचनयाग, औदारिक शरीर काय-

योग, औदारिक मिश्र शरीर काययोग और कामण शरीर काय योग ।

१७ उपयोग–बेइंद्रिय और तेइंद्रिय मे पाच उपयोग–दो ज्ञान, दो अज्ञान और एक अचक्षु दशन । चौइंद्रिय और असन्नी तिर्यच पचेंद्रिय मे छह उपयोग–दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दशन ।

१८ आहार–तीन विकलेंद्रिय और असन्नी तियच पचे द्रिय छह दिशाओ से २८८ भेद का आहार लेते है ।

१९ उपपात–तीन विकलेंद्रिय और असन्नी तिर्यच पचे-द्रिय में एक समय में जघन्य एक, दो, तीन यावत सख्याता, उत्कृष्ट असख्याता उत्पन्न होते हैं ।

२० स्थिति–बेइंद्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूत, उत्कष्ट १२ वष । तेइंद्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूत, उत्कष्ट ४९ अहोरात्रि । चौइंद्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूत, उत्कृष्ट छह महिना ।

असन्नी तियञ्च पचेंद्रिय के पाच भेद–

जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसप और भुजपरिसप । जलचर की स्थिति जघन्य अतर्मुहूत, उत्कष्ट एक करोड पूव । स्थलचर की स्थिति जघन्य अतर्मुहूत, उत्कष्ट ८४ हजार वप । खचर की स्थिति जघन्य अतर्मुहूत, उत्कृष्ट ७२ हजार वप । उरपरिसप की स्थिति जघन्य अतर्मुहूत, उत्कष्ट ५३ हजार वप । भुजपरिसप की स्थिति जघन्य अतर्मुहूत, उत्कृष्ट

४२ हजार वष की।

२१ समोहया असमोहया मरण–तीन विकलेंद्रिय और असन्नी तिर्यंच पचेंद्रिय दोनो प्रकार के मरण मरते हैं।

२२ च्यवन–तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पचेंद्रिय मे एक समय मे जघन्य १–२–३ यावत् सख्याता, उत्कृष्ट असख्याता च्यवे।

२३ गति–तीन विकलेंद्रिय मे दो गति से आवे और दो गति मे जावे–तियच गति और मनुष्य गति। दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक से आवे और दस दण्डक मे जावे–दस दण्ड औदारिक के। असन्नी तियच मे दो गति से आवे–तिर्यंच गति और मनुष्य गति से और जावे चार गति मे–नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देवगति मे, और दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक से आवे–दस दण्डक औदारिक का, और जावे २२ दण्डक में–१ नारकी, १० भवनपति, ५ स्थावर, ३ विकलेंद्रिय १ तियच पचेन्द्रिय, १ मनुष्य और १ वाणव्यतर मे।

२४ प्राण–बेइंद्रिय मे प्राण पावे छह–रसनेंद्रिय प्राण, स्पर्शनेंद्रिय प्राण, वचनबल प्राण, कायबल प्राण, श्वासोच्छवास-प्राण और आयुष्य प्राण। तेइंद्रिय में प्राण पावे सात घ्राणेंद्रिय प्राण, रसनेंद्रिय प्राण, स्पर्शनेंद्रिय प्राण, वचनबल प्राण, कायबल प्राण, श्वासोछवास प्राण और आयुष्य प्राण। चौरिंद्रिय मे प्राण पावे आठ–चक्षुरिंद्रिय प्राण और सात पूर्वोक्त। असन्नी तियञ्च पचेंद्रिय मे प्राण पावे नव–श्रोत्रेंद्रिय प्राण और आठ

पूर्वोक्त।

२५ योग–तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पचेंद्रिय मे योग पावे दो–वचन योग और काय योग।

सन्नी तिर्यच पचेन्द्रिय

१ शरीर–सन्नी तिर्यच पचेंद्रिय मे शरीर पावे चार–औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कामण।

२ अवगाहना–सन्नी तिर्यच पचेंद्रिय के पाच भेद–जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसप और भुजपरिसप। जलचर की अवगाहना ज० अगुल के असरयातवें भाग उत्कृष्ट १००० योजन।

स्थलचर की अवगाहना ज० अगुल के असरयातवे भाग, उत्कृष्ट ६ गाउ।

खेचर की अवगाहना ज० अगुल के असख्यातवें भाग, उत्कृष्ट प्रत्येक धनुष।

उरपरिसप की अवगाहना ज० अगुल के असख्यातवें भाग, उत्कृष्ट १००० योजन।

भुजपरिसप की अवगाहना ज० अगुल के असरयातवें भाग, उत्कृष्ट प्रत्येक गाउ।

सन्नी तिर्यंच पचेंद्रिय वैक्रिय शरीर करे, तो अवगाहना ज० अगुल के सख्यातवे भाग, उत्कृष्ट पथक् सो (ज० २०० उत्कृष्ट ९००) योजन।

३ सहनन–सन्नी तियच पचेंद्रिय मे सहनन पावे छहो।

४ सस्थान–सन्नी तियच पचेंद्रिय मे सस्थान पावे छहो।

५ कषाय–सन्नी तियच पचेद्रिय मे चारो कषाय पाई जाती है।

६ सज्ञा–सन्नी तिर्यंच पचेद्रिय मे चारो ही सज्ञा पाईजाती है।

७ लेश्या–सन्नी तियच पचेद्रिय मे छहो लेश्या पाई जाती है।

८ इद्रिय–सन्नी तिर्यंच पचेद्रिय मे पाचो इद्रियाँ पाई जाती है।

९ समुदघात–सन्नी तिर्यंच पचेद्रिय मे समुदघात पावे पाच–वेदनीय, कषाय, मारणातिक, वैक्रिय और तैजस।

१० सन्नी–तिर्यंच पचेद्रिय सन्नी हैं, असन्नी नही।

११ वेद–सन्नी तिर्यंच पचेद्रिय में तीनो ही वेद पाये जाते हैं।

१२ पर्याप्ति–सन्नी तिर्यंच पचेद्रिय में छहो पर्याप्ति पाई जाती है।

१३ दृष्टि–सन्नी तिर्यंच पचेद्रिय में तीनो ही दृष्टि पाई जाती है।

१४ दर्शन–सन्नी तियच पचेद्रिय में दर्शन पावे तीन–चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन और अवधि दर्शन।

१५ ज्ञान–सन्नी तिर्यंच पचेद्रिय में ज्ञान पावे तीन–मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान और अवधि ज्ञान। अज्ञान–सन्नी तियच पचेद्रिय में तीनो ही अज्ञान पावे।

१६ जोग–सन्नी तिर्यंच पचेद्रिय में योग पावे १३–चार मन के, ४ वचन के और ५ काया के–औदारिक शरीर काय योग, औदारिक मिश्र शरीर काययोग, वैक्रिय शरीर काययोग,

वैक्रिय मिश्र शरीर काययोग और कामण शरीर काययोग ।

१७ उपयोग–सन्नी तियच पचेद्रिय में उपयोग पावे नव ३ ज्ञान, ३ अज्ञान और ३ दशन ।

१८ आहार–सन्नी तिर्यंच पचेद्रिय आहार २८८ भेद का लेते है, जिसमे दिशा की अपेक्षा नियमा छह दिशा का ।

१९ उपपात–सन्नी तिर्यंच पचेद्रिय एक समय मे ज० १–२–३ यावत् सख्याता उत्कृष्ट असख्याता उपजे ।

२० स्थिति–सन्नी तियच पचेद्रिय के पाच भेद–जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसप और भुजपरिसप ।

जलचर की स्थिति ज०अतर्मुहूत, उत्कृष्ट एक करोड पूव ।

स्थलचर की स्थिति ज० अतर्मुहूत, उत्कृष्ट तीन पल्योपम ।

खेचर की स्थिति ज० अतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पल्योपम के असख्यातवे भाग ।

उरपरिसप की स्थिति ज० अतमुहूत, उत्कृष्ट एक करोड पूव ।

भुजपरिसप की स्थिति ज० अतर्मुहूत, उत्कृष्ट एक करोड पूव ।

२१ समोहया असमोहया मरण–सन्नी तियच पचेद्रिय दोनो प्रकार के मरण मरते हैं ।

२२ च्यवन–सन्नी तिर्यंच पचेद्रिय एक समय में ज० १–२–३ यावत सख्याता, उत्कृष्ट असख्याता च्यवे ।

२४ प्राण–सन्नी तिर्यंच पचेन्द्रिय मे प्राण पावे दसो ही।

२५ जोग–सन्नी तिर्यंच पचेद्रिय मे योग पावे तीनो ही।

गर्भज मनुष्य

१ शरीर–पाचो ही।

२ अवगाहना–ज० अगुल के असख्यातवे भाग, उ० तीन गाउ। काल के अनुसार अवसर्पिणी काल मे गभज मनुष्यों की अवगाहना इस प्रकार है,–

पहले आरे के प्रारभ मे	तीन गाउ।
पहला पूर्ण होते और दूसरे के प्रारभ मे	दो गाउ।
दूसरा पूण होते और तीसरे के प्रारभ मे	एक गाउ।
तीसरा पूण होते और चौथे के प्रारभ मे	५०० धनुष।
चौथा उतरते और पाचवा लगते	७ हाथ।
पाचवा उतरते और छठा लगते	१ हाथ।
छठा आरा उतरते	पौन हाथ।

यह उत्कृष्ट अवगाहना है। जघन्य अवगाहना उत्पति के समय अगुल के असरयातवे भाग है। पहले से तीसरे आरे तक के युगलिको की जघन्य अवगाहना, उत्कृष्ट से देशऊणी (कुछ कम) होती है और उत्कृष्ट अवगाहना पूरी होती है।

उत्सर्पिणी काल की अवगाहना का क्रम इससे उलटा होता है। यदि मनुष्य वैक्रिय शरीर करे, तो अवगाहना ज० अगुल के असख्यातवे भाग और उत्कृष्ट लाख योजन झाझेरी।

३ सहनन–छहो।

४ सस्थान–छहो।

५ कषाय–चारो और अकषायी भी होते हैं ।

६ सज्ञा–चारो और नो सज्ञोपयुक्त भी होते हैं ।

७ लेश्या–छहो और अलेशी भी होते है ।

८ इन्द्रिय–पाचो और अनिन्द्रिय भी ।

६ समुदघात–सातो ही ।

१० सन्नी–सन्नी हैं, असन्नी नहीं ।

११ वद–तीनो और अवेदी भी ।

१२ पर्याप्ति–छहो ।

१३ दष्टि–तीनो ।

१४ दशन–चारो ।

१५ ज्ञान–पाचो ज्ञान और तीनो अज्ञान ।

१६ योग–पन्द्रह और अयोगी भी ।

१७ उपयोग–बारह–सभी ।

१८ आहार–छहो दिशासे २८८ बोलो का आहार लेते हैं और अनाहारक भी होते हैं ।

१९ उपपात–ज० १, २, ३ उ० सख्यात ।

२० स्थिति–ज० अन्तर्मुहूत उ० तीन पल्योपम । काल की अपेक्षा अवसर्पिणिकाल मे–

पहले आरे के प्रारभ मे ३ पल्योपम
पहला उतरते और दूसरा लगते २ पल्योपम ।
दूसरा उतरते और तीसरा लगते १ पल्योपम ।
तीसरा उतरते और चौथा लगते १ करोड पूव ।
चौथा उतरते, पाँचवां लगते एक सौ वष झाझेरी ।

पाँचवा उतरते और छठा लगते २० वप ।

छठा आरा उतरते अवगाहना १६ वप ।

यह उत्कृष्ट स्थिति बतलाई है। तीसरे आरे तक के मनुष्यो की जघन्य स्थिति उत्कृष्ट से देश ऊणी होती है। उत्सर्पिणी काल मे इससे उलटी होती है।

२१ समोहया और असमोहया-दोनो प्रकार का मरण।

२२ च्यवन-ज० १, २, ३, उ० सख्यात ।

२३ गति आगति-आगति चार गति और २२ दडक से। गति-चारो और सिद्ध गति और दडक २४ मे ।

२४ प्राण-दस ही ।

२५ योग-तीनो और अयोगी भी ।

युगलिक मनुष्य

युगलिक मनुष्यो के भेद-५ हेमवत ५ हैरण्यवत ५ हरिवास ५ रम्यक्वास ५ देवकुरू ५ उत्तरकुरू और ५६ अन्तर्द्वीप के। ये कुल ८६ भेद ।

१ शरीर-तीन-१ औदारिक, २ तैजस और ३ कार्मण।

२ अवगाहना-

हेमवत और हैरण्यवत मे एक गाउ ।

हरिवास और रम्यकवास मे दो गाउ ।

देवकुरू और उत्तरकुरू मे तीन गाउ ।

अन्तर्द्वीप मे-आठ सौ धनुष्य ।

इनमे जघन्य देशऊणी और उत्कृष्ट परिपूर्ण होती है।

३ सहनन-वज्रऋषभ नाराच सहनन ।

४ सस्थान–समचतुरस्र सस्थान ।

५ कपाय–चारो ही ।

६ सज्ञा–चारो ही ।

७ लेश्या–चार–कृष्ण, नील, कापोत और तेजो लेश्या ।

८ इन्द्रिय–पाचो ।

९ समुद्घात–तीन–कपाय, वेदना और मारणान्तिक ।

१० सन्नी–सन्नी ही हैं, असन्नी नही ।

११ वेद–दो–स्त्री वेद और पुरुप वेद ।

१२ पर्याप्ति–छह ।

१३ दष्टि–३० अकमभूमि मे दो दष्टि–१ सम्यगदृष्टि और २ मिथ्यादष्टि और ५६ अन्तर्द्वीप मे एक मिथ्यादृष्टि ।

१४ दशन–दो–चक्षुदशन और अचक्षुदशन ।

१५ ज्ञान–३० अकमभूमि मे दो ज्ञान–मतिज्ञान और श्रुतज्ञान तथा दो अज्ञान । ५६ अन्तर्द्वीपो मे दो अज्ञान–मति-अज्ञान और श्रुत अज्ञान ।

१६ याग–ग्यारह–४ मन के ४ वचन के और ३ काया के–१ औदारिक काययोग २ औदारिक मिश्र काययोग और ३ कामण काययोग ।

१७ उपयोग–३० अकमभूमि मे छह–दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दशन । ५६ अन्तर्द्वीपो मे उपयोग चार–दो अज्ञान और दो दशन ।

१८ आहार–सभी युगलिक छहा दिशासे २८८ बोलो का आहार करते हैं ।

१६ उपपात–ज० १, २, ३ उ० सख्यात उत्पन्न होते हैं।

२० स्थिति–

५ हेमवत और ५ हैरण्यवत की स्थिति एक पल्योपम।

५ हरिवास और ५ रम्यकवास की स्थिति दो पल्योपम।

५ देवकुरु और ५ उत्तरकुरु स्थिति तीन पल्योपम।

५६ अन्तर्द्वीपज की स्थिति पल्योपम के असख्यातवे भाग।

इनमे जघन्य स्थिति कुछ कम होती है और उत्कृष्ट पूर्ण होती है।

२१ समोहया और असमोहया–दोनो प्रकार से मृत्यु होती है।

२२ च्यवन–ज० १, २, ३ उ० सख्यात।

२३ गति आगति–आगति २–तिर्यंच और मनुष्य गति से। गति–एक देवगति मे।

दडक की अपेक्षा–तीस अकमभूमि की आगति–दो दडक से–मनुष्य और तिर्यंच से, गति दडक १३ मे–१० भवनपति १ व्यन्तर १ ज्योतिषी और १ वैमानिक मे।

छप्पन अन्तर्द्वीपज मे आगति दडक २ और गति दडक ११ –१० भवनपति और १ व्यन्तर मे।

२४ प्राण–दस।

२५ योग–तीनो।

सिद्ध भगवान्

१ शरीर–सिद्ध भगवान् के शरीर नही, अशरीरी हैं।

२ अवगाहना–आत्मप्रदेशो की अवगाहना ज० एक हाथ

आठ अगुल, मध्यम चार हाथ और सोलह अगुल, उत्कृष्ट ३३३ धनुष और ३२ अगुल ।

३ सहनन–सहनन नही ।

४ सस्थान–कोई सस्थान नही ।

५ कषाय–अकषायी हैं ।

६ सज्ञा–सज्ञा नही, नोसज्ञोपयुक्त हैं ।

७ लेश्या–लेश्या नही, अलेशी है ।

८ इन्द्रिय–इन्द्रिय नही, अनिद्रय है ।

९ समुदघात–समुदघात नही ।

१० सन्नी–सन्नी और असन्नी नही, नोसन्नी नोअसन्नी है ।

११ वेद–वेद नही, अवेदी हैं ।

१२ पर्याप्ति–पर्याप्ति और अपर्याप्ति नही नोपर्याप्त नोअपर्याप्त हैं ।

१३ दृष्टि–एक सम्यगदष्टि ।

१४ दशन–एक केवल दशन ।

१५ ज्ञान–एक केवल ज्ञान, अज्ञान नही ।

१६ योग–योग नही, अयोगी हैं ।

१७ उपयोग–दो उपयोग–केवलज्ञान और केवलदशन ।

१८ आहार–आहारक नही, अनाहारक हैं ।

१९ उपपात–एक समय मे ज० १-२ ३ उत्कृष्ट १०८ सिद्ध होवे ।

२० स्थिति–एक सिद्ध भगवान की अपेक्षा सादि अनन्त

और सभी सिद्ध भगवतो की अपेक्षा अनादि अनन्त ।

२१ समोहया असमोहया मरण–सिद्ध भगवान् मे मरण नही ।

२२ च्यवन–सिद्ध भगवान् मे च्यवन नही ।

२३ गति–आगति एक मनुष्य गति और एक दडक से और गति नही ।

२४ प्राण–द्रव्य प्राण नही और भाव प्राण ४ हैं । (ज्ञान, दशन, सुख और शक्ति)

२५ योग–सिद्ध भगवान् मे योग नही, अयोगी हैं ।

॥ लघुदण्डक समाप्त ॥

अठाणु बोल

(बासठिया युक्त)

प्रज्ञापना सूत्र पद ३ के महादण्डक में ९८ बोल की अल्पाबहुत्व इस प्रकार है। बासठिया इससे भिन्न है।

बोल	जीवभेद	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
१ सब से थोड़े गर्भज मनुष्य	२	१४	१५	१२	६
२ इनसे मनुष्यनी सख्यात गुणी	२	१४	१३	१२	६
३ बादर तेउकाय पर्याप्त असख्य गु	१	१	१	३	३
४ पाच अनुत्तर विमान के देव अस गु	२	१	११	६	१
५ ग्रैवेयक की ऊपर की त्रिक के देव सख्यात गुण	२	४*	११	९	१
६ मध्यम त्रिक के देव सख्यात गुण	२	४	११	९	१
७ नीचे की त्रिक के देव सख्यात गुण	२	४	११	९	१

---

* यहां मतभेद है। थोकड़े की पुस्तकों में ग्रैवेयक में दो ही दृष्टि मानी किंतु भगवती सूत्र श १३ उ २ तथा श २४ उ १ में तीनों दृष्टि मानी है। इसलिए गुणस्थान चार मानना प्रामाणिक है—डोशी।

	जी०	गु०	यो०	उ०	ले०
८ बारहवे देवलोक के देव सख्यात गुण	२	४	११	६	१
९ ग्यारहवे देवलोकके देव सख्यात गु	२	४	११	६	१
१० दसवे देवलोक के देव सख्यात गुण	२	४	११	६	१
११ नौवे देवलोक के देव सख्यात गुण	२	४	११	६	१
१२ सातवीं नरकके नेरइये असख्यात गु	२	४	११	६	१
१३ छुठी नरक के नेरइय असख्यात गु	२	४	११	६	१
१४ आठवें देवलोकके देव अस गु	२	४	११	६	१
१५ सातवें देवलोक के देव अस गु	२	४	११	६	१
१६ पाचवीं नरक के नेरइये असं गु	२	४	११	६	२
१७ छठे देवलोक के देव असं गु	२	४	११	६	१
१८ चौथी नरक के नेरइय अस गु	२	४	११	६	१
१९ पाचवें देवलोक के देव अस गु	२	४	११	६	१
२० तीसरी नरक के नेरइये अस गु	२	४	११	६	२
२१ चौथ देवलोक के देव अस गु	२	४	११	६	१
२२ तीसरे देवलोक के देव अस गु	२	४	११	६	१
२३ दूसरी नरक के नेरइय अस गु	२	४	११	६	१
२४ सर्मूच्छिम मनुष्य असख्यात गु	१	१	३	४	३
२५ दूसरे देवलोक के देव अस गु	२	४	११	६	१
२६ दूसरे देवलोक की देवी स गुणी	२	४	११	६	१
२७ पहले देवलोक के देव स गु	२	४	११	६	१
२८ पहले दवलोक की दवी स गुणी	२	४	११	६	१
२९ भवनपति देव असख्यात गुण	३	४	११	६	४

	जी०	गु०	यो०	उ०	ले०
३० भवनपति देवी स गुणी	२	४	११	६	४
३१ पहेली नरक के नेरइये अस गुण	३	४	११	६	१
३२ खेचर तिर्यंच, पुरुष अस गुण	२	५	१३	६	६
३३ खेचर स्त्री सख्यात गुणी	२	५	१३	६	६
३४ थलचर पुरुष स गुण	२	५	१३	६	६
३५ थलचर स्त्री स गुणी	२	५	१३	६	६
३६ जलचर पुरुष स गुण	२	५	१३	६	६
३७ जलचर स्त्री स गुणी	२	५	१३	६	६
३८ व्यतर देव स गुण	३	४	११	६	४
३९ व्यन्तर देवी स गुणी	२	४	११	६	४
४० ज्योतिषी देव स गुण	२	४	११	६	१
४१ ज्योतिषी देवी स गुण	२	४	११	६	१
४२ खेचर नपुसक स गुण	२	५	१३	६	६
४३ थलचर नपुसक स गुण	२	५	१३	६	६
४४ जलचर नपुसक स गुण	२	५	१३	६	६
४५ चौरिन्द्रिय के पर्याप्त स गु	१	१	२	४	३
४६ पचेन्द्रिय के पर्याप्त विशेषाधिक	२	१२	१४	१०	६
४७ बेइन्द्रिय के पर्याप्त विशेषा	१	१	२	३	३
४८ तेइन्द्रिय के पर्याप्त विशेषा	१	१	२	३	३
४९ पचेन्द्रिय के अपर्याप्त असख्यात गु	२	३	५	६	६
५० चौरिन्द्रिय के ,, विशेषाधिक	१	२	३	६	३
५१ तेइन्द्रिय के अपर्या विशेषाधिक	१	२	३	५	३

	जी०	गु०	यो०	उ०	ले०
५२ बेइंद्रिय के अपर्याप्त विशेषाधिक	१	२	३	५	३
५३ प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकाय के पर्याप्त असख्यात गुण	१	१	१	३	३
५४ बादर निगोद के पर्याप्त असख्यात गुण	१	१	१	३	३
५५ बादर पथ्वीकाय के पर्याप्त अस गुण	१	१	१	३	३
५६ बादर अप्काय के प अस गुण	१	१	१	३	३
५७ बादर वाउकाय के प अस गुण	१	१	४	३	३
५८ बादर तेउकाय के अप अस गुण	१	१	३	३	३
५९ प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकाय के अपर्याप्त असख्यात गुण	१	१	३	३	४
६० बादर निगोद के अपर्याप्त अस गुण	१	१	३	३	३
६१ बादर पृथ्वीकाय के अपर्या अस गु	१	१	३	३	४
६२ बादर अप्काय के अप अस गु	१	१	३	३	४
६३ बादर वायुकाय के अप अस गु	१	१	३	३	३
६४ सूक्ष्म तेउकाय के अप अस गु	१	१	३	३	३
६५ सूक्ष्म पृथ्वीकाय के अप विशेषाधिक	१	१	३	३	३
६६ सूक्ष्म अपकाय के अप विशेषाधिक	१	१	३	३	३
६७ सूक्ष्म वाउकाय के अप विशेषाधिक	१	१	३	३	३
६८ सूक्ष्म तेउकाय के पर्याप्त सख्यात गुण	१	१	१	३	३
६९ सूक्ष्म पथ्वीकाय के प विशेषाधिक	१	१	१	३	३
७० सूक्ष्म अपकाय के प विशेषाधिक	१	१	१	३	३
७१ सूक्ष्म वायुकाय के प विशेषाधिक	१	१	१	३	३

	जी०	गु०	यो०	उ०	ले०
७२ सूक्ष्म निगोद के अपर्याप्त असख्यात गु	१	१	३	३	३
७३ सूक्ष्म निगोद के पर्याप्त सख्यात गु	१	१	१	३	३
७४ अभव्य जीव अनत गुण	१४	१	१३	६	६
७५ पडिवाइ समदष्टि अनत गुण	१४	१४	१५	१२	६
७६ सिद्ध भगवत अनत गुण	०	०	०	२	०
७७ बादर वनस्पतिकाय के पर्याप्त अनत गु	१	१	१	३	३
७८ बादर के पर्याप्त विशेषाधिक	६	१४	१५	१२	६
७९ बादर वनस्पतिकाय के अपर्याप्त असख्यात गुण	१	१	३	३	४
८० बादर क अपर्याप्त विशषाधिक	६	३	५	९	६
८१ समुच्चय बादर विशेषाधिक	१२	१४	१५	१२	६
८२ सूक्ष्म वनस्पतिकाय के अपर्याप्त असख्यात गुण	१	१	३	३	३
८३ सूक्ष्म के अपर्याप्त विशेषाधिक	१	१	३	३	३
८४ सूक्ष्म वनस्पतिकाय पर्याप्त स गु	१	१	१	३	३
८५ सूक्ष्म के पर्याप्त विशेषाधिक	१	१	१	३	३
८६ समुच्चय सूक्ष्म विशेषाधिक	२	१	३	३	३
८७ सर्वसिद्धिया विशेषाधिक	१४	१४	१५	१२	६
८८ निगोदिया जीव विशेषाधिक	४	१	३	३	३
८९ वनस्पतिकाय के जीव विशेषाधिक	४	१	३	३	४
९० एकेन्द्रिय जीव विशेषाधिक	४	१	५	३	४
९१ तियच जीव विशषाधिक	१४	५	१३	९	६

	जी०	गु०	यो०	उ०	ले०
९२ मिथ्यादृष्टि जीव विशेषाधिक	१४	१	१३	६	६
९३ अव्रती जीव विशेषाधिक	१४	४	१३	९	६
९४ सकषायी जीव विशेषाधिक	१४	१०	१५	१०	६
९५ छद्मस्थ जीव विशेषाधिक	१४	१२	१५	१०	६
९६ सयोगी जीव विशेषाधिक	१४	१३	१५	१२	६
९७ ससारी जीव विशेषाधिक	१४	१४	१५	१२	६
९८ समुच्चय जीव विशेषाधिक	१४	१४	१५	१२	६

अठाणु बोल पर ४५ द्वार

१ गति द्वार

इन अठाणु बोल मे से–

(१) एकान्त नरक गति मे बोल पावे ७ (१२, १३, १६, १८, २०, २३, ३१)।

(२) एकान्ततिर्यंचगति मे बोल पावे ४८–३, ३२ से ३७, ४२ से ४७, ५० से ७३, ७७, ७९, ८२ से ८६, ८८ से ९१।

(३) एकान्त मनुष्य गति मे बोल पावे ३–१ २, २४।

(४) एकान्त देव गति मे बोल पावे २४–४ से ११, १४, १५ १७, १९, २१, २२, २५ से ३०, ३८ से ४१।

(५) समुच्चय नारकी, तियच, मनुष्य और देव–इन चारों गति मे बोल पावे १५–४६, ४९, ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ९२ से ९८।

(६) सिद्ध गति मे बोल पावे १–७६ ।

२ इन्द्रिय द्वार

१ एकान्त एकेद्रिय मे बोल पावे ३२–३, ५३ से ७३, ७७, ७६, ८२ से ८६, ८८, ८६, ६० ।

२ एकान्त बेइद्रिय मे बोल पावे २–४७, ५२ ।

३ एकान्त तेइद्रिय मे बोल पावे २–४८, ५१ ।

४ एकान्त चौरिन्द्रिय मे बोल पावे २–४५, ५० ।

५ एकान्त पचेद्रिय मे बोल पावे ४५–१, २, ४, से ४४, ४६, ४६ ।

६ समुच्चय एकेद्रिय, बेइद्रिय, तेइद्रिय, चउरिद्रिय और पचेद्रिय, इन पाचो इद्रिय मे बोल पावे १४–७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ६१ से ६८ ।

७ अनिद्रिय मे बोल पावे १–७६ ।

३ काय द्वार

१ एकान्त पथ्वीकाय मे बोल पावे ४–५५ ६१, ६५, ६६ ।

२ एकान्त अपकाय मे बोल पावे ४–५६, ६२, ६६, ७० ।

३ एकान्त तेउकाय मे बोल पावे ४–३, ५८, ६४, ६८ ।

४ एकान्त वाउकाय मे बोल पावे ४–५७, ६३, ६७, ७१ ।

५ एकान्त वनस्पतिकाय मे बोल पावे १२–५३, ५४, ५६, ६०, ७२, ७३, ७७, ७६, ८२, ८४, ८८, ८६ ।

६ समुच्चय पाच स्थावर मे वोल ४–८३, ८५, ८६, ६० ।

७ एकान्त त्रसकाय मे बोल पावे ५१–१, २, ४ से ५२ ।

८ समुच्चय पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय, इन छहकाय मे बोल पावे १४–७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ९१ से ९८ ।

९ अकाय मे बोल पावे १–७६ ।

४ योग द्वार

१ एकान्त काययोग मे बोल पावे ३८–३, २४, ४९ से ७३ ७७, ७९, ८०, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९० ।

२ काययोग और वचनयोग, इन दोनो योगो मे बोल पावे ३–४५, ४७, ४८ ।

३ समुच्चय मन, वचन और काय इन तीनो योगो मे बोल पावे ५६–१, २, ४ से २३, २५ से ४४, ४६, ७४, ७५, ७८, ८१, ८७, ९१ से ९८ ।

४ अयोगी मे बोल पावे १–७६ ।

५ वेद द्वार

१ एकात स्त्रीवेद मे बोल पावे ९–२, २६, २८, ३०, ३३, ३५, ३७, ३९, ४१ ।

२ एकात पुरुषवेद मे बोल पावे २२–४, से ११, १४, १५, १७, १९, २१ २२, २५, २७, २९, ३२, ३४, ३६, ३८, ४० ।

३ पुरुष वेद और नपुसक वेद, इन दोनो वेदो मे बोल पावे १–पहला ।

४ एकान्त नपुसकवेद मे बोल पावे ४९–३, १२, १३, १६, १८, २०, २३, २४, ३१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४७, ४८, ५०

से ७३, ७७, ७८, ८२ से ८६, ८८, ८६, ६० ।

(५)स्त्री, पुरुष और नपुसक, इन तीनो वेदो मे बोल पावे १६–४६, ४६, ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ६१ से ६८ ।

६ अवेदी में बोल पावे १–७६ ।

६ कषाय द्वार

१ क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारो कषायो मे बोल पावे ६७–१ से ७५, ७७, से ६८ ।

२ अकषायी मे बोल पावे १–७६ ।

७ लेश्या द्वार

१ एकान्त कृष्णलेश्या में बोल पावे २–१२, १३ ।

२ एकान्त नीललेश्या में बोल पावे १–१८ ।

३ एकान्त कापोतलेश्या मे बोल पावे २–२३, ३१ ।

४ एकान्त तेजोलेश्या में बोल पावे ६–२५ से २८, ४०, ४१।

५ एकान्त पद्मलेश्या मे बोल पावे ३–१६ २१, २२ ।

६ एकान्त शुक्ललेश्या मे बोल पावे ११–४ से ११ १४ १५ १७ ।

७ कृष्ण और नील, इन दो लेश्याओ में बोल पावे १–१६ ।

८ नील और कापोत, इन दो लेश्याओ मे बोल पावे १–२०

६ कृष्ण, नील और कापोत इन तीन लेश्याओ में बोल पावे ३३–३, २४, ४५ ४७, ४८, ५० से ५८, ६०, ६३ से ७३, ७७, ८२, से ८६, ८८ ।

१० कृष्ण नील, कापोत और तेजा इन चारो लेश्याओ में

बोल पावे १०–२६, ३०, ३८, ३६, ५६, ६१, ६२, ७६, ८६, ६० ।

११ समुच्चय कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल, इन छहो लेश्या में बोल पावे २७–१, २, ३२, से ३७, ४२, ४३, ४४, ४६, ४६, ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७ ६१ से ६८ ।

१२ एकान्त अलेसी में बोल पावे १–७६ ।

८ दृष्टि द्वार

१ एकान्त सम्यग्दृष्टि में बोल पावे २–४, ७६ ।

२ एकान्त मिथ्यादष्टि मे बोल पावे ३८–३, २४, ४५, ४७, ४८ ५३ से ७३, ७४, ७७, ७६, ८२ से ८६ ८८, ८६, ६०, ६२ ।

३ सम्यग्दष्टि और मिथ्यादष्टि इन दोनो दृष्टि में बोल पावे ५–४६, ५०, ५१, ५२, ८० ।

४ सम्यग्दृष्टि मिथ्यादष्टि और सम्यग्मिथ्या (मिश्र) दृष्टि, इन तीनो दृष्टि में बोल पावे ५०–१, २, ८ से २३, २५ से ४४, ४६, ७५, ७८, ८१, ८७, ६१, ६३ से ६८ ।

६ ज्ञान द्वार

१ मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, इन दोनो ज्ञानो में बोल पावे ३–५०, ५१, ५२ ।

२ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान इन तीनो ज्ञानो मे बोल पावे ४४–८ से २३, २५ से ४४, ४६, ८०, ६१ ६३ ।

३ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन पयवज्ञान, इन

चारो ज्ञानो में बोल पावे ३–४६, ६४, ६५ ।

४ मतिज्ञान श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पयवज्ञान और केवल ज्ञान, इन पाचो ज्ञानो म बोल पावे ६–१, २, ७५, ७८, ८१, ८७, ९६, ९७, ९८ ।

५ एकात केवलज्ञान में बोल पावे १–७६ ।

६ एकान्त मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान–इन दोनों अज्ञान मे बोल पावे ३६–३, २४, ४५, ४७, ४८, ५३ से ७३, ७७, ७९, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९० ।

७ समुच्चय मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान–इन दो अज्ञानो में बोल पावे ३९–३६ उपरोक्त तथा ५०, ५१, ५२ ।

८ समुच्चय मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभगज्ञान, इन तीनो मे बोल पावे ५७–१, २, ५ से २३, २५ से ४४, ४६, ४९, ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ९१ से ९८ ।

१० दशन द्वार

१ एकान्त अचक्षुदशन में बोल पावे ३६–३, ४७, ४८, ५१ से ७३ ७७, ७९, ८२ से ८६ ८८, ८९, ९० ।

२ एकान्त चक्षुदशन और अचक्षुदशन, इन दो दशनो में बोल पावे ३–२४, ४५, ५० ।

३ चक्षुदशन, अचक्षुदशन और अवधिदशन, इन तीन दशनो मे बोल पावे ४९–४ से २३, २५ से ४४, ४६, ४९, ७४, ८०, ९१ से ९५ ।

(४) चक्षुदशन, अचक्षुदशन, अवधिदशन और केवलदशन, इन चारो दशनो मे बोल पावे ९–१, २, ७५, ७८, ८१, ८७,

६६, ६७, ६८।

(५) एकमात्र केवलदर्शन मे बोल पावे १–७६ ।

११ संयति द्वार

१ संयति असंयति और संयतासंयति, इन तीनो मे बोल पावे १२–१, २ ४६, ७५, ७८, ८१, ८७, ९४ से ९८।

२ असंयति और संयतासंयति–इन दोनो मे बोल पावे १०–३२ से ३७, ४२ से ४४, ६१।

३ एकान्त असंयति मे बोल पावे ७५–३ से ३१ २९, ३८ से ४१, ४५, ४७ से ७४ ७७, ७९, ८०, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९० ९२, ९३।

४ नोसंयति नोअसंयति नोसंयतासंयति मे बोल पावे १–७६ ।

१२ उपयोग द्वार

१ एकान्त मति अज्ञान श्रुतअज्ञान और अचक्षुदर्शन में बोल पावे ३४–३ ४७, ४८, ५३ से ७३ ७७, ७९, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९०।

२ मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन,–इन चार उपयोगो में बोल पावे २–२४ २५।

३ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और अचक्षुदर्शन इन पाचो उपयोगो मे बोल पावे २–५१ ५२।

४ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन–इन छह उपयोगो मे बोल पावे १–५०।

५ तीन ज्ञान और तीन दर्शन–इन छह उपयोगो में बोल

पावे १–४ ।

६ तीन अज्ञान और तीन दशन–इन छह उपयोगो में बोल पावे २–७४, ६२ ।

७ तीन ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दशन–इन नौ उपयोगो मे बोल पावे ४३–५ से २३, २५ से ४४, ४६, ८०, ६१, ६३ ।

८ चार ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दशन–इन दश उपयोगो मे बोल पावे ३–४६, ६४, ६५ ।

६ पाच ज्ञान, तीन अज्ञान और चार दशन–इन बारह उपयोगो में बोल पावे ६–१, २, ७५, ७८, ८१, ८७, ६६, ६७, ६८ ।

१० केवलज्ञान और केवलदशन–इन दो उपयोगो में बोल पावे १–७६ ।

११ समुच्चय साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त–इन दो उपयोगो में बोल पावे ६८ ही ।

१३ आहारक द्वार

१ एकान्त आहारक में बोल पावे १८–३, ४५ से ४८, ५३ से ५७, ६८ से ७१, ७३, ७७ ८४ ८५ ।

२ एकात अनाहारक में बोल पावे १–७६ ।

३ आहारक तथा अनाहारक–इन दोनो में बोल पावे ७६–१, २, ४ से ४४, ४६ से ५२, ५८, से ६७, ७२, ७४, ७५ ७८ से ८३, ८६ से ६८ ।

१४ भाषक द्वार

१ एकान्त भाषक में बोल पावे ४–४५ से ४८ ।

२ एकान्त अभापक में बोल पावे ३६–३, २४, ४६ से ७३, ७६, ७७, ७६, ८०, ८२, से ८६ ८८, ८६, ६० ।

३ भापक और अभापक, इन दोनो में बोल पावे ५५–१, २, ४ से २३, २५ से ४४, ७४, ७५ ७८, ८१, ८७, ६१ से ६८ ।

१५ परित्त द्वार

१ एकान्त परित्त में बोल पावे २-४, ७५ ।

२ एकान्त अपरित्त में बोल पावे १–७४ ।

३ परित्त और अपरित्त इन दोनो मे बोल पावे ६४–१, २, ३, ५ से ७३, ७७ से ६८ ।

४ नोपरित्त नोअपरित्त मे बोल पावे १–७६ ।

१६ पज्जत्त द्वार

१ एकान्त पर्याप्त में बोल पावे १६–३, ४५ से ४८, ५३ से ५७, ६८ से ७१, ७३, ७७, ७८, ८४, ८५ ।

२ एकान्त अपर्याप्ता में बोल पावे २०–२४, ४६ से ५२, ५८ से ६७, ७२, ७६, ८०, ८२, ८३ ।

३ पर्याप्ता और अपर्याप्ता–इन दोनो मे बोल पावे ५८–१, २, ४ से २३, २५ से ४४, ७४, ७५, ८१, ८६ से ६८ ।

४ नोपर्याप्ता नोअपर्याप्ता में बोल पावे १–७६ ।

१७ सूक्ष्म द्वार

१ एकान्त सूक्ष्म में बोल पावे १५–६४ से ७३, ८२, से ८६ ।

२ एकान्त बादर मे बोल पावे ६८–१ से ६३, ७७ से ८१।

३ सूक्ष्म और बादर–इन दोनो मे बोल पावे १४–७४, ७५, ८७ से ९८।

४ नोसूक्ष्म नोबादर में बोल पावे १–७६।

१८ सन्नी द्वार

१ एकान्त सन्नी मे बोल पावे ३६–१, २, ४ से २३, २५ से २८, ३०, ३२ से ३७, ३९, ४०, ४१।

२ एकान्त असन्नी मे बोल पावे ३९–३, २४, ४५, ४७, ४८, ५० से ७३, ७७, ७९, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९०।

३ सन्नी और असन्नी–इन दोनो मे बोल पावे २२–२९, ३१, ३८, ४२, ४३, ४४, ४६, ४९, ७४ ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ९१ से ९८।

४ नोसन्नी नोअसन्नी मे बोल पावे १–७६।

१९ भव्य द्वार

१ एकान्त भव्य मे बोल पावे ३–४, ७५, ८७।

२ एकान्त अभव्य मे बोल पावे १–७४।

३ भव्य और अभव्य–इन दोनो मे बोल पावे ९३–१, २, ३, ५ से ७३, ७७ से ८६, ८८ से ९८।

४ नोभव्य नोअभव्य मे बोल पावे १–७६।

२० अस्ति द्वार

१ जीवास्तिकाय मे बोल पावे ९४–१ से ५३, ५५, से ५९, ६१ से ७१, ७४ से ९८।

२ पुद्गलास्तिकाय मे बोल पावे ४–५४, ६०, ७२, ७३ ।

३ धर्मास्तिकाय (४) अधर्मास्तिकाय (५) आकाशास्तिकाय और (६) काल–इन चारो द्रव्यो मे अट्ठाणु बोल मे से कोई भी बोल नही मिलता ।

२१ चरम द्वार

१ एकान्त चरम मे बोल पावे ३–४, ७५, ८७ ।

२ एकान्त अचरम मे बोल पावे २ -७४, ७६ ।

३ चरम और अचरम–इन दोनो मे बोल पावे ९३ १, २, ३,५, से ७३, ७७ से ८६, ८८ से ९८ ।

२२ दण्डक द्वार

१ एकान्त नारकी के दण्डक मे बोल पावे ७–१२, १३, १६, १८, २०, २३, ३१ ।

२ एकान्त भवनपति के १० दण्डक मे बोल पावे २ २९, ३० ।

३ एकान्त पृथ्वीकाय के दण्डक मे बोल पावे ४–५५, ६१, ६५ ६९ ।

४ एकान्त अप्काय के दण्डक मे बोल पावे ४–५६, ६२, ६६ ७० ।

५ एकान्त तेजस्काय के दण्डक मे बोल पावे ४ -३, ५८, ६४, ६८ ।

६ एकान्त वायुकाय के दण्डक मे बोल पावे ४–५७, ६३, ६७, ७१ ।

७ एकात वनस्पतिकाय के दण्डक मे बोल पावे १२-५३, ५४, ५६, ६०, ७२, ७३, ७७, ७६, ८२, ८४, ८८, ८६।

८ एकान्त बेइन्द्रिय के दण्डक मे बोल पावे २-४७ ५२।

६ एकात तेइन्द्रिय के दण्डक मे बोल पावे २-४८ ५१।

१० एकात चउरिन्द्रिय के दण्डक मे बोल पावे २-४५ ५०।

११ एकात तियक पचेन्द्रिय के दण्डक मे बोल पावे ६-३२ से ३७, ४२ से ४४।

१२ एकात मनुष्य के दण्डक मे बोल पावे ३-१, २, २४।

१३ एकान्त वाणव्यन्तर के दण्डक मे बोल पावे २-३८, ३६।

१४ एकात ज्योतिषी के दण्डक मे बोल पावे २-४०, ४१।

१५ एकात वैमानिक के दण्डक मे बोल पावे १८-४ से ११ १४, १५, १७ १६, २१, २२, २५ से २८।

१६ पथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय वायुकाय और वनस्पतिकाय, इन पाचो दण्डक मे बोल पावे ४-८३, ८५, ८६, ६०।

१७ पाच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय और तियकपचेन्द्रिय, इन नव दण्डक मे बोल पावे १-६१।

१८ पचेन्द्रिय के १६ दण्डक मे बोल पावे २-४६, ४६।

१६ समुच्चय चौवीस ही दण्डक मे बोल पावे १३-७४, ७५, ७८ ८०, ८१, ८७, ६२ से ६८।

२० दण्डकरहित सिद्ध भगवान मे बोल पावे १-७६।

२३ शरीर द्वार

१ औदारिक शरीर मे बोल पावे ६६-१, २, ३, २४, ३२ से ३७, ४२ से ७५ ७७ से ६८।

२ वैक्रिय शरीर मे बोल पावे ६०—१, २, ४ से २३, २५ से ४४, ४६, ४६, ५७, ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ६० से ६८ ।

(अ) भवप्रत्ययिक वक्रिय शरीर मे बोल पावे ३३—४ से २३, २५ से ३१, ३८ से ४१, ४६, ८० ।

(आ) लब्धि प्रत्ययिक वैक्रिय शरीर मे बोल पावे १४—१, २, ३२ से ३७, ४२, ४३, ४४, ५७, ६०, ६१ ।

(इ) भवप्रत्ययिक और लब्धिप्रत्ययिक—इन दोनो वैक्रिय शरीर मे बोल पावे १३—४६, ७४, ७५, ७८, ८१, ८७, ६२ से ६८ ।

३ आहारक शरीर मे बोल पावे ११—१, ४६, ७५, ७८, ८१, ८७, ६४ से ६८ ।

४ तैजस और कामण इन दोनो शरीर मे बोल पावे ६७—१ से ७५, ७७ से ६८ ।

५ अशरीरी मे बोल पावे १—७६ ।

२४ अवगाहना द्वार

१ जघन्य अगुल के असख्यातवे भाग की अवगाहना मे बोल पावे ६७—१ से ७५, ७७ से ६८ ।

२ उत्कृष्ट एक हजार योजन जाझेरी अवगाहना मे बोल पावे १७—५३, ७४, ७५ ७७, ७८, ८१, ८७, ८६ से ६८ ।

३ स्वस्व स्थान की उत्कृष्ट अवगाहना मे बोल पावे ८०—१ से ५२, ५४ से ७३, ७६, ८०, ८२ से ८६, ८८ ।

४ शरीर प्रदेश तो नही और जीव प्रदेश की जघन्य एक

हाथ आठ अगुल की अवगाहना मे और उत्कृष्ट ३३३ धनुष ३२ अगुल की अवगाहना मे बोल पावे १–७६।

२५ सहनन द्वार

१ वज्रऋषभनाराच आदि छह सहनन मे बोल पावे २७–१, २, ३२ से ३७, ४२, ४३, ४४, ४६, ४६, ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ६१ से ६८।

२ एकान्त छेवट्ठ सहनन मे बोल पावे ३६–३, २४, ४५, ४७, ४८, ५० से ७३, ७७, ७६, ८२ से ८६, ८८, ८६, ६०।

३ समच्चय छेवट्ठ सहनन म बोल पावे ६६–१, २ ३, २४, ३२ से ३७, ४२ से ७५, ७७ से ६८।

४ असहनन मे बोल पावे ३२–४ से २३, २५ से ३१, ३८ से ४१, ७६।

२६ सस्थान द्वार

१ एकान्त समचउरस मस्थान मे बोल पावे २४–४ से ११ १४, १५, १७, १६, २१, २२, २५ से ३०, ३८ से ४१,।

२ समुच्चय समचतुरस्र सस्थान मे बोल पावे ५१–२४ पूर्वोक्त १ २, ३२ से ३७ ४२, ४३, ४४, ४६, ४६, ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७ ६१ स ६८।

३ न्यग्रोधपरिमण्डल, सादि वामन और कुब्ज–इन चारों सस्थानो म बाल पाव २७–१, २, ३२ से ३७, ४२, ४३, ४४, ४६, ४६ ७४ ७५, ७८, ८०, ८१ ८७, ६१ से ६८।

४ एकात हुण्डक सस्थान में बाल पावे ४६–३, १२, १३, १६ १८, २०, २३ २४ ३१, ४५, ४७, ४८, ५० से ७३,

७७, ७९, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९० ।

५ समुच्चय हुण्डक सस्थान मे बोल पावे ७३–१, २, १२, १३, १६, १८, २०, २२, २३, २४, ३१ से ३७, ४० से ७५, ७७ से ९८ ।

६ छह् सम्थान तो नही, किंतु अनवस्थित सस्थान मे बोल पावे १–७६ ।

२७ सज्ञा द्वार

१ आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन–चारो सज्ञा मे बोल पावे ९७ १ से ७५, ७७ से ९८ ।

२ एकान्त नो सज्ञापयुक्त मे बोल पावे १ ७६ ।

- समुच्चय नो सज्ञोपयुक्त मे बोल पावे १३–१, २, ४६, ७५, ७६, ७८, ८१, ८७, ९४ से ९८ ।

२८ समुदघात द्वार

१ वेदनीय, कपाय, और मारणान्तिक इन–तीनो समुद् घातो मे बोल पावे ९७–१ से ७५, ७७ से ९८ ।

२ वैक्रिय समुद्घात मे बोल पावे ५४–१, २, ८ से २३, २५ से ४४, ४६, ५७, ७४, ७५, ७८, ८१, ८७, ९० से ९८ ।

३ तैजस समुदघात मे बोल पावे ४५–१ २, ८ से ११, १४, १५, १७, १९, २१, २२, २५ से ३०, ३२ से ४४, ४६, ७४, ७५, ७८, ८१, ८७, ९१ से ९८ ।

४ आहारक समुदघात मे बोल पावे ११–१, ४६, ७५, ७८, ८१ ८७, ९४ से ९८ ।

५ केवलीसमुद्घात मे बोल पावे ८–१, ७५, ७८, ८१,

८७, ९६, ९७, ९८।

६ असमोहया (सातो समुदघात से रहित) मे बोल पावे १-७६।

२९ पर्याप्ति द्वार

१ आहार, शरीर, इद्रिय, और श्वासोच्छवास-इन चारो पर्याप्ति मे बोल पावे ३३-३ २४, ५३ से ७२ ७७ ७९, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९०।

२ आहार शरीर, इद्रिय, श्वासोछवास और भाषा-इन पाचो पर्याप्ति मे बोल पावे ६-४५ ४७, ४८, ५०, ५१, ५२।

३ आहार, शरीर, इद्रिय, श्वासोछवास, भाषा और मन-इन छहो पर्याप्ति मे बोल पावे ५८-१, २, ४ से २३ २५ से ४४, ४६ ४९, ७४, ७५ ७८, ८०, ८१ ८७, ९१ से ९८।

४ नोपर्याप्ता नोअपर्याप्ता मे बोल पावे १-७६।

३० आहार द्वार

१ जो जीव २८८ बोल का आहार लेवे, जिनमे व्याघात की अपेक्षा कदाचित तीन दिशा कदाचित् चार और कदाचित पाच दिशा और निव्याघात हो तो छह दिशा का आहार लेने वाले मे बोल पावे ३४-५७, ६३ स ७५, ७८, ८० से ९८।

२ निर्व्याघात की अपेक्षा नियमा छह दिशा का आहार करने वाले मे बोल पावे ६३-१ से ५६, ५८ से ६२, ७७, ७९।

३ एका त अनाहारक मे बोल पावे १-७६।

३१ उत्पाद द्वार

१ जघन्य १, २, ३ उत्कृष्ट सख्याता उत्पन्न होवे, उन मे बोल

पावे १०–१, २, ४ से ११ ।

२ जघन्य १, २, ३, यावत सख्याता, उत्कृष्ट असख्याता ऊपजे जिन मे बोल पावे ५६–३ १२ से ५३, ५५ से ५६ ६१ से ७१ ।

३ जघन्य १, २, ३ यावत् सख्याता असख्याता उत्कृष्ट अनता ऊपजे, जिन मे बोल पावे २४–७४, ७५, ७७ से ६० ।

४ जघन्य १, २, ३, उत्कृष्ट १०८ सिद्ध होवे जिन मे बाल पावे १–७६ ।

३२ स्थिति द्वार

१ जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की स्थिति मे बोल पावे ६६–१, २, ३, २४ ३२ से ३७ ४२ से ७५, ७७ से ६८ ।

स्व स्व स्थान की जघन्य स्थिति मे वोल पावे ६७–१ से ७५, ७७ से ६८ ।

३ उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की स्थिति मे बोल पावे १५–४ १२, ४६ ७४, ७५, ७८, ८१, ८७, ६२ से ६८ ।

४ स्व स्व स्थान की उत्कृष्ट स्थिति मे बोल पावे ६७–१ से ७५, ७७ से ६८ ।

५ सादि अपयवसित भागा की स्थिति मे बोल पावे १–७६ ।

३३ समोहया असमोहया द्वार

१ समोहया असमोहया दोनो प्रकार के मरण मरने वाले में बोल पावे ६७–१ से ७५, ७७ से ६८ ।

२ दोनो प्रकार के मरण रहित–अमर में बोल पावे १–७६ ।

३४ च्यवन द्वार

१ जघन्य १, २, ३, उत्कृष्ट संख्यात च्यवे, जिनमे बोल पावे १०–१, २, ४ से ११।

२ जघन्य १, २, ३ यावत् संख्यात उत्कृष्ट असंख्याता च्यवे जिनमे बोल पावे ५६–३, १२ से ५३, ५५ से ५६, ६१ से ७१।

३ जघन्य १, २, ३, यावत संख्यात असंख्यात उत्कृष्ट अनन्त च्यवे जिनमे बोल पावे २४–७४, ७५, ७७ से ९८।

४ च्यवन रहित सिद्ध मे बोल पावे १–७६।

३५ गत्यागति द्वार

१ + एक गति से आवे और एक गति मे जावे, जिनमें बोल पावे ८–४ से ११।

२ × दो गति से आवे और एक गति में जावे जिनमें बोल पावे ९–३, १२, ५७, ५८, ६३, ६४, ६७, ६८, ७१।

३ ● दो गति से आवे और दो गति में जावे जिनमें बोल पावे ४९–१३ से ३१, ३८ से ४१, ४५, ४७ से ५२, ५४, ५६, ६०, ६१ ६२, ६५, ६६, ६९, ७०, ७२, ७३, ७९, ८०, ८२ से ८६, ८८।

(अ) प्रकारान्तर से बोल पावे ४३–१३ से ३१, ३८ से ४१,

+ मनुष्य गति।

× तिर्यग्गति और मनुष्य गति से आवे और एक तिर्यग्गति में जावे।

● तिर्यग्गति और मनुष्य गति से आवे और तिर्यग्गति तथा मनुष्य गति में जावे।

४५, ४७, ४८, ५०, ५१, ५२, ५४, ६०, ६५, ६६, ६६, ७०, ७२, ७३, ८२ से ८६, ८८ ।

४ * तीन गति से आवे और दो गति में जावे जिनमे बोल पावे ६–५३, ५५, ५६, ७७ ८६, ६० ।

(अ) प्रकारान्तर से बोल पावे १०–५३, ५५, ५६, ५६, ६१ ६२, ७७, ७६, ८६, ६० ।

५ ‡ चार गति से आवे और चार गति में जावे, जिनमें बोल पावे १७–३२ से ३७, ४२, ४३, ४४, ४६, ७४, ६१ से ६६ ।

(अ) प्रकारान्तर से बोल पावे १६–उपरोक्त १७ के सिवाय बढे २–४६, ८० ।

६ † चार गति से आवे और पाच गति में जावे जिनमें बोल पावे ८–१, २, ७५, ७८, ८१, ८७, ६७, ६८ ।

७ आगति एक–मनुष्य की और गति नही; ऐसे सिद्ध भगवान में बोल पावे १–७६ ।

३६ प्राण द्वार

१ स्पर्शेन्द्रिय प्राण, काय बल प्राण, श्वासोच्छ्वास प्राण और

* तिर्यच, मनुष्य और देव–इन तीन गति से आवे और तिर्यगति तथा मनुष्य गति में जावे ।

‡ नरक, तिर्यच मनुष्य और देव–इन चार गति से आवे और इन्हीं चारों गति में जावे ।

† नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव–इन चार गति से आवे और नरक तिर्यंच, मनुष्य, देव तथा सिद्ध–इन पाच गति में जावे ।

आयुप्राण-इन चार प्राणो में बोल पावे ३२-३, ५३ से ७३, ७७ ७६, ८२ से ८६, ८८, ८६, ६० ।

२ रसनेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय, कायवल, श्वासोच्छवास और आयु-इन पाच प्राणो में बोल पावे १-५२ ।

३ रसनेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय वचनबल, कायबल, श्वासोच्छवास और आयु-इन छह प्राणो में बोल पावे १-४७ ।

४ घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु-इन छह प्राणो मे बोल पावे १-५१ ।

५ घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छवास और आयु-इन सात प्राणो में बोल पावे १-४८ ।

६ चक्षुरिन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय, कायबल श्वासोच्छवास और आयु-इन सात प्राणो मे बोल पावे १-५० ।

७ चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु-इन आठ प्राणो में बोल पावे १-४६ ।

८ श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय, कायबल श्वासोच्छवास और आयु-इन आठो प्राणो में बोल पावे ३-२४, ४६, ८० ।

६ श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय, मनोबल, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छवास और आयु-इन दसो प्राणा में बोल पावे ५६-१ २, ४ से २३, २५ से ४४, ४६, ७४, ७५, ७८, ८१, ८७, ६१ से ६८ ।

१० दस द्रव्य प्राणा से रहित और चार भाव प्राणो करके

सहित ऐसे सिद्ध भगवान् में बोल पावे १–७६ ।

३७ शीतादि योनि द्वार

१ एकान्त शीत योनि में बोल पावे ३–२०, २३, ३१ ।

२ एकान्त उष्ण योनि में बोल पावे ६–३, १२, १३, ५८, ६४, ६८ ।

३ शीत और उष्ण–इन दोनो योनि में बोल पावे २–१६, १८ ।

४ शीत उष्ण और मिश्र–इन तीनो योनि में बोल पावे ५४–२४, ४२ से ५७, ५९ से ६३, ६५, ६६, ६७, ६९ से ७५, ७७ से ९८ ।

५ शीतोष्ण (मिश्र) योनि मे बोल पावे ३२–१, २, ४ से ११, १४, १५, १७, १९, २१, २२, २५ से ३०, ३२ से ४१ ।

६ अयोनि मे बोल पावे १–७६ ।

३८ सचित्तादि योनि द्वार

१ एकान्त सचित्त योनि मे बोल पावे ५–५४, ६०, ७२, ७३, ८८ ।

२ एकान्त अचित्त योनि मे बोल पावे ३१–४ से २३, २५ से ३१, ३८ से ४१ ।

३ सचित्त अचित्त और मिश्र–इन तीनो योनि मे बोल पावे ५३–३, २४, ४२ से ५३, ५५ से ५९, ६१ स ७१, ७४, ७५, ७७ से ८७ ८९ से ९८ ।

४ सचित्ताचित्त (मिश्र) योनि मे बोल पावे ८–१, २,

३२ मे ३७।

५ अयोनि मे बाल पावे १–७६ ।

३६ सवृतादि योनि द्वार

१ सवृत योनि में बोल पावे ६३–३ से २३, २५ से ३१, ३८ से ४१, ५३ से ७३, ७७, ७६, ८२ से ८६, ८८, ८६ ६०।

२ विवृत योनि में बोल पावे ७–२४, ४५ ४७, ४८, ५०, ५१, ५२ ।

३ विवृत और सवृतविवृत योनि में बोल पावे ३–४२, ४३, ४४।

४ सवृतविवत (मिश्र) योनि में बोल पावे ८–१, २, ३२ से ३७।

५ सवृत विवृत और सवतविवृत–इन तीनो योनि में बोल पावे १६–४६, ४६, ७४, ७५, ७८, ८० ८१, ८७ ६१ से ६८।

६ अयोनि में बोल पावे १–७६ ।

४० लोक द्वार

१ एकान्त अधोलोक में बोल पावे ६–१२, १३, १६, १८, २०, २३, २६, ३०, ३१।

२ एकान्त तियग्लोक में बाल पावे ४–३८ से ४१ ।

३ अधोलोक और तियग्लोक–इन दोनो में बोल पावे ५–१ २, ३ २४, ५८ ।

४ ऊर्ध्वलोक में बोल पाव १६–४ से ११, १४, १५, १७,

१८, २१, २२, २५ से २८, ७६ ।

५ अधोलोक, तिर्यग्लोक और ऊर्ध्वलोक–इन तीनो मे बोल पावे ६१–३२ से ३७, ४२ से ५७, ५९ से ७५, ७७ से ९८ ।

४१ हीयमान, वर्द्धमान, अवस्थित द्वार

१ हीयमान मे बोल पावे ९४–१ से ७३, ७५, ७७, से ८६, ८८ से ९७ ।

२ वर्द्धमान मे बोल १–७६ ।

३ अवस्थित में बोल पावे ३–७४, ८७, ९८ ।

४२ शाश्वत अशाश्वत द्वार

१ शाश्वत मे बोल पावे ९५–१ से २३, २५ से ९४ ९६, ९८ ।

२ अशाश्वत मे बोल पावे ३–२४, ९५, ९७ ।

४३ आत्म द्वार

१ द्रव्य, उपयोग और दर्शन–इन तीनो आत्मा मे बोल पावे ९८–सभी ।

२ कषाय योग और वीर्य–इन तीनो आत्मा मे बोल पावे ९७–७६ वा छोडकर सभी ।

३ ज्ञानात्मा मे बोल पावे ६०–१, २, ४ से २३, २५ से ४४, ४६, ४९ से ५२, ७५, ७६, ७८, ८०, ८१, ८७, ९१ ९३ से ९८ ।

४ चारित्र आत्मा मे बोल पावे १२– १, २, ४६, ७५, ७८, ८१, ८७, ९४ से ९८ ।

४४ जीव-सख्या द्वार

१ सख्याता जीव मे बोल पावे २–१, २।

२ असख्याता जीव मे बोल पावे ६७–३ से ५०, ५५ से ५६, ६१ से ७१।

३ असख्याता शरीर मे बोल पावे ४–५४, ६० ७२, ७३।

४ अनन्ता जीव मे बोल पावे २५–७४ से ६८।

४५ अल्पबहुत्व सख्या द्वार

१ सब से थोडा मे बोल पावे १ पहला।

२ सख्यात गुण मे बोल पावे २८–२, ५ से ११, २६, २७, २८, ३०, ३३ से ४५, ६८, ७३, ८४।

३ असख्यात गुण मे बोल पावे ३५–३, ४, १२ से २५, २६, ३१ ३२, ४६, ५३ से ६४, ७२, ७६, ८२।

४ अनन्त गुण मे बोल पावे ४–७४ से ७७।

५ विसेसाहिया मे बोल पावे ३०–४६, ४७, ४८, ५०, ५१, ५२ ६५ ६६, ६७, ६६, ७०, ७१ ७८, ८०, ८१, ८३, ८५ से ६८।

। इति श्री अट्ठाणु बोल के बासठिया पर ४५ द्वार सपूर्ण।

परिशिष्ठ

१

जीव के १४ भेद में–

(१) ६४ से ६७, ७२, ८२, ८३–इन सात वोलो मे जीव का भेद १ सूक्ष्म एकेद्रिय का अपर्याप्त (१)।

(२) ६८ से ७१, ७३, ८४, ८५–इन सात बोलो मे जीव का भेद १ सूक्ष्म एकेद्रिय का पर्याप्त (२)।

(३) ८६- इस एक वोल मे जीव के भेद २–१ सूक्ष्म एकेन्द्रिय के अपर्याप्त (१) और २ सूक्ष्म एकेन्द्रिय के पर्याप्त (२)।

(४) ५८ से ६३, ७६–इन सात बोलो मे जीव का भेद १ बादर एकेद्रिय का अपर्याप्त (३)।

(५) ३, ५३ से ५७, ७७–इन सात वोलो मे जीव का भेद १ वादर एकेद्रिय का पर्याप्ता (४)।

(६) ८८, ८६, ६०–इन तीन वालो मे जीव के ४ भेद–१ सूक्ष्म एकेद्रिय का अपर्याप्त (१)–२ सूक्ष्म एकेद्रिय का पर्याप्त (२)–३ वादर एकेद्रिय का अपर्याप्त (३) और ४ वादर एकेद्रिय का पर्याप्त (४)।

(७) ५२–इस एक वोल मे जीव का भेद १ वेइंद्रिय का अपर्याप्त (५)।

(८) ५१–इस एक वाल मे जीव का भेद १- तेइंद्रिय का अपर्याप्त (७)।

(९) ५०–इस एक वोल मे जीव का भेद १--चउरिंद्रिय

का अपर्याप्त (९)।

(१०) ४७–इस एक बाल मे जीव का भेद १ बेइन्द्रिय का पर्याप्त (६)।

(११) ४८–इस एक बोल मे जीव का भेद १–तेइन्द्रिय का पर्याप्त (८)।

(१२) ४५–इस एक बोल मे जीव का १ भेद चउरिन्द्रिय का पर्याप्त (१०)।

(१३) २४–इस एक बोल मे जीव का १ भेद-असन्नी पचेद्रिय का अपर्याप्त (११)।

(१४) ४६–इस एक बोल मे जीव के २ भेद–असन्नी पचेन्द्रिय का अपयाप्त (११) और २ सन्नी पचेंद्रिय के अपर्याप्त (१३)।

(१५) ४६–इस एक बोल मे जीव के २ भेद–असन्नी पचेंद्रिय के पर्याप्त (१२) और २ सन्नी पचेद्रिय के पर्याप्त (१४)।

(१) ४२ ४३ ४४–इन तीन बोलो में जीव के २ भेद तथा ४ भेद। यदि दो पावे तो १ सनी पचेद्रिय का अपर्याप्त (१३) और २ सनी पचेद्रिय का पर्याप्त (१४)। चार पावे तो–असनी पचेद्रिय का अपर्याप्त (११) और असनी पचेद्रिय का पर्याप्त (१२) सन्नी पचेद्रिय का अपर्याप्त(१३)और सन्नी पचेद्रिय का पर्याप्त(१४)।

(१७) १, २, ४, से २३, २५, से २८, ३०, ३२ से ३७, ३९, ४०, ४१–इन छत्तीस बोलो में जीव के २ भेद–सनी पचेद्रिय का अपर्याप्त (१३) और सनी पचेद्रिय का पर्याप्त (१४)।

(१८) २९ ३१ ३८–इन तीन बोला मे जीव के ३ भेद–असन्नी पचेद्रिय का अपर्याप्त (११) सनी पचेद्रिय का अपर्याप्त(१३)सनी

पचेद्रिय का पर्याप्त (१४)।

(१९) ८०-इस एक बोल में जीव के ६ भेद-बादर एकेन्द्रिय के अपर्याप्त (३) बेइन्द्रिय के अपर्याप्त (५) तेइन्द्रिय के अपर्याप्त जीव भेद (७) चउरिन्द्रिय के अपर्याप्त (९) असन्नी पचेन्द्रिय के अपर्याप्त (११) और सन्नी पचेन्द्रिय के अपर्याप्त (१३)।

(२०) ७८-इस एक बोल में जीव के ६ भेद-बादर एकेन्द्रिय के पर्याप्त (४) बेइन्द्रिय के पर्याप्त (६) तेइन्द्रिय के पर्याप्त (८) चउरिन्द्रिय के पर्याप्त (१०) असन्नी पचेन्द्रिय के पर्याप्त (१२) और सन्नी पचेन्द्रिय के पर्याप्त (१४)।

(२१) ८१-इस एक बोल मे जीव के भेद १२-बादर एकेन्द्रिय के अपर्याप्त (३) से सन्नी पचेन्द्रिय के पर्याप्त (१४) तक।

(२२) ७४ ७५, ८७, ९१ से ९८-इन ग्यारह बोलो में जीव के भेद १४-सूक्ष्म एकेन्द्रिय के अपर्याप्त (१) से सन्नी पचेन्द्रिय के पर्याप्त (१४) तक सभी।

(२३) ७६-इस एक बोल मे जीव के भेद १४ मे से कोई भी नहीं।

२

गुणठाणा १४

(१) ३-२४, ४५, ४७, ४८, ५३ से ७४, ७७ ७९, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९०, ९२-इन अडतीस बोलो में पहला गुण ठाणा।

(२) ५०, ५१, ५२-इन तीन बोलों में दूसरा गुणठाणा।

(३) ४९, ८०-इन दो बोलो में गुणठाणा ३-पहला, दूसरा

और तीसग।

(४) ४-इस एक बोल मे १ गुणठाणा-चौथा।

(५) ५ से २३, २५ से ३१, ३८ से ४१, ६३,-इन इकत्तीस बोलो मे गुणठाणा ४-पहिले से चौथे तक।

(६) ३२ से ३७, ४२, ४३, ४४, ६१-इन दस बोलो में गुणठाणा ५-पहिले से पाचवे तक।

(७) ६४-इस एक बोल में गुणठाणा १० पहिले से दसव तक।

(८) ४६, ६५ इन दो बोलो मे गुणठाणा १२ पहिले से बारहवे तक।

(९) ६६ इस एक बोल मे गुणठाणा १३ पहिले से तेरवे तक।

(१०) १, २ ७५, ७८, ८१, ८७, ९७, ९८ इन आठ बोलो मे गुणठाणा १४ -पहिले से चौदहवे तक।

(११) ७६ - इस एक बोल में गुणठाणा नही।

३

योग १५

(१) ३, ५३ से ५६, ६८ से ७१, ७३, ७७, ८४, ८५- इन तेरह बोलो मे योग १-औदारिक शरीर काययोग।

(२) ४६, ४७, ४८-इन तीन बोलो मे योग २-व्यवहार वचनयोग और औदारिक शरीर काययोग।

(३) २४, ५०, ५१, ५२, ५८ से ६७, ७२, ७६, ८२, ८३,

८६, ८८, ८६–इन इक्कीस बोलो मे योग ३–औदारिक द्विक, कामण शरीर काययोग ।

(४) ५७–इस एक बोल मे योग ४–औदारिक द्विक और वक्रिय द्विक ।

(५) ४६, ८०, ६०–इन तीन बोलो मे योग ५–औदारिक-द्विक, वक्रिय द्विक और कामणशरीर काययोग ।

(६) ४ से २३, २५ से ३१, ३८ से ४१–इन इकत्तीस बोलो मे योग ११–४ मनोयोग ४ वचनयोग, २ वैक्रियद्विक और १ कामणशरीर काययोग ।

(७) २, ३२ से ३७, ४२, ४३, ४४, ७४, ६१, ६२, ६३–इन चौदह बोलो मे योग १३ -४ मनोयोग, ४ वचनयोग, २ औदारिकद्विक, २ वैक्रियद्विक और १ कामणशरीर काययोग ।

(८) ४६–इस एक बोल मे योग १४ -४ मनोयोग, ४ वचनयोग, २ औदारिकद्विक, २ वैक्रियद्विक और २ आहारकद्विक ।

(६) १, ७५, ७८, ८१, ८७, ६४ से ६८–इन दस बोलो मे योग १५ ४ मनोयोग, ४ वचनयोग, ७ काययोग ।

(१०) ७६ इस एक बोल मे योग नही, अयागी हैं ।

४

उपयोग १२

(१) ७६–इस एक बोल मे उपयोग २ -१ केवलज्ञान और २ केवल दशन ।

(२) ३, ४७, ४८, ५३ से ७३, ७७, ७६, ८२ से ८६,

८८, ८६ ६० इन चौतीस बोलो मे उपयोग ३ -१ मतिअज्ञान, २ श्रुतअज्ञान और ३ अचक्षुदशन ।

(३) २४, ४५ इन दो बोलो मे उपयोग ४ -२ अज्ञान, २ दशन ।

(४) ५१, ५२ इन दो बोलो मे उपयोग ५ २ ज्ञान, २ अज्ञान, १ दशन (अचक्षु) ।

(५) ५०–इस एक बोल मे उपयोग ६–२ ज्ञान, २ अज्ञान, २ दशन ।

(६) ७४ ६२–इन दो बोलो मे उपयोग ६–३ अज्ञान, २ दशन ।

(७) ४–इस एक बोल् मे उपयोग ६–३ ज्ञान, ३ दशन ।

(८) ४६, ८०–इन दो बोलो मे उपयोग ८ तथा ६ । ८ पावे तो–३ ज्ञान ३ अज्ञान २ दशन–अचक्षुदशन और अवधि-दशन । ६ पावे तो ३ ज्ञान, ३ अज्ञान और ३ दशन ।

(६) ५ से २३, २५ से ४४, ६१, ६२–इन इकतालीस बोलो मे उपयोग ६ ३ ज्ञान ३ अज्ञान और ३ दशन ।

(१०) ४६, ६४ ६५–इन तीन बोलो मे उपयोग १० ४ ज्ञान, ३ अज्ञान और ३ दशन ।

(११) १, २, ७५, ७८, ८१ ८७, ६६, ६७, ६८ इन नव बोलो मे उपयोग १२ ५ ज्ञान, ३ अज्ञान और ४ दशन ।

५

लेश्या ६

(१) १२, १३–इन दो बोलो मे लेश्या १–कृष्ण ।

(२) १८–इस एक बोल मे लेश्या १–नील ।

(३) २३ ३१–इन दो बोलो मे लेश्या १–कापोत ।

(४) १६–इस एक बोल मे लेश्या २–कृष्ण और नील ।

(५) २०–इस एक बोल मे लेश्या २–नील और कापोत ।

(६) २५ से २८, ४०, ४१–इन छह बोलो मे लेश्या १–तेजो ।

(७) १९, २१ २२–इन तीन बोलो मे लेश्या १–पद्म ।

(८) ४ से ११, १४, १५, १७–इन ग्यारह बोलो मे लेश्या १–शुक्ल ।

(९) ३, २४, ४५, ४७, ४८, ५० से ५८, ६०, ६३ से ७३, ७७, ८२ से ८६, ८८–इन तैंतीस बोलो मे लेश्या ३–कृष्ण, नील और कापोत ।

(१०) २९, ३०, ३८, ३९, ५९, ६१, ६२, ७९, ८९, ९०–इन दस बोलो मे लेश्या ४–कृष्ण, नील, कापोत और तेजो ।

(११) १, २, ३२ से ३७, ४२, ४३, ४४, ४६, ४९, ७४, ७५, ७८ ८०, ८१, ८७, ९१ से ९८–इन सत्तावीस बोलो मे लेश्या ६ ही ।

(१२) ७६–इस एक बोल मे लेश्या नही ।

॥ अठाणु बोल के बासठिया का विवेचन सपूर्ण ॥

६

चौदह गुणस्थान का बासठिया

चौदा गुणस्थान के नाम	जी०	गु०	यो०	उ०	ले०
१ मिथ्यात्व गुणस्थान मे	१४	१	१३	६	६
२ सास्वादन गुणस्थान मे	६	१	१३	६	६
३ मिश्र गुणस्थान मे	१	१	१०	६	६
४ अविरत सम्यग्दृष्टि गुण०	२	१	१३	६	६
५ देशविरतसम्यग्दृष्टि गुण०	१	१	१२	६	६
६ प्रमत्तसयत गुण०	१	१	१४	७	६
७ अप्रमत्तसयत गुण०	१	१	११	७	३
८ निवत्तिबादर गुण०	१	१	६	७	१
६ अनिवत्तिबादर गुण०	१	१	६	७	१
१० सूक्ष्मसपराय गुण०	१	१	६	४+	१
११ उपशातमाह गुण०	१	१	६	७	१
१२ क्षीणमोह गुण०	१	१	६	७	१
१३ सयागी केवली गुण०	१	१	७	२,	१
१४ अयागी केवली गुणस्थान	१	१	०	२	०

+ दसवें गुणस्थान वाले के तीन दशन भी ह किंतु इस गुणस्थान में ज्ञान का ही उपयोग होने का विधान (भगवती २५-७) में है, इस अपेक्षा उपयाग ७ के बजाय ४ ह।

३२ बोल का बासठिया

१ समुच्चय जीव में

बोल	जीव का भेद	गुण	योग	उपयोग	लेश्या
१ समुच्चय जीव मे	१४	१४	१५	१२	६
२ स० अपर्याप्त मे	७	३	५	६	६
३ ,, पर्याप्त मे	७	१४	१५	१२	६
४ ,, अपर्याप्त अनाहारक मे	७	३	१	८	६
५ ,, , अहारक मे	७	३	४	६	६
६ ,, पर्याप्त अनाहारक मे	१	२	१	२	१
७ ,, ,, आहारक मे	७	१३	१४	१२	६

२ नारकी में

बोल	जीव का भेद	गुण	योग	उपयोग	लेश्या
१ नारकी मे	३	४	११	६	३
२ ,, अपर्याप्त मे	२	३	३	६	३
३ ,, पर्याप्त मे	१	४	१०	६	३
४ ,, अपर्याप्त अनाहारक मे	२	३	१	८	३
५ , ,, आहारक मे	२	३	२	६	३
६ ,, पर्याप्त आहारक मे	१	४	१०	६	३

३ तिर्यञ्च में

बोल	जीव का भेद	गुण	योग	उपयोग	लेश्या
१ तियञ्च मे	१४	५	१३	६	६
२ ,, अपर्याप्त मे	७	३	३	६	६

बोल	जीव का भेद	गुण	योग	उपयोग	लेश्या
३ तिर्यंच पर्याप्त मे	७	५	१२	६	६
४ „ अपर्याप्त अनाहारक मे	७	३	१	५	६
५ „ „ आहारक मे	७	३	२	६	६
६ „ पर्याप्त आहारक मे	७	५	१२	६	६

४ मनुष्य में

बोल	जीव का भेद	गुण	योग	उपयोग	लेश्या
१ मनुष्य मे	३	१४	१५	१२	६
२ „ अपर्याप्त मे	२	३	३	८	६
३ „ पर्याप्त मे	१	१४	१५	१२	३
४ „ अपर्याप्त अनाहारक मे	२	३	१	७	६
५ „ अपर्याप्त आहारक मे	२	३	२	८	६
६ „ पर्याप्त अनाहारक मे	१	२	१	२	१
७ „ पर्याप्त आहारक मे	१	१३	१४	१२	६

५ देव में

बोल	जीव का भेद	गुण	योग	उपयोग	लेश्या
१ देव मे	३	४	११	६	६
२ „ अपर्याप्त मे	२	३	३	६	६
३ „ पर्याप्त मे	१	४	१०	६	६
४ „ अपर्याप्त अनाहारक मे	२	३	१	८	६
५ „ अपर्याप्त आहारक मे	२	३	२	६	६
६ „ पर्याप्त आहारक मे	१	४	१०	६	६

तेतीस बोल

सूत्र श्रीउत्तराध्ययन, समवायाग तथा दशाश्रुतस्कध आदि में तेतीस बोल का उल्लेख है। उसका विस्तार इस प्रकार है।

(१) पहले बोले–एक प्रकार का असयम–सभी प्रकार के आस्रव मे प्रवृत्त होना।

(२) दूसरे बोले–दो प्रकार का बधन–राग बन्धन और द्वेप बधन।

(३) तीसरे बोले–तीन प्रकार का दण्ड–१ मन दण्ड, २ वचन दण्ड और ३ काय दण्ड।

तीन प्रकार की गुप्ति–१ मन गुप्ति, २ वचन गुप्ति, ३ काय गुप्ति ।

तीन प्रकार का शल्य–१ माया शल्य, २ निदान शल्य और ३ मिथ्या दशन शल्य।

तीन प्रकार का गव–१ ऋद्धि गव, २ रस गर्व और ३ साता गव।

तीन प्रकार की विराधना–१ ज्ञान की विराधना, २

दशन की विराधना और ३ चारित्र की विराधना ।

(४) **चौथे बोले**—चार कषाय—१ क्रोध कपाय, २ मान कपाय, ३ माया कपाय और ४ लोभ कपाय ।

चार सज्ञा—१ आहार सज्ञा, २ भय सज्ञा, ३ मैथुन सज्ञा, और ४ परिग्रह सज्ञा ।

चार कथा—१ राज्य कथा, २ देश कथा, ३ स्त्री कथा और ४ भात कथा ।

चार ध्यान—१ आत ध्यान, २ रौद्र ध्यान ३ धम ध्यान और ४ शुल्क ध्यान । तथा—१ पदस्थ, २ पिण्डस्थ, ३ रूपस्थ और ४ रूपातीत ध्यान ।

(५) **पाँचवे बोले**—पाच क्रिया—१ कायिका, २ अधिकरणिका, ३ प्राद्वषिका, ४ पारितापनिका और ५ प्राणातिपातिका ।

पाच काम गुण—शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पश ।

पाच महाव्रत—१ सवथा प्राणातिपात से निवत्ति, २ सवथा मृपावाद से निवत्ति, ३ सवथा अदत्तादान से निवत्ति, ४ सवथा मैथुन से निवत्ति और ५ सवथा परिग्रह से निवृत्ति ।

पाच समिति—१ इर्या समिति, २ भाषा समिति, ३ एपणा समिति, ४ आदान भडमत्त निक्षेपना समिति और ५ उच्चार प्रस्रवण खेल जल श्लेष्म परिस्थापनिका समिति, (इन कार्योमे शुद्ध उपयोग) ।

पाच प्रमाद—१ मद, २ विषय, ३ कपाय, ४ निद्रा और ५ विकथा ।

(६) **छठे बोले**—छह काय—१ पृथ्वीकाय, २ अपकाय, ३

तेजस्काय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय और ६ त्रसकाय।

छः लेश्या—१ कृष्ण लेश्या, २ नील लेश्या, ३ कापोत लेश्या, ४ तेजो लेश्या, ५ पद्म लेश्या और ६ शुक्ल लेश्या।

(७) सातवे बोले—सात भय—

१ इहलोक भय—मनुष्य से मनुष्य को भय।

२ परलोक भय—मनुष्य का देव या तिर्यंच से भय।

३ आदान भय—धन दौलत के नष्ट होने का भय।

४ अकस्मात भय—अचानक आपत्ति या दुःख आने का भय।

५ आजीविका भय—भविष्य मे आजीविका मे बाधा उत्पन्न होने का भय।

६ अपयश भय—प्रतिष्ठा (इज्जत) मे न्यूनता आने का भय।

७ मरण भय—मृत्यु का डर।

८ आठवे बोले—आठ मद—१ जाति मद, २ कुल मद, ३ बल मद, ४ रूप मद, ५ तप मद, ६ लाभ मद, ७ सूत्र मद और ८ ऐश्वर्य मद।

(६) नौवे बोले—ब्रह्मचर्य की नव गुप्ति (रक्षा—वाडें)।

१ ब्रह्मचारी पुरुष ऐसे स्थान मे न रहे जहा—स्त्री, पशु और नपुसक रहते हो, या बारबार आते जाते हो। यदि रहे तो चूहे और बिल्ली का दृष्टान्त। जिस स्थान मे बिल्ली रहती हो, उस स्थान पर चूहे, चाहे जितनी सावधानी से रहे, उनके मारे जाने की सभावना है, वैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्री आदि सहित स्थान भोगवे, तो उनका ब्रह्मचर्य खण्डित होना सभव है।

२ ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्री सम्बन्धी काम राग बढानेवाली कथा वार्ता नही करे, यदि करे तो निम्बु और रसना (जीभ) का दृष्टान्त । निम्बू रस का जानकार, जब निम्ब का नाम लेता है, तो उसके मुह मे पानी आन लगता है, वैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्री सम्बन्धी कथा कहे, तो शील रत्न के भग होने की सभावना रहती है ।

३ जिस स्थान पर स्त्री–कुछ देर बैठी हो, उस स्थान पर ब्रह्मचारी को बैठना नही, तथा स्त्री के साथ भी बैठना नही । यदि बैठे, तो कोरा (कद्दू) और कणक का दृष्टान्त । कोरे का फल कणक (भिजा हुआ आटा) के पास रखा जावे तो वह कणक विशेष गाला होता जाता है और उसका रस कस घटता जाता है, उसी प्रकार ब्रह्मचारी पुरुष का स्त्री के आसन पर बठने से ब्रह्मचय नष्ट हो जाता है ।

४ ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्री के अगोपाग, रूप, लावण्य निरख नही, वारवार नजर भर के देखे नही । यदि देखे, तो कच्ची आख और सूय का दृष्टान्त । जन्म लेते ही बालक सूय को देखे तो अधा हाजाता है, या उसकी दृष्टि मन्द हो जाती है, वैसे ही ब्रह्मचारी पुरुप, स्त्री के अग उपाग निरखे, तो ब्रह्मचय का नाश होना सभव है ।

५ ब्रह्मचारी पुरुप, स्त्री के रुदन, गीत, हास्य, आक्रद, कुजित इत्यादि शब्द सुनाई पड वैसी भीत या टट्टी की आड मे रहे नही (पास के मकान मे से भी इनकी ध्वनि कानो मे आती हो तो वहा नही रहे) । यदि रहे, तो मेघ और मयूर का

दृष्टान्त । मेघ की गजना पर मयूर अवश्य बोलता है—कोकारव करता है, वैसे ही स्त्री के हास्यादि के शब्द सुनने पर काम-राग वढने और ब्रह्मचय खण्डित होने की सभवना रहती है ।

६ ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्री के साथ पहले भोगे हुए भोगो को याद नही करे यदि याद करे, तो जिनरक्षित और रयणादेवी का दृष्टान्त । जिनरक्षित, रयणादवी के साथ भोगे हुए कामभोग याद कर के ललचाया और मारा गया, वैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष, पूव के भोगे हुए कामभाग का वारवार स्मरण करे, तो शीलरत्न गँवा देता है ।

७ ब्रह्मचारी पुरुष, प्रतिदिन सरस—स्वादिष्ट आहार करे नही, यदि करे तो सन्निपात के रोगी को दूध मिश्री का दष्टान्त । जिसे सन्निपात का रोग हो गया है, उसे दूध मिश्री की ठण्डाई पिलाई जावे, तो वह मर जाता है, वसे ही सदव सरस (पुष्ट) आहार करनेवाला ब्रह्मचारी, अपना ब्रह्मचय खो बैठता है ।

८ ब्रह्मचारी पुरुष, लूखा एव निरस आहार भी खूब ठोस कर खावे नही, अधिक खावे तो सेर की हाडी म सवा सेर का दृष्टान्त । मिट्टी की कच्ची हाडी जिसमे सेर धान्य पकता है, उसमे सवा सेर राधा जावे, तो हाडी फट जाती है, वैसे ही ब्रह्मचारी अधिक भोजन करे, तो ब्रह्मचय नष्ट कर देता है ।

९ ब्रह्मचारी पुरुष को स्नान शृगार करना नही शरीर का मण्डन—विभूषा करना नही यदि करे तो राक के हाथ मे रत्न का दृष्टान्त । जिस प्रकार राक पुरुष मे रत्न रखने की योग्यता नही होने से वह उछालता हुआ बाजार मे चलता है, इससे देखने

वाले का मन ललचाता है और रत्न छिन लिया जाता है। वह मूख उसे पेटी मे बन्द कर नही रखता। वैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष न्हावे, धोवे, शृगार करे, तो उसमे भी शील रत्न रखने की अयोग्यता है। इससे ब्रह्मचय नष्ट हो जाता है।

(१०) दशवें बोले–दस प्रकार का यति धम–

१ खति–अपराधी पर वैरभाव नही रखकर क्षमा करना।
२ मुत्ति–लोभ रहित बनना।
३ अज्जवे–सरलता–निष्कपटता।
४ मद्दवे–मादव, नम्रता, अहकार का त्याग।
५ लाघवे–भण्डापकरण की उपधि थोडी होना।
६ सच्च–सच्चाई से प्रामाणिकता से बोलना व आचरण करना।
७ सयमे–शरीर, मन और इन्द्रियो को वश मे रखना, नियम मे रखना।
८ तवे–आत्म शक्ति बढे, इच्छाशक्ति बढे, मनोवल दढ होवे उस विधि से उपवास आदि तप करना।
९ चियाए–ममता का त्याग करना।
१० बम्भचेरवासे–शुद्धआचार पाले, मथुन से सपूण निवृत्ति करे।

दश प्रकार की समाचारी–

१ आवस्सिया–उपाश्रय से बाहर जाने का होवे तब बडे मुनि से अज करे कि मुझे बाहर जाना जरूरी है।
२ निसीहिया–उपाश्रय में पीछा लौटते समय गुर्वादि से

कहे-'मे अपने काम से निवत्त होकर आ गया हू ।
३ आपुच्छणा-खुदके काम होवे, तो गुरुमे पुछे ।
४ पडिपुच्छणा-अय मुनियो के काम होवे, तो गुरु से वारवार पुछे ।
५ छन्दणा-अपनी लाई हुई वस्तु बडो को ग्रहण करने को कहे ।
६ इच्छाकार-गुरु से प्राथना करे कि अगर आपकी इच्छा होवे, तो मुझे सूत्राथ-ज्ञानदान दीजिये ।
७ मिच्छाकार-पापकम का गुरु के सामने मिथ्यादुष्कृत कहे।
८ तहक्कार-गुरु के वचन को प्रमाण करे-स्वीकार करे अथवा 'आप जैसा कहते हो वैसा ही है'-ऐसा कहे ।
९ अब्भुट्ठाण-गुरु तथा बडे मुनिवर आवे तव सात आठ कदम-सामने जा कर सत्कार करे और पीछा जावे तब उतना ही पहुचाने जावे ।
१० उवसपया-गुरुजनो से सूत्राथ- ज्ञान लक्ष्मी पानेके लिए सदैव सावधान रहे और गुरु के पास मे रहे ।

(११) ग्यारहवे बोले-श्रावक की ग्यारह प्रतिमा-
१ दशन प्रतिमा-शुद्ध अतिचार रहित समकित धम पाले । यह प्रतिमा एक मास की है ।
२ व्रत प्रतिमा-नाना प्रकार के व्रत नियमो का अतिचार रहित पाल्न करे । यह प्रतिमा दो मास की है ।
३ सामायिक प्रतिमा-सदव अतिचार रहित सामायिक करे। यह प्रतिमा तीन मास की है ।

४ पौषध प्रतिमा–अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा आदि का अतिचार रहित पौषध करे। यह चार मास की है।

५ कायोत्सर्ग प्रतिमा–सदैव रात्रि मे कायोत्सर्ग करे और पाच बातो का पालन करे–१ स्नान नही करे, २ रात्रि भोजन त्यागे, ३ धोती की लाग खुली रखे, ४ दिन को ब्रह्मचर्य पाले और ५ रात्रि को ब्रह्मचर्य का परिमाण करे। यह प्रतिमा पाच मास की है।

६ ब्रह्मचर्य प्रतिमा–अतिचार रहित पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करे। यह प्रतिमा छह मास की है।

७ सचित्त त्याग प्रतिमा–सचित्त वस्तु नही भोगे। यह प्रतिमा जघन्य एक दिन की और उत्कृष्ट सात मास की है।

८ आरभ त्याग प्रतिमा–स्वय आरभ नही करे। यह प्रतिमा जघन्य एक दिन व उत्कृष्ट आठ मास की है।

६ प्रेष्य प्रतिमा–दूसरे से भी आरम्भ नही करावे। यह प्रतिमा जघन्य एक दिन, उत्कृष्ट नव मास की है।

१० उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा–अपने वास्ते आरभ करके कोई वस्तु देवे तो लेवे नही। खुरमण्डन करावे या शिखा रखे। कोई उनसे ससार सम्बन्धी कोई बात एक बार पूछे या बार बार पूछे तब जानता होवे तो 'हा' कहे और नही जानता होवे तो 'ना' कहे। यह प्रतिमा जघन्य एक दिन और उत्कृष्ट दस मास की है।

११ श्रमणभूत प्रतिमा–खुरमुण्डन करे, या लोच करे। साधु जितना ही उपकरण, पात्र, रजोहरणादि रखे। स्व-

ज्ञाति की गोचरी करे और कहे कि 'मैं श्रावक हूँ।"
साधु के समान उपदेश देवे। यह प्रतिमा उत्कृष्ट ग्यारह
मास की है।

सभी प्रतिमाओ मे साडे पाच वष लगते।

(१२) **बारवे बोले**–भिक्षु की बारह प्रतिमा। यह प्रतिमा नीचे लिखे हुए तेरह नियम से होती है। पहली प्रतिमा एक मास की है जिसका पालन इस प्रकार होता,–

१ शरीर पर ममता नही रखे शरीर की शुश्रूषा नही करे, देव मनुष्य और तियच सम्बधी उपसग समभाव से सहन करे।

२ एक दाति आहार और एक दाति पानी, प्रासुक तथा एषणिक लेवे। (दाति=धार=एक साथ, धार खण्डित हुए विना जितना पात्र मे पडे उतने को 'दाति' कहते हैं)

३ प्रतिमाधारी साधु, गौचरी के लिय दिन के तीन विभाग करे और तीन भाग मे से चाहे जिस एक विभाग मे गौचरी करे।

४ प्रतिमाधारी साधु, छ प्रकार से गोचरी करे–१ पेटी के आकारे, २ अध पटी के आकारे, ३ बैल के मूत्र क आकारे, ४ पतग उडे उस तरह, ५ शखावतन और ६ जाते हुए करे, तो आते हुए नही करे और आते हुए करे, तो जाते हुए नही करे।

५ गाव के लागो को मालूम हो जाय कि 'यह प्रतिमाधारी मुनि है,' तो वहा एक रात ही रहे और ऐसा मालूम नही हो, तो दो रात्रि रहे। उपरात जितनी रात रहे उतना प्राय-

श्चित्त का भागी वने ।

६ प्रतिमाधारी साधु चार कारण से वोल्ते हैं–१ याचना करते, २ माग पूछते, ३ आज्ञा प्राप्त करते, और ४ प्रश्न का उत्तर देते ।

७ प्रतिमाधारी साधु, तीन स्थान मे निवास करे–१ बाग बगीचा, २ श्मशान छत्री, ३ वृक्ष के नीचे। इनकी याचना करे।

८ प्रतिमाधारी साधु, तीन प्रकार की शय्या ले सक्ते हैं–१ पृथ्वी, २ शिला, ३ काष्ठ ।

९ प्रतिमाधारी साधु, जिस स्थान मे हैं, वहा स्त्री आदि आवे तो भय के मारे बाहर निकले नही । कोई बसबस हाथ पकड कर निकाले, तो ईर्यासमिति सहित वाहर हो जावे तथा वहा आग लगे तो भी भय से वाहर आवे नही, कोई बाहर निकाले, तो ईर्यासमिति पूवक बाहर निकल जावे ।

९ प्रतिमाधारी साधु के पाव मे काटा लग जाय या आख मे काटा (धूल तण आदि) गिर जावे, तो आप उसे अपने हाथो से निकाले नही ।

१० प्रतिमाधारी साधु, सूर्योदय से सूय के अस्त होने तक विहार करे, बाद मे एक कदम भी चले नही ।

११ प्रतिमाधारी साधु को सचित्त पथ्वी पर बैठना या सोना कल्पे नही तथा सचित्त रज लगे हुवे पेरो से गहस्थ के यहा गोचरी जाना कल्पे नही ।

१२ प्रतिमाधारी साधु, प्रासुक जल से भी हाथ पाव और मुह आदि धोवे नही, अशुचि का लेप दूर करने के लिए धोना

कल्पता है ।

१३ प्रतिमाधारी साधु के माग मे हाथी, घोडा अथवा सिंह आदि जगली जानवर सामने आये हो, तो भी भय से रास्ता छोड नही, किंतु जो जीव डरता हो, तो तुरत अलग हट जावे। तथा रास्ते चलते धूप से छाया मे और छाया से धूप मे आवे नही और शीत उष्ण का उपमग सम भाव से सहन करे।

दूसरी प्रतिमा एक मासकी, जिसमे दो दाति अन्न और दो दाति पानी लेना कल्पता है।

तीसरी प्रतिमा एक मास की। जिसमे तीन दाति अन्न और तीन दाति पानी लेना कल्पे। इसी प्रकार चौथी, पाँचवी, छठी और सातवी प्रतिमा भी एक एक मास की है। इनमे क्रमश चार दाति, पाच दाति, छ दाति और सात दाति आहार पानी लेना कल्पे।

आठवी प्रतिमा सात दिन की। चौविहार एकान्तर तप करे, ग्राम के वाहर रहे, तीन आसन करे–चित्ता सोवे, करवट (एक बाजुपर) सोवे, पलाठी लगाकर सोवे। परीषह से डरे नही।

नौवी प्रतिमा सात दिनकी, ऊपर प्रमाणे। इतना विशेष कि इन तीन आसन मे से एक आसन करे–दण्ड आसन, लकुट आसन या उत्कट आसन।

दसवी प्रतिमा सात दिन की ऊपर प्रमाणे। इतना विशेष कि इन तीन मे से एक आसन करे–गोदुह आसन, वीरासन और अम्बकुब्ज आसन।

ग्यारहवी प्रतिमा एक दिन की। चौविहार वेला करे,

गाव बाहर पाव सकोच कर और हाथ फैला कर कायोत्सग करे।

बारहवी प्रतिमा एक दिन की। चौविहार तेला करे। गाव के बाहर शरीर वोसिरावे, नेत्र खुले रखे, पाव मकोचे, हाथ पसारे और अमुक वस्तु पर दृष्टि लगाकर ध्यान करे। देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी उपसग रहे। इस प्रतिमा के आराधन से अवधि, मन पयय और केवलज्ञान, इन तीन मे से एक ज्ञान होता है चलायमान हो जाय तो पागल बन जाय, दीघ काल का रोग हो जाय और केवली प्ररूपित धम से भ्रष्ट बनजाय।

इन कुल बारह प्रतिमाओ का काल आठ मास का है।

(१३) तेरहवे बोले–क्रिया स्थान तेरह–

१ अथ दण्ड–खुद या परिवारादि के लिये हिंसादि करे।
२ अनथ दण्ड–निरथक वा कुत्सित अथ के लिये हिंसादि करे।
३ हिंसा दण्ड-इसने मुझे मारा था, मारता है या मारेगा–इस भाव से उसे मारना।
४ अकस्मात दण्ड-मारना किसी और को था, किंतु मरजाय कोई दूसरा ही।
५ दृष्टि विपर्यास दण्ड–शत्रु जानकर मित्र को मार डालना।
६ मृषावाद दण्ड–असत्य भाषण करना।
७ अदत्तादान दण्ड–चोरी करना।
८ अध्यात्म दण्ड–मन मे दुष्ट विचार करना।
९ मान दण्ड–गव करना।
१० मित्र दण्ड–माता पिता और मित्र वग को अल्प अप

राध पर भी भारी दण्ड देना।

११ माया दण्ड–कपट करना।

१२ लोभ दण्ड–लोभ करना।

१३ ईर्यापथिक दण्ड–सयोगी वीतराग को लगनेवाली क्रिया।

(१४) चौदहवे बोले–जीव के चौदह भेद–

१ सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त।

२ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त।

३ बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त।

४ बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त।

५ बेइन्द्रिय अपर्याप्त।

६ बेइन्द्रिय पर्याप्त।

७ तेइन्द्रिय अपर्याप्त।

८ तेइन्द्रिय पर्याप्त।

९ चौरेन्द्रिय अपर्याप्त।

१० चौरेन्द्रिय पर्याप्त।

११ असन्नी पचेन्द्रिय अपर्याप्त।

१२ असन्नी पचेन्द्रिय पर्याप्त।

१३ सन्नी पचेन्द्रिय अपर्याप्त।

१४ सन्नी पचेन्द्रिय पर्याप्त।

(१५) पन्द्रहवें बोले–परमाधर्मी देव पन्द्रह–

१ आम्र, २ आम्र रस, ३ शाम, ४ सबल, ५ रुद्र, ६ वैरुद्र, ७ काल, ८ महाकाल, ९ असिपत्र, १० धनुष, ११ कुंभ, १२ वालुक १३ वैतरणी, १४ खरस्वर और १५ महाघोष।

(१६) सोलहवे बोले—सूत्रकृताग के प्रथम श्रुतस्कध के सोलह अध्ययन इनके नाम—१ स्वसमय परसमय, २ वैताlिक, ३ उपसग प्रज्ञा, ४ स्त्री परिज्ञा, ५ नरक विभक्ति, ६ वीर स्तुति, ७ कुशील परिभाषा, ८ वीर्याध्ययन, ९ धम, १० समाधि, ११ मोक्षमाग, १२ समवसरण, १३ यथातथ्य, १४ ग्रथी, १५ आदानीय और १६ गाथा ।

(१७) सत्तरहवे बोले—सयम सत्तरह प्रकार का—

१ पथ्वीकाय सयम, २ अप्काय सयम, ३ तेजस्काय सयम, ४ वायुकाय सयम ५ वनस्पतिकाय सयम, ६ बेइन्द्रिय सयम, ७ तेइन्द्रिय सयम, ८ चउरिन्द्रिय सयम, ९ पचेन्द्रिय सयम, १० अजीवकाय सयम, ११ प्रेक्षा सयम, १२ उपेक्षा सयम, १३ परिस्थापनिका सयम, १४ प्रमाजना सयम, १५ मन सयम १६ वचन सयम और १७ काय सयम ।

(१८) अठारहवे बोले—ब्रह्मचय के अठारह प्रकार—

१ मन वचन और काया करके औदारिक शरीर सम्बन्धी भोग भोगे नही भोगावे नही और जो भोग करते हैं, उन्हे अनुमोदे (प्रशसे) नही (३ ३=९ हुए) वैसे ही नौ भद वक्रिय शरीर सम्बन्धी—त्रिकरण त्रियोग के है ।

(१९) उन्नीसवे बोले—ज्ञाता सूत्र के उनीस अध्ययन—

१ मेघकुमार का, २ धन्नासाथवाह और विजय चोर का, ३ मोर के अण्डा का, ४ कछुए का, ५ शलक राजर्षि का, ६ तुबे का, ७ धन्नासाथवाह और चार बहुओ का, ८ मल्ली भगवती का ९ जिनपाल और जिनरक्षित का, १० चन्द्र की

कला का, ११ दावद्रव वक्ष का, १२ जितशत्रु राजा और सुबुद्धि प्रधान का, १३ नन्दमणिकार का, १४ तेतलीपुत्र प्रधान और पोटिला का, १५ नदी फल का, १६ अपरकका का, १७ अश्व का, १८ सुसुमा वालिका का और १९ पुडरीक कडरीक का ।

(२०) **बीसवे बोले**—असमाधि के बीस स्थानक—

१ उतावल से चले, २ विना पुजे चले, ३ अयोग्य रीति से पुजे ४ पाट पाटला अधिक रखे ५ बडो के—गुरुजनो के सामने बोले, ६ वृद्ध स्थविर—गुरु का उपघात करे, (मत प्राय करे), ७ साता-रस विभूपा के निमित्त एकेन्द्रिय जीव हणे, ८ पल-पल मे क्रोध करे, ९ हमेशा क्रोध मे जलता रहे, १० दूसरे के अवगुण खोले, चुगली, निंदा करे, ११ निश्चयकारी भाषा बोले, १२ नया क्लेश खडा करे, १३ दवे हुए क्लेश को पीछा जगावे, १४ अकाल मे स्वाध्याय करे, १५ सचित्त पथ्वी से भरे हुए हाथो से गोचरी करे, १६ एक प्रहर रात्रि बीतने पर भी जोर-जोर से बोले, १७ गच्छ मे भेद उत्पन्न करे, १८ क्लेश फैलाकर गच्छ मे परस्पर दुख उपजावे, १९ सूर्य उदय होने से अस्त हाने तक खाया ही करे और २० अनेषणीय अप्रासुक आहार लेवे ।

(२१) **इक्कीसवे बोले**—सबल(सयम को विगाडने-वाले) दोष इक्कीस प्रकार के है—

१ हस्तकम करे ।
२ मथुन सेवे।
३ रात्रि भोजन करे।

४ आधाकर्मी आहारादि सेवन करे।

५ राजपिण्ड सेवन करे।

६ पाच बोल सेवे–खरीद किया हुआ, उधार लिया हुआ, जबरन छिना हुआ, स्वामी की आज्ञा बिना लिया हुआ और स्थान पर या सामने लाकर दिया हुआ आहार आदि ग्रहण करे (साधु को देने के लिये ही खरीदा हो। अन्यथा स्वाभाविक तो सभी खरीदा जाता है)।

७ त्याग कर के बार बार तोडे।

८ एक मास मे तीन बार कच्चा जल का स्पर्श करे–नदी उतरे।

९ छ छ महीने मे गण–सप्रदाय पलटे।

१० एक मास मे तीन बार माया (कपट) करे।

११ जिसके मकान मे रहे हो, उसी के यहा से आहार करे (शय्यात्तर पिण्ड भोगव)।

१२ जानबूझकर हिंसा करे।

१३ जानबूझकर झूठ बोले।

१४ समझबूझकर चोरी करे।

१५ समझपूवक सचित्त पथ्वी पर शयन-आसन करे।

१६ समझपूवक सचित्त मिश्र पथ्वी पर शय्या आदि करे।

१७ सचित्त शिला तथा जिसमे छोटे छोटे जन्तु रहे, वैसे काष्ठ आदि वस्तु पर अपना शयन आसन लगावे।

१८ समझपूवक दस प्रकार की सचित्त वस्तु खावे–मूल, कद, स्कध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल, और

बीज ।

१६ एक वर्ष मे दस वार सचित्त जल का स्पर्श करे–नदी उतरे ।

२० एक वर्ष मे दस माया (कपट) सेवे ।

२१ सचित्त जल से भीगे हुए हाथ से गृहस्थ,आहारादि देवे और उसे जानता हुआ लेकर भोगवे ।

(२२) वाईसवे बोले–परीषह वाईस प्रकार के–

१ क्षुधा, २ तृषा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ डास मच्छर, ६ अचेल (वस्त्र रहित या अल्प वस्त्र), ७ अरति, ८ स्त्री, ९ चर्या–चलने का १० निषध्या–स्थिर आसन लगाकर एक जगह वैठे रहने का, ११ शय्या–उपाश्रय का, १२ आक्रोश, १३ वध(प्राणनाश), १४ याचना, १५ अलाभ(मागी हुई वस्तु का नही मिलना) १६ रोग, १७ तृणस्पर्श, १८ जल (पसीना तथा मेल), १९ सत्कार-पुरस्कार, २० प्रज्ञा, २१ अज्ञान और २२ दर्शन परीषह ।

(२३) तेईसवे बोले–सूत्रकृताग के २३ अध्ययन–प्रथम श्रुतस्कध के १६ अध्ययन तो सोलहवे बोल मे हैं। दूसरे श्रुतस्कध के सात अध्ययन–१ पुण्डरीक कमल, २ क्रियास्थान, ३ आहार-परिज्ञा ४ प्रत्याख्यान परिज्ञा,५ अनगारसुत्त, ६ आर्द्रकुमार और ७ उदकपेढाल पुत्र ।

(२४) चौवीसवे बोले–देव चौवीस प्रकार के–१० भवनपति, ८ व्यन्तर, ५ ज्योतिषी और १ वैमानिक–ये कुल २४ हुए ।

(२५) पच्चीसवे बोले—पाच महाव्रत की पच्चीस भावना।

पहले महाव्रत की पाच भावना—१ इर्यासमिति भावना, २ मन समिति भावना, ३ वचनसमिति भावना, ४ ऐपणासमिति भावना और ५ आदानभण्ड मान निक्षेपना समिति भावना।

दूसरे महाव्रत की पाच भावना—१ बिना विचार किये बोलना नही, २ क्रोध से बोलना नही, ३ लाभ से बोलना नही, ४ भय से बोलना नही और ५ हास्य से बोलना नहीं।

तीसरे महाव्रत की पाच भावना—१ निर्दोप स्थानक याच कर लेना, २ तृण आदि याच कर लेना, ३ स्थानक आदि की क्षेत्र सीमा निधारण पूवक आज्ञा लेना, ४ रत्नाधिक की आज्ञा से तथा आहार का सविभाग करके आहार करना और ५ उपाश्रय मे रहे हुए सभोगी साधुओ से आज्ञा लेकर रहना तथा भोज नादि करना।

चौथ महाव्रत की पाच भावना—१ स्त्री, पशु, नपुसक सहित स्थानक मे ठहरना नही, २ स्त्री सम्ब धी कथा वार्ता करना नही, ३ स्त्री के अगोपाग, राग दृष्टि से देखना नही, ४ पहले के काम भोग याद करना नही और ५ सरस तथा बल वद्धक आहार करना नही।

पाचवे महाव्रत की पाच भावना—१ अच्छे शब्द पर राग और बुरे शब्द पर द्वेष करना नही, वसे ही २ रूप पर, ३ गध पर ४ रस पर और ५ स्पश पर रागद्वेप नही करना।

(२६) छब्बीसवे बोले—छब्बीस अध्ययन। दशाश्रुत-

स्कंध के १०, वृहत्कल्प के ६, और व्यवहार सूत्र के १० (इनमे साधु का विधिवाद है) ।

(२७) सत्तावीसवे बोले—साधु के सत्तावीस गुण—पाच महाव्रतो का पालन पाच इद्रिया का निग्रह करना, चार कषाय का विजय करना (५+५+४=१४) १५ भाव सत्य, १६ करण सत्य, १७ जोग सत्य, १८ क्षमा, १९ वैराग्य, २० मन-समाधारणता, २१ वचन समाधारणता, २२ काय-समाधारणता, २३ ज्ञान २४ दर्शन, २५ चारित्र, २६ वेदना सहिष्णुता और २७ मरणस हिष्णुता ।

(२८) अट्ठाईशवे बोले—आचार कल्प अट्ठाईश प्रकार का—१ एक मास का प्रायश्चित्त, २ एक मास और पाच दिन का, ३ एक मास और दस दिन का । इसी प्रकार पाच पाच दिन बढाते हुए पाच महीने तक कहना । इस प्रकार पच्चीस उपघातिक है, २६ अनुघातिक आरोपण, २७ कृत्स्न—सम्पूर्ण और २८ अकृत्स्न—अपूर्ण ।

(२९) उनतीसवे बोले—पाप सूत्र २९—१ भूमिकम्प शास्त्र, २ उत्पात शास्त्र, ३ स्वप्न शास्त्र, ४ अतरीक्ष—आकाश शास्त्र, ५ अगस्फुरण शास्त्र, ६ स्वर शास्त्र, ७ व्यजन—शरीर पर के तिल मसादि चिह्न शास्त्र, ८ लक्षण शास्त्र। ये आठ सूत्र रूप, आठ वृत्तिरूप और आठ वार्तिकरूप, कुल चौवीस हुए, २५ विकथा अनयोग, २६ विद्या अनयोग, २७ मत्र अनुयोग, २८ योग अनुयोग और २९ अन्य तीर्थिक प्रवृत्त अनुयोग ।

(३०) तीसवे बोले—महामोहनीय कर्म-बध के तीस

स्थान इस प्रकार हैं,—

१ त्रस जीव का जल मे डुबा कर मारे।
२ त्रस जीव को श्वास रुध कर मारे।
३ त्रस जीवो को बाडे आदि मे बद कर के मारे।
४ तलवारादि शस्त्र से मस्तकादि अगोपाग काटे।
५ मस्तक पर गीला चमडा बाँध कर मारे।
६ ठगाई, धोखाबाजी, धूतता तथा विश्वास घात करे।
७ कपट करके अपना दुराचार छिपावे सूत्राथ छिपावे।
८ आप कुकम करे और दूसरे निरपराधी मनुष्य पर आरोप लगावे तथा दूसरे की यश कीर्ति घटाने के लिए झूठा कलक लगावे।
९ सत्य को दबाने के लिए मिश्र वचन बोले, सत्य का अपलाप करे तथा क्लेश बढावे तो।
१० राजा का मन्त्री होकर राजा की लक्ष्मी हरण करना चाहे, राजा की रानी से कुशील सेवन करना चाहे, राजा के प्रेमीजनो के मन को पलटना चाहे तथा राजा को राज्याधिकार से हटाना चाहे।
११ विषय लम्पट बनकर-शादी किया हुआ होकर भी अपने को कुँवारा बतावे।
१२ ब्रह्मचारी नही होते हुवे भी अपने को ब्रह्मचारी बतावै।
१३ जो नौकर, स्वामी की लक्ष्मी लूटे तथा लुटावे।
१४ जिस पुरुष ने अपने को धनवान इज्जतवान अधिकारी बनाया, उस उपकारी की ईर्षा करे, बुराई करे, हलका

बनाने की चेष्टा करे उपकार का बदला अपकार से देवे ।

१५ भरणपोषण करने वाले राजादि को तथा ज्ञानदाता गुरु को हणे तो ।

१६ राजा, नगर सेठ तथा मुखिया और बहुल यशवाले, इन तीनो का हनन करे ।

१७ बहुत से मनुष्यो का आधारभूत जो मनुष्य है, उसे हने तो ।

१८ जो सयम लेने को तैयार हुआ है, उसकी सयम रुचि हटावे तथा सयम लिये हुए को धम से भ्रष्ट करे ।

१९ तीथङ्कर के अवणवाद बोले ।

२० तीथकर प्ररूपित न्याय माग का द्वेषी बनकर उस मार्ग की निन्दा करे तथा उस मार्ग से लोगो का मन दूर हटावे।

२१ आचाय, उपाध्याय, सूत्र विनय के सिखाने वाले पुरुषो की निन्दा करे, उपहास करें तो ।

२२ आचाय, उपाध्याय के मन को आराधे नही, तथा अहकार भाव से भक्ति नही करे ।

२३ अल्प शास्त्रज्ञान वाला होते हुए भी खुद को बहुश्रुत बतावे, अपनी झूठी की प्रशसा करे तो ।

२४ तपस्वी नही होते हुए भी, तपस्वी कहलावे तो ।

२५ शक्ति होते हुए भी गुर्वादि तथा स्थविर ग्लान मुनि का विनय वैयावच्च करे नही और कहे कि इन्होने मेरी वैयावच्च नही की थी—ऐसा अनुकम्पा रहित होवे तो ।

२६ चार तीथ मे भेद पडे ऐसी कथा–क्लेशकारी वार्ता करे तो।

२७ अपनी प्रशसा के लिये तथा दूसरे को प्रसन्न करने के लिए वशीकरणादि प्रयोग करे तो।

२८ मनुष्य तथा देव सम्बधी भोगो की तीव्र अभिलाषा करे तो।

२९ महाऋद्धिवान–महायश के धनी देव हैं, उनके बल वीय की निन्दा करे, निषेध तो।

३० अज्ञानी जीव, लोगो से पूजा प्रशसा प्राप्त करने के लिए देव को नही देखने पर भी कहे कि "मैं देव को देखता हूँ"।

(३१) **इकत्तीसवे बोले**–सिद्ध भगवान के इकत्तीस गुण। आठ कम की इकत्तीस प्रकृति नष्ट होने से ये गुण प्रगट होते हैं। वे इकत्तीस प्रकृतियें ये हैं–

५ ज्ञानावरणीय कर्म की पाच–१ मतिज्ञानावरणीय, २ श्रुत ज्ञानावरणीय, ३ अवधिज्ञानावरणीय, ४ मन पययज्ञानावरणीय और ५ केवलज्ञानावरणीय।

९ दशनावरणीय कम की नौ–१ निद्रा, २ प्रचला ३ निद्रा-निद्रा ४ प्रचलाप्रचला, ५ स्त्यानगद्धि, ६ चक्षुदशनावरणीय, ७ अचक्षुदशनावरणीय ८ अवधिदशनावरणीय और ९ केवल दशनावरणीय।

२ वेदनीय कम की दो प्रकृति–१ सातावेदनीय और २ असातावेदनीय।

२ मोहनीय कम की दो प्रकृति–१ दशनमोहनीय और २ चारित्रमोहनीय ।

४ आयु कम की चार प्रकृति–१ नरक आयुष्, २ तियग् आयुष, ३ मनुष्य आयुष् और ४ देव आयुष् ।

२ नाम कम की दा प्रकृति–१ शुभ नाम और २ अशुभ नाम ।

२ गोत्र कम की दो प्रकृति–१ उच्च गोत्र और २ नीच गोत्र ।

५ अन्तराय कम की पाच प्रकृति–१ दानान्तराय, २ लाभान्तराय, ३ भोगान्तराय, ४ उपभोगान्तराय और ५ वीर्यान्तराय ।

(३२) **बत्तीसवे बोले**–याग सग्रह बत्तीस प्रकार का–

१ गुरु के समक्ष शुद्ध भावो से सच्ची आलोचना करना ।

२ शिष्य या अन्य कोई अपने सामने आलोचना करे, तो वह किसी को नही कह कर अपने मे ही सीमित रखना ।

३ आपत्ति आने पर भी अपने धम मे दढ रहना ।

४ किसी भी प्रकार की भौतिक इच्छा के विना अथवा किसी दूसरे की सहायता की अपेक्षा के बिना तप करना ।

५ सूत्र और अथ ग्रहणरूप तथा प्रतिलेखनादि रूप आसेवना शिक्षा ग्रहण करना ।

६ शरीर की शोभा नही बढाना ।

७ यश और सत्कार की इच्छा नहीं रखकर इस प्रकार तप करना कि बाहर किसी को मालूम नही हो सके ।

८ वस्त्र, पात्र अथवा स्वादिष्ट आहार आदि किसी भी वस्तु का लोभ नही करना ।

९ सयम साधना करते हुए जो परीषह और उपसर्ग आवे

उन्हे शाति पूवक सहन करना ।

१० हृदय मे ऋजुता–सरलता धारण करना ।

११ सत्य और शुद्धाचार से पवित्र रहना ।

१२ दष्टि की विशेष शुद्धता–सम्यक्त्व की शुद्धि ।

१३ समाधिवन्त–शात और प्रसन्न रहना ।

१४ चारित्रवान होना, निष्कपट होकर चारित्र पालना ।

१५ मान को त्याग कर विनयशील बनना ।

१६ अधीरता और चचलता छोडकर धीरज धारण करना ।

१७ ससार से अरुचि और मोक्ष के प्रति अनुराग होना ।

१८ माया का त्याग करके नि शल्य होना, भावो को उज्ज्वल रखना ।

१९ उत्तम आचार का सतत पालन करते ही रहना ।

२० आश्रव के मार्गों को बन्द करके सवरवन्त होना ।

२१ अपने दोषो को हटाकर उनके माग ही बन्द कर देना,

२२ पाचो इन्द्रियों के अनुकूल विषयो से सदा विरक्त ही रहना ।

२३ हिंसादि त्याग के प्रत्याख्यान करना और उसमे दृढ रहना ।

२४ तपादि के प्रत्यारयान करके शुद्धता पूवक पालन करना ।

२५ शरीरादि द्रव्य और कषायादि भाव व्युत्सर्ग करना ।

२६ प्रमाद को छोडना, उसे पास नही आने देना ।

२७ काल के प्रत्येक क्षण को सार्थक करना, जिस समय जो अनुष्ठान करने का हो, वही करना । समय को

व्यर्थ नही खोना ।

२८ मन, वचन और काया के योगो का सवरण करके ध्यान करना ।

२६ मृत्यु का समय अथवा मारणान्तिक कष्ट आ जाने पर भी दढता पूर्वक साधना करना ।

३० इन्द्रियो अथवा विषयो का सयोग, अथवा बाह्य सयोग को ज्ञान से हेय जानकर त्यागना ।

३१ लगे हुए दोषो का प्रायश्चित्त करके शुद्ध होना ।

३२ अन्तिम समय मे सलेखणा करके पण्डित-मरण की आराधना करना ।

(३३) तेतीसवे बोले—आशातना तेतीस प्रकार की—

१ गुरु या बडो के सामने शिष्य अविनय से चले तो ।

२ गुरु आदि के बराबर चले ।

३ गुर्वादि के पीछे भी अविनय से चले ।

४ से ६—गुर्वादि के आगे, पीछे या बराबर अविनय से खडा रहे ।

७ से ६—गुर्वादि के आगे पीछे या बराबर अविनय से बैठे ।

१० बडा के साथ शिष्य स्थण्डिल जावे और उनसे पहले शौचकर्म करके आगे चला आवे ।

११ गुरु के साथ शिष्य बाहर गया हो और पीछा लौटने पर इर्यापथिकी पहले प्रतिक्रमे ।

१२ कोई पुरुष उपाश्रय मे आवे तब उनसे गुरु से पहले ही शिष्य बोले ।

१३ रात्रि के समय जब गुरु कहे–'अहो आय ! कौन नीद मे है और कौन जाग रहा है ?' तब आप जागता हो, तो भी नही बोले ।

१४ आहारादि लाकर उसकी आलोचना पहले अन्य मुनि के सामने करे और बाद मे गुरु के समक्ष करे तो ।

१५ आहारादि पहले अन्य मुनि को बतावे और बाद मे गुरु को बतावे ।

१६ आहारादि के लिए पहले अन्य मुनि को आमत्रण दे और बाद मे गुरु को ।

१७ गुरुजनो को पूछे बिना ही अन्य मुनियो को आहारादि देवे ।

१८ बडो के साथ भोजन करते समय, सरस मनोज्ञ आहार, स्वय अधिक तथा शीघ्र करे ।

१९ गुर्वादि के पुकारने पर भी मौन रहे ।

२० गुर्वादि के बुलाने पर अपने आसन पर बैठे ही कहे–"मैं यहा हूँ,' परन्तु आसन छोडकर उनके पास जावे नही ।

२१ गुरु के बुलाने पर जोर से तथा अविनय से कहे कि 'क्या कहते हो ?'

२२ गुर्वादि कहे–'हे शिष्य ! यह काम (वैयावच्चादि) तेरे लाभकारी है इसे कर,' तब कहे कि–'यदि लाभकारी है, तो आप ही क्यों नही करलेते' ।

२३ शिष्य, बडो के साथ कठोर–ककश भाषा बोले ।

२४ शिष्य, गुरुजन के साथ वैसे ही शब्द बोले, जैसे गुरुजन शिष्य के साथ बोलते हैं।

२५ गुरुजन धर्मोपदेश देते हो तब सभा मे ही कहे कि आप जो कहते हो वैसा उल्लेख कहा है ?'

२६ गुरुजन के व्याख्यान मे कहे कि 'आपतो भूलते हो, यह कहना सत्य नही है'।

२७ गुरुजन के व्याख्यान को ध्यान से नही सुनकर उपेक्षा करे।

२८ गुरुजन व्याख्यान देते हो, तब सभा मे भेद डालने के लिए कहे–"महाराज ! गोचरी का या अमुक काम का समय हो गया है"।

२९ गुरुजन व्याख्यान देते हो, तब श्रोताजन के मन को व्याख्यान से हटाने की चेष्टा करे।

३० गुरुजन का व्याख्यान पूरा नही हुआ हो उसके पूर्व ही आप व्याख्यान शुरू कर दे।

३१ गुर्वादि की शय्या आसन को पाव से ठुकरावे।

३२ वडो की शय्या पर आप खडा रहे बैठे, सोए।

३३ गुरु के शयन आसन से अपना शयन आसन ऊँचा करे या बराबर (समान) करे और उस पर सोए बैठे तो आशातना लगे।

१०२ बोल का बासठिया

श्री पन्नवणा सूत्र के तीसरे पद मे १०२ बोल का वणन है वह बासठिया युक्त इस प्रकार है,—

द्वार—१ जीव, २ गति, ३ इन्द्रिय, ४ काय, ५ योग, ६ वेद, ७ कषाय, ८ लेश्या, ९ दृष्टि, १० सम्यक्त्व, ११ ज्ञान, १२ दर्शन, १३ सयम, १४ उपयोग, १५ आहार, १६ भाषक, १७ परित्त, १८ पर्याप्त, १९ सूक्ष्म, २० सज्ञी, २१ भव्य और २२ चरम।

जीव

मागणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
१ समुच्चय जीव में	१४	१४	१५	१२	६
२ नरक मे	३	४	११	९	३
३ तिर्यंच मे	१४	५	१३	९	६
४ मनुष्य में	३	१४	१५	१२	६
५ देव में	३	४	११	९	६

अल्प-बहुत्व—सब से थोडे मनुष्य, उनसे नारकी असख्यात गुण, उनसे देव असख्यात गुण, उनसे तिर्यंच अनन्त गुण और उनसे समुच्चय जीव विशेषाधिक।

गति द्वार

मागणा	जी	गु	यो	उ	ले
१ नरक गति मे	३	४	११	६	३
२ तिर्यंच गति मे	१४	५	१३	६	६
३ तिर्यंचिनी मे	२	५	१३	६	६
४ मनुष्य गति मे	३	१४	१५	१२	६
५ मनुष्यिनी मे	२	१४	१३	१२	६
६ देव गति मे	३	४	११	६	६
७ देवी मे	२	४	११	६	४
८ सिद्ध गति मे	०	०	०	२	०

अल्प-बहुत्व—सबसे थोडी मनुष्यिनी, उनसे मनुष्य असख्यात गुण, उनमे नारकी असख्यात गुण, उनसे तिर्यंचिनी असख्यात गुण, उनसे देव असख्यात गुण, उनसे देवी सख्यात गुण, उनसे सिद्ध अनन्त गुण और उनसे तिर्यंच अनन्त गुण है।

इन्द्रिय द्वार

मागणा	जी	गु	यो	उ	ले
१ सइन्द्रिय मे	१४	१२	१५	१०	६
२ एकेंद्रिय मे	४	१	५	३	४

	जी	गु	यो	उ	ले
३ बेइन्द्रिय मे	२	२	४	५	३
४ तेइन्द्रिय मे	२	२	४	५	३
५ चौरिन्द्रिय मे	२	२	४	६	३
६ पचेन्द्रिय मे	४	१२	१५	१०	६
७ अनिन्द्रिय मे	१	२	७	२	१

अल्प बहुत्व–सबसे थोडे पचेद्रिय, उनसे चौरेद्रिय विशेषाधिक, उनसे तेइन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे बेइन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे अनिन्द्रिय अनन्त गुण, उनसे एकेद्रिय अनन्त गुण और उनसे सइन्द्रिय विशपाधिक ।

काय द्वार

मागणा	जी	गु	यो	उ	ले
१ सकाय मे	१४	१४	१५	१२	६
२ पृथ्वीकाय मे	४	१	३	३	४
३ अपकाय मे	४	१	३	३	४
४ तेऊकाय मे	४	१	३	३	३
५ वायुकाय मे	४	१	५	३	३
६ वनस्पतिकाय मे	४	१	३	३	४
७ त्रसकाय मे	१०	१४	१५	१२	६
८ अकाय मे	०	०	०	२	०

अल्प-बहुत्व–सबसे थोडे त्रसकाय, उनसे तेऊकाय असख्यात गुण, उनसे पृथ्वीकाय विशेपाधिक, उनसे अपकाय विशेपा

धिक, उनसे वायुकाय विशेषाधिक, उनसे अकाय अनन्त गुण, उनसे वनस्पतिकाय अनन्त गुण, उनसे सकाय विशेषाधिक है।

योग द्वार

मागणा	जी	गु	याग	उ	ले
१ सयोगी मे	१४	१३	१५	१२	६
२ मन योगी मे	१	१३	१४	१२	६
३ वचन योगी मे	५	१३	१४	१२	६
५ काययोगी मे	१४	१३	१५	१२	६
४ अयोगी मे	१	१	०	२	०

अल्प-बहुत्व—सबसे थोडे मन-योगी, उनसे वचन-योगी असख्यात गुण, उनसे अयागी अनन्त गुण, उनसे काय-योगी अनन्त गुण और उनसे सयोगी विशेषाधिक है।

वेद द्वार

मागणा	जी	गु	यो	उ	ले
१ सवेदी मे	१४	९	१५	१०	६
२ पुरुषवेद मे	२	९	१५	१०	६
३ स्त्रीवेद मे	२	९	१३	१०	६
४ नपुमक वेद मे	१४	९	१५	१०	६
५ अवेदी मे	१	६	११	९	१

अल्प-बहुत्व—सबसे थोडे पुरुषवेदी, उनसे स्त्रीवेदी, सख्यात गुण, उनसे अवेदी अनन्त गुण, उनसे नपुसकवेदी अनन्त

उनसे क्षयोपशम समकिति असन्य गुण, उनसे वेदक समकिति विशेषाधिक, उनसे क्षायिक समकिती अनन्त गुण और उनसे समुच्चय समकिती विशेषाधिक।

ज्ञान द्वार

मार्गणा	जी	गु	यो	उ	ले
१ सनानी में	६	१२	१५	६	६
२ मति श्रुत नानी मे	६	१०	१५	७	६
३ अवधि ज्ञानी मे	२	१०	१५	७	६
४ मन पर्याय नानी मे	१	७	१४	७	६
५ केवल ज्ञानी मे	१	२	७	२	१
६ मतिश्रुत अनानी मे	१४	०	१३	६	६
७ विभग ज्ञानी मे	२	२	१३	६	६

अल्प-बहुत्व—सब से थोडे मन पर्याय नानी, उनसे अवधि ज्ञानी असंख्यात गुण, उनसे मतिश्रुत ज्ञानी विशेषाधिक, उनसे विभग ज्ञानी असंख्यात गुण, उनसे केवली ज्ञानी अनन्त गुण, उनसे सनानी विशेषाधिक, उनसे मतिश्रुत अनानी अनन्त गुण और उनसे समुच्चय अनानी विशेषाधिक।

दर्शन द्वार

मार्गणा	जी	गु	यो	उ	ले
१ चक्षुदर्शन में	६	१२	१४	१०	६
२ अचक्षुदर्शन मे	१४	१२	१५	१०	६
३ अवधिदर्शन मे	२	१२	१५	१०	६
४ केवलदर्शन में	१	२	७	२	१

अल्प-बहुत्व—सब से थोडे अवधिदर्शनी, उनसे चक्षुदर्शनी असख्यात गुण, उनसे केवलदर्शनी अनन्त गुण और उनसे अचक्षु-दर्शनी अनन्त गुण हैं।

सयम द्वार

मार्गणा	जी	गु	यो	उ	ले
१ समुच्चय सयती मे	१	६	१५	६	६
२ सामायिक सयत मे	१	४	१४	७	६
३ छेदोपस्थापनीय सयत मे	१	४	१४	७	६
४ परिहार विशुद्ध सयत मे	१	२	६	७	३
५ सूक्ष्म सपराय सयत मे	१	१	६	७	१
६ यथाख्यात सयत मे	१	४	११	६	१
७ सयतासयत मे	१	१	१२	६	६
८ असयत मे	१४	४	१३	६	६
९ नो सयत नो असयत नो सयतासयत मे	०	०	०	२	०

अल्प-बहुत्व—सब से थोडे सूक्ष्म सपराय सयत, उनसे परिहार विशुद्ध सयत सख्यात गुण, उनसे यथाख्यात सयत सख्यात गुण उनसे छेदोपस्थापनीय सख्यात गुण, उनसे सामायिक सयत सख्यात गुण, उनसे समुच्चय सयत विशेषाधिक, उनसे सयतासयत असख्य गुण, उनसे नो सयत नो असयत नो सयतासयत अनन्त गुण और उनसे असयत अनन्त गुण हैं।

उपयोग द्वार

मागणा	जी	गु	यो	उ	ले
१ साकार उपयोग मे	१४	१४	१५	१२	६
२ अनाकार उपयोग मे	१४	१३	१५	१२	६

अल्प-बहुत्व—सब से थोडे अनाकार उपयोगी और उनसे साकार उपयोगी सख्यात गुण ।

आहारक द्वार

मागणा	जी	गु	यो	उ	ले
१ आहारक में	१४	१३	१४	१२	६
२ अनाहारक मे	८	५	१	१०	६

अल्प-बहुत्व—सब से थोडे अनाहारक, उनसे आहारक असख्यात गुण हैं ।

भापक द्वार

मागणा	जी	गु	यो	उ	ले
१ भापक मे	५	१३	१४	१२	६
२ अभापक मे	१०	५	५	११	६

अल्प-बहुत्व—सब से थाडे भापक, उनसे अभापक अनन्त गुण हैं ।

परित्त द्वार

मागणा	जी	गु	यो	उ	ले
१ परित्त मे	१४	१४	१५	१२	६

	जी	गु	यो	उ	ले
२ अपरित्त मे	१४	१	१३	६	६
३ नो परित्त नो अपरित्त मे	०	०	०	२	०

अल्प-बहुत्व—सब से थोडे परित्त उनसे नो-परित्त नो-अपरित्त अनन्त गुण और उनसे अपरित्त अनन्त गुण है।

पर्याप्त द्वार

मागणा	जी	गु	यो	उ	ले
१ पर्याप्त मे	७	१४	१५	१२	६
२ अपर्याप्त मे	७	३	५	९	६
३ नो पर्याप्त नो अपर्याप्त मे	०	०	०	२	०

अल्प बहुत्व—सब से थोडे नो पर्याप्त नो अपर्याप्त, उनसे अपर्याप्त अनन्त गुण और उनसे पर्याप्त सख्यात गुण हैं।

सूक्ष्म द्वार

मागणा	जी	गु	यो	उ	ले
१ सूक्ष्म मे	२	१	३	३	३
२ बादर मे	१२	१४	१५	१२	६
३ नो सूक्ष्म नो-बादर में	०	०	०	२	०

अल्प-बहुत्व—सब से थोडे नो-सूक्ष्म नो बादर, उनसे बादर अनन्त गुण और उनसे सूक्ष्म असख्यात गुण हैं।

सज्ञी द्वार

मागणा	जी	गु	यो	उ	ले
१ सज्ञी मे	२	१२	१५	१०	६

	जी	ग	यो	उ	ले
२ असज्ञी मे	१२	२	६	६	४
३ नो सज्ञी नो असज्ञी में	१	२	७	२	१

अल्प बहुत्व—सब से थोडे सज्ञी, उनसे नो-सज्ञी, नो-असज्ञी अनन्त गुण और उनसे असज्ञी अनन्त गुण हैं।

भव्य द्वार

मागणा	जी	गु	यो	उ	ले
१ भव्य मे	१४	१४	१५	१२	६
२ अभव्य मे	१४	१	१३	६	६
३ नो भव्य नो अभव्य मे	०	०	०	२	०

अल्प बहुत्व—सब से थोडे अभव्य, उनसे नो भव्य नो अभव्य अनन्त गुण और उनसे भव्य अनन्त गुण हैं।

चरम द्वार

मागणा	जी	गु	यो	उ	ले
१ चरम मे	१४	१४	१५	१२	६
२ अचरम मे	१४	१	१३	८	६

अल्प बहुत्व—सब से थोडे अचरम, उनसे चरम अनन्त गुण है।

गुणस्थान स्वरूप

सयत ८ निवृत्ति बादर+ ९ अनिवृत्ति बादर* १० सूक्ष्म सम्पराय ११ उपशान्त मोहनीय १२ क्षीण मोहनीय १३ सयोग केवली और १४ अयोगी केवली ।

२ लक्षण द्वार

१ मिथ्यात्व गुणस्थान का लक्षण–जिनेश्वर भगवान् की वाणी न्यूनाधिक या विपरीत श्रद्धे या प्ररूपे, जिन मार्ग पर दुष्ट परिणाम रखे, हिंसा मे धर्म माने या प्ररूपे, कुगुरु कुदेव और कुशास्त्र पर आस्था रखे । जीव के ऐसे भाव को पहला–'मिथ्यात्व गुणस्थान' कहते हैं ।

पहले गुणस्थान का फल–कर्म रूपी डडे से आत्मा रूपी गेंद चार गति चौवीस दण्डक और चौरासी लाख जीव योनियो मे बारम्बार परिभ्रमण कर दुःख भोगती रहती है ।

२ दूसरे गुणस्थान का लक्षण–सम्यक्त्व का आस्वाद मात्र रहना । जसे–किसी ने खीर का भोजन किया और बाद में वमन कर दिया, तो उसे कुछ गुड चटा स्वाद रहता है । इसी प्रकार प्राप्त सम्यक्त्व छोडकर मिथ्यात्व मे प्रवेश करने की दशा मे जो अवस्था होती है उसे 'सास्वादन' गुणस्थान कहते हैं । अथवा जसे–घटा से गभीर शब्द निकल चुकने के बाद उसका रणकार (प्रतिध्वनि) रह जाती है उसके समान, अथवा आत्मा

+ निवत्ति बादर–चारित्र का अपूर्वकरण अर्थात् जो बादर दर्शन मोह से निवृत्त होगए ।

* अनिवृत्ति बादर–जो बादर चारित्र-मोह से निवृत्त नहीं हुए ।

रूपी आम्र-वृक्ष की परिणाम रूपी डाली से मोह● रूपी वायु चलने से, समकित रूपी फल टूट गया, परन्तु पथ्वी पर नही पहुँचा। वह बीच ही मे है, तब तक के परिणामो को 'सास्वादन गुणस्थान' कहते है।

दूसरे गुणस्थान का फल—जसे किसी को एक करोड रुपया ऋण देना था, उसने उसमे से निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार नौ सौ साढे निन्यानवे (९९,९९,९,९९॥) तो चुका दिये, केवल आठ आना देना शेष रहे। उलटे का सुलटा हुआ, कृष्ण पक्षी से शुक्ल पक्षी हुआ, इसी भाति दूसरे गणस्थान वाले जीव का उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पुद्गल परावतन ससार भोगना शष रहा।

३ तीसरे गुणस्थान का लक्षण--सम्यक्त्व और मिथ्यात्व से मिश्रित, श्रीखड के समान मीठे और खट्टे स्वाद जसा। दष्टात—वसन्तपुर नामक नगर के बाहर कोई महा गुणधारी मुनिराज पधारे। कोई श्रावक वन्दना करने गया। रास्ते मे, दुकान पर सम्यग मिथ्यादष्टि वाले सेठजी बठे थ। उन्होने पूछा—'भाई! आप कहा जाते है?' उसने उत्तर दिया—'भाई! महान मुनिराज पधारे है, सो मैं वन्दना करने जाता हूँ।' सेठजी बोले—"मैं भी चलता हूँ।" इतने मे उनका मिथ्यात्वी गुमाश्ता बोला—"अजी, आप कहा जाते हैं? परदेश से जो चिट्ठिया आयी हैं उनका उत्तर देना है।" ऐसा सुनकर सेठजी काम मे लग गये। वह श्रावक जब मुनिदशन करके वापिस लौटा, तो मिश्र गुणस्थान वाले सेठ बोले—'भाई! तुम तो वन्दना कर आये, मैं तो अब

● अनन्तानुबधी क्रोध मान माया और लोभ में से किसी के उदय से।

	जी	गु	यो	उ	ले
२ असज्ञी मे	१२	२	६	६	४
३ नो सज्ञी नो असज्ञी में	१	२	७	२	१

अल्प बहुत्व—सब से थोडे सज्ञी, उनसे नो-सज्ञी, नो-असज्ञी अनन्त गुण और उनसे असज्ञी अनन्त गुण हैं।

भव्य द्वार

मागणा	जी	गु	यो	उ	ले
१ भव्य मे	१४	१४	१५	१२	६
२ अभव्य मे	१४	१	१३	६	६
३ नो भव्य नो अभव्य मे	०	०	०	२	०

अल्प बहुत्व—सब से थोडे अभव्य, उनसे नो भव्य नो अभव्य अनन्त गुण और उनसे भव्य अनन्त गुण हैं।

चरम द्वार

मागणा	जी	गु	यो	उ	ले
१ चरम मे	१४	१४	१५	१२	६
२ अचरम मे	१४	१	१३	८	६

अल्प बहुत्व—सब से थोडे अचरम, उनसे चरम अनन्त गुण है।

गुणस्थान स्वरूप

गुणस्थानो + पर अट्ठाईस द्वार है। वे इस प्रकार हैं–१ नाम २ लक्षण ३ स्थिति ४ क्रिया ५ सत्ता ६ बंध ७ उदय ८ उदीरणा ९ निजरा १० भाव ११ कारण १२ परीषह १३ आत्मा १४ जीव के भेद १५ गुणस्थान १६ योग १७ उपयोग १८ लेश्या १९ हेतु २० मागणा २१ ध्यान २२ दण्डक २३ जीवयोनि २४ निमित्त २५ चारित्र २६ समकित २७ अन्तर और २८ अल्पबहुत्व।

१ नाम द्वार

गुणस्थाना के नाम–१ मिथ्यात्व २ सास्वादन ३ मिश्र ४ अविरत सम्यग्दष्टि ५ देशविरत ६ प्रमत्त सयत ७ अप्रमत्त-

+ आत्मा के ज्ञान दशन चारित्र आदि गुणों की शुद्धि अशुद्धि और प्रकष अपकष अवस्था को 'गुणस्थान' कहते ह।

सयत ८ निवृत्ति वादर+ ९ अनिवृत्ति वादर* १० सूक्ष्म सम्पराय ११ उपशान्त मोहनीय १२ क्षोण मोहनीय १३ सयाग केवली और १४ अयोगी केवली ।

२ लक्षण द्वार

१ मिथ्यात्व गुणस्थान का लक्षण–जिनश्वर भगवान् की वाणी न्यूनाधिक या विपरीत श्रद्धे या प्ररूपे, जिन माग पर दुष्ट परिणाम रखे, हिंसा मे धम माने या प्ररूप, कुगुरु कुदव और कुशास्त्र पर आस्था रख । जीव के ऐसे भाव को पहला–'मिथ्यात्व गुणस्थान' कहते हैं ।

पहले गुणस्थान का फल–कम रूपो डडे से आत्मा रूपी गेंद,चार गति चोवीस दण्डक और चौरासी लाख जीव योनिया मे बारम्बार परिभ्रमण कर दु ख भोगती रहती है ।

२ दूसर गुणस्थान का लक्षण–सम्यक्त्व का आस्वाद मात्र रहना । जसे– किसी ने खीर का भोजन किया और बाद मे वमन कर दिया, तो उसे कुछ गुड चटा स्वाद रहता है । इसी प्रकार प्राप्त सम्यक्त्व छोडकर मिथ्यात्व मे प्रवेश करने की दशा मे जो अवस्था होती है, उसे 'सास्वादन' गुणस्थान कहते हैं । अथवा जैसे–घटा से गभीर शब्द निकल चुकने के बाद उसका रणकार (प्रतिध्वनि) रह जाती है उसके समान, अथवा आत्मा

+ निवत्ति बादर–चारित्र का अपूवकरण अर्थात् जो बादर दशन मोह से निवत्त होगए ।

* अनिवत्ति बादर–जो बादर चारित्र-माह से निवत्त नहीं हुए ।

रूपी आम्र-वृक्ष की परिणाम रूपी डाली से मोह● रूपी वायु चलने से, समकित रूपी फल टूट गया, परन्तु पृथ्वी पर नही पहुँचा। वह बीच ही मे है, तब तक के परिणामो को 'सास्वादन गुणस्थान' कहते हैं।

दूसरे गुणस्थान का फल—जैसे किसी को एक करोड रुपया ऋण देना था, उसने उसमे से निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार नौ सौ साढे निन्यानवे (९९,९९ ९,९९॥) तो चुका दिये, केवल आठ आना देना शेष रहे। उलटे का सुलटा हुआ, कृष्ण पक्षी से शुक्ल पक्षी हुआ, इसी भाति दूसरे गुणस्थान वाले जीव का उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्तन ससार भोगना शेष रहा।

३ तीसरे गुणस्थान का लक्षण—सम्यक्त्व और मिथ्यात्व से मिश्रित, श्रीखड के समान मीठे और खट्टे स्वाद जैसा। दृष्टात—वसन्तपुर नामक नगर के बाहर कोई महा गुणधारी मुनिराज पधारे। कोई श्रावक वन्दना करने गया। रास्ते मे, दुकान पर सम्यग मिथ्यादृष्टि वाले सेठजी बैठे थ। उन्होने पूछा—'भाई! आप कहा जाते हैं?' उसने उत्तर दिया—'भाई! महान मुनिराज पधारे हैं, सो मैं वन्दना करने जाता हूँ।' सेठजी बोले—"मैं भी चलता हूँ।" इतने मे उनका मिथ्यात्वी गमाश्ता बोला—"अजी, आप कहा जाते हैं? परदेश से जो चिट्ठिया आयी हैं उनका उत्तर देना है।" ऐसा सुनकर सेठजी काम मे लग गये। वह श्रावक जब मुनिदर्शन करके वापिस लौटा, तो मिश्र गुणस्थान वाले सेठ बोले—' भाई! तुम तो वन्दना कर आये, मैं तो अब

● अनन्तानुबधी क्रोध मान माया और लोभ में से किसी के उदय से।

जाता हूँ।" ऐसा कहकर वह वन्दना करने गया। जब वह वहाँ पहुँचा, तो मुनिराज नही मिले। वे विहार कर गये थे। लौटते समय सेठ को वीतराग के मार्ग से विरुद्ध प्ररूपणा और आचरण करने वाले वेशधारी ढोंगी मिले। उसने उन्हें वन्दना की और सोचा–' मेरे लिए तो वे और ये दोनो सरीखे हैं।"*
इस प्रकार जो सर्वज्ञ के मार्ग को भी सच्चा समझे और अन्य मार्गों का भी सच्चा समझे, वह तीसरे मिश्र + गुणस्थान वाला है। वह सभी देव, सभी गुरु, सभी धर्म और सभी शास्त्र मानता है।

तीसरे गुणस्थान वाला भी अनादि काल से उल्टा था, सो सुलटा हुआ, कृष्णपक्षी से शुक्लपक्षी हुआ, उडद के ऊपर का कालापन हटकर मोगर जैसा उजला हुआ। समकित के सम्मुख हुआ, परन्तु आगे पैर बढाने मे समर्थ नही हुआ। अतएव उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्तन ससार मे परिभ्रमण करना शेष रहा। जिस प्रकार किसी मनुष्य को एक करोड रुपया ऋण देना था। उसमे से निन्यानवे लाख, निन्यानवे हजार, नौ सौ, साढे निन्यानवे, झाझेरा (कुछ अधिक) तो दे चुका, परन्तु माठरा (कुछ कम) आठ आना देना रहा। इसी प्रकार थोडा ससार परिभ्रमण करना शेष रहा।

---

* यह दृष्टात अनाभिग्रहित मिथ्यात्वी के विषय में उपयुक्त लगता है–डोशी।

+ मिश्र गुणस्थान मिश्रमोहनीय प्रकृति के उदय से होता है। यह अन्तर्मुहूर्त से अधिक नहीं होता। इसमें न तो नवीन आयु का बन्ध होता है और न मरण होता है। सम्यक्त्व या मिथ्यात्व को प्राप्त होने के बाद ही वह आयु का बन्ध या मरण करता है।

४ चौथे गुणस्थान का लक्षण–सात प्रकृतियो का क्षयोपशम आदि करने पर जीव की जो अवस्था होती है, उसे चौथा 'अविरत सम्यदृष्टि गुणस्थान' कहते हैं। वे सात प्रकृतिया ये हैं– १ अनन्तानुबन्धी क्रोध २ मान ३ माया ४ लोभ ५ समकित-मोहनीय † ६ मिश्र मोहनीय ७ मिथ्यात्वमोहनीय। कुगुरु, कुदेव, कुधर्म कुशास्त्र की आस्था रखना–'मिथ्यात्व मोहनीय' है। सभी देव, सभी गुरु, सभी धम और सभी शास्त्रो को समान समझने का 'मिश्र मोहनीय' कहते हैं। जिस प्रकार कूटे हुए कोद्रव धान्य के छिलको मे मादक शक्ति पूण नही होती, उसी प्रकार जिस कम के द्वारा सम्यक्त्व गुण का पूण घात तो न हो, परन्तु उसमे चल + मल * अगाढ × दोप उत्पन हो, उसे–'सम्यक्त्वमोहनीय' कहते है।

सात प्रकृतियो के नौ भग ● होते हैं–१ चार अनन्तानुबन्धी

---

† क्षयोपशम समकित में सम्यक्त्व मोहनीय का उदय रहता है–डोशी।

+ श्री शान्तिनाथजी शान्ति करने में, पार्श्वनाथजी परिचय दन में समर्थ ह, इस प्रकार अनेक विषयों में चलायमान होन को 'चल दोष' कहते ह।

* छद्मस्थपन की तरग से सम्यक्त्व में मलिनता आजाने को 'मल दोष' कहते ह।

× यह मेरा शिष्य है, यह उनका, इत्यादि भ्रम उत्पन्न करने वाले दोप को 'अगाढ़ दोष' कहते ह। अगाढ़ अर्थात कुछ शिथिल।

● एक एक भग से चौथा गुणस्थान प्राप्त हो जाता है। कोई जीव पहले भग से, कोई दूसरे से और कोई तीसरे आद से चौथे गुणस्थान में आता है।

प्रकृतिया का क्षय हो, तीन का उपशम हो। २ पाँच प्रकृतिया का क्षय हो, दो का उपशम हो। ३ छह प्रकृतियों का क्षय और एक का उपशम हो। इन तीनो भगो को 'क्षयोपशम समकित' कहते हैं। ४ चार प्रकृतिया का क्षय, दो का उपशम और एक को वेदे। ५ पाच प्रकृतियो का क्षय, एक का उपशम और एक का वेदन हो। इन दोनो भगो को 'क्षयोपशम वेदक सम्यक्त्व' कहते हैं। ६ छह प्रकृतियो का क्षय और एक के वेदन को 'क्षायिक वेदक समकित' कहते हैं। ७ छह प्रकृतिया का उपशम हो और एक का वेदे, उसे 'उपशम वेदक समकित' कहते हैं। ८ सात प्रकृतिया का उपशम हो, उसे 'उपशम समकित' कहते हैं। ९ सातो प्रकृतिया का क्षय हो, उसे 'क्षायिक समकित' कहते है।

चौथे गुणस्थान मे आया हुआ जीव, जीवादिक नौ पदार्थों का जानकार होता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का जानकार होवे, नवकारसी आदि वरसी तप को उपादेय जाने, श्रद्धा करे, प्ररूपणा करे परन्तु पालन नही कर सकता, क्योंकि अविरत सम्यग्दृष्टि + है।

फल–यदि सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्व आयु का बन्ध नही हुआ हो, तो इस गुणस्थान मे मान बालो का बन्ध नही हो सकता– १ नारकी २ तिर्यच ३ भवनपति ४ वाणव्यन्तर ५ जोतिषी ६ स्त्रीवेद और ७ नपुसकवेद। यदि पहले बन्ध हो गया हो, तो

+ अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से एक देश सयम भी पालन नहीं कर सकता।

भोगना ही पडता है । जैसे श्रेणिक महाराजा को भोगना पडा ।

५ देशविरति गुणस्थान का लक्षण—पहले कही हुई सात *प्रकृतिया और अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ—ये चार,* इस प्रकार ग्यारह प्रकृतिया का क्षयोपशमादि करने से जो गुण-स्थान होता है वह पाचवा गुणस्थान है। इस गुणस्थान मे आया हुआ जीव, जीवादिक नौ पदार्थो का जानकार होता है । नव-कारसी आदि से लेकर वरसी तप आदि जानता है, श्रद्धान करता है, प्ररूपता है और शक्ति अनुसार प्रत्याख्यान करता है। एक प्रत्याख्यान से लेकर श्रावक के बारह व्रत, ग्यारह पडिमाएँ तक पालन करे यावत सलेखना तक अनशन करे ।

फल—इस गुणस्थान का आराधक जीव, जघन्य तीसरे भव उत्कृष्ट सात आठ अर्थात पन्द्रह भवो मे मोक्ष जावे । सात भव वैमानिक देवो के और आठ मनुष्य के करता है ।

६ *प्रमत्तसयत गुणस्थान का लक्षण—पूर्व कही हुई ग्यारह* प्रकृतिया और ४ प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ, इस प्रकार पन्द्रह प्रकृतियो के क्षयादि से जो गुणस्थान हो, उसे छठा 'प्रमत्त सयत गुणस्थान' कहते हैं । इस गुणस्थान वाला नौ तत्त्व और द्रव्य क्षेत्र काल भाव का जानकार होता है, नव कारसी आदि वरसी तप जाने श्रद्धे प्ररूपे और पालन करे● ।

फल—छठे गुणस्थान का आराधक जीव ज० उसी भव मे और उ० सात आठ भवो मे मोक्ष जाता है ।

● इस गुणस्थान में आते ही 'साधु' सज्ञा होती है । सत्तरह प्रकार का सयम पालना होता है । इसे सर्वविरति गुणस्थान' भी कहते है ।

७ अप्रमत्त सयत का लक्षण–पांच प्रमादो के छोडने से जो गुणस्थान हो वह 'अप्रमत्त‡ गुणस्थान' है। पांच प्रमाद–१ मद २ विषय ३ कषाय ४ निद्रा और ५ विकथा। इस गुणस्थान वाला जीवादिक नौ पदार्थों का तथा द्रव्य क्षेत्र काल भाव का जानकार होवे, नवकारसी आदि तप जाने, श्रद्धा करे, प्ररूपणा करे और फरसे।

फल–इस गुणस्थान का आराधक ज० उसी भव मे, मध्यम तीसरे भव मे और उ० सात आठ भवो मे मोक्ष जाता है।

८ निवृत्तिबादर गु० का लक्षण–अपूर्वकरण–शुक्ल ध्यान आने पर जो गुणस्थान हो, उसे आठवा 'अपूर्वकरण' (जो परिणाम पहले कभी न हुए हो) गुणस्थान कहते हैं। यहा से–१ उपशम श्रेणी २ क्षपकश्रेणी प्रारम्भ होती है। उपशमश्रेणी पडिवाई+ है और क्षपकश्रेणी अप्रतिपाती है। उपशमश्रेणी का लक्षण पहले कही हुई १५ और छ हास्यादिक (१ हास्य २ रति ३ अरति ४ भय ५ शाक ६ दुगुछा) इन इक्कीस प्रकृतियो का उपशम करे तो आठवे गु० से नौवे गुणस्थान तक जाता

‡ सातवे गुणस्थान की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तमुहूर्त की है। इसमें केवल सज्वलन और नो कषाय का मन्द उदय रह जाता है। ध्यान की मुख्यता है।

+ पडिवाई–प्रतिपाति (गिरने वाला)। क्योकि उपशमश्रेणी वाला ग्यारहवे गुणस्थान से उस समय ऊपर नहीं पहुँचकर नीचे गिर जाता या काल कर जाता है। और क्षपकश्रेणी वाला दसवे गुणस्थान से सीधा बारहवे गुणस्थान में पहुँच जाता है ग्यारहवें में नहीं जाता। बारहवे गु० से फिर नीचे नहीं उतरता, निश्चय ही मोक्षलाभ करता है।

है और पूर्वोक्त इक्कीस तथा १ स्त्रीवेद २ पुरुपवेद ३ नपुसक वेद ४ सज्वलन क्राध ५ मान और ६ माया–ये छह मिलाकर सत्ताईस प्रकृतियो का उपशम करे, तो दसवे गुणस्थान मे आता है। पूर्व कही हुई सत्ताईस और एक सज्वलन लोभ–इन अट्ठाईस प्रकृतियो का उपशम करने से जीव को ग्यारहवा गुणस्थान प्राप्त होता है। ग्यारहवे गुणस्थान मे काल करे, तो अनुत्तर विमान मे जाता है। ग्यारहवे गुणस्थान की स्थिति पूरी होने पर उपशम हुए सज्वलन लाभ का उदय होने पर नीचे गिर जाता है। जसे अग्नि के ऊपर राख आजाती है परन्तु राख के हट जाने से ल्पटे उठने लगती है। या जसे कोठरी मे कोठरी उस कोठरी मे भी फिर कोठरी होने से आगे का रास्ता बन्द हो जाता है वहा से उसे वापिस लौटना ही पडता है। इसी प्रकार ग्यारहवे गु० से वापस ही लौटना पडता है। लौटकर दसवे गु० मे आता, नौवे गु० मे आता यावत कोई पहले गुणस्थान मे भी आता है।

क्षपक श्रेणी का लक्षण–जीव इक्कीस प्रकृतियो का क्षय करके नौवे गुणस्थान मे आता है, सत्ताईस प्रकृतियो का क्षय करके दसवे गुणस्थान मे आता है, अट्ठाईस प्रकृति का क्षय करके और ग्यारहवे गुणस्थान को छोडकर, सीधा बारहवे गुणस्थान मे आता है। बारहवे गु० के अन्तिम समय मे शेष ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अतराय–इन तीन कर्मो का क्षय करके जीव तेरहवे गुणस्थान मे आता है। तेरहवे गुणस्थान मे दस बोलो की प्राप्ति × होती है–१ अनन्त दान लब्धि २ अनन्त लाभ लब्धि

× ये दस बाल, चार घन घातिया कर्मों के क्षय होने से ही प्राप्त

३ अनन्त भोग लब्धि ४ अनन्त उपभोग लब्धि ५ अनन्त वीर्य लब्धि ६ केवलज्ञान ७ केवल दर्शन ८ क्षायिक समकित● ९ शुक्लध्यान और १० यथाख्यात चारित्र।

तेरहवे गुणस्थान मे मन वचन और काया के योग का निरोध (रोक) करके चौदहवे गुणस्थान मे आता है। चौदहवे गुणस्थान मे पाँच लघु अक्षर+ के उच्चारण जितना स्थिति में रहकर–१ वेदनीय २ आयुष्य ३ नाम और ४ गोत्र–ये चार अघातिया कर्म का क्षय करके अफुसमाण (स्पर्श न करते हुए) गति से, एक समय की अविग्रह‡ गति से औदारिक तैजस् और कार्मण शरीर को छोडकर सिद्ध गति को प्राप्त होता है। सिद्ध गति मे जन्म नही, मरण नही, जरा नही, रोग नही शोक नही, दुःख नही, दारिद्रय नही, मोह नही, माया नही, कर्म नही, काया नही, चाकर नही, ठाकुर नही, गुरु नही, चेला नही, भूख नही, प्यास नही, ज्योति* मे ज्योति विराजमान है। अनन्त सुखो मे लीन, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त क्षायिक सम्यक्त्व निरा

होते ह। आदि की पाच लब्धियाँ अन्तराय के क्षय से केवलज्ञान ज्ञानावरण के क्षय से, केवलदर्शन, दर्शनावरण के क्षय से और शेष मोहनीय के क्षय स प्राप्त होते ह।

● ८ से १० तक के ३ गुण पहले से ही प्राप्त हो जाते ह।

+ अ, इ उ ऋ ल।

‡ बिना मोड वाली गति से।

* अवगाहना गुण के कारण परस्पर एक दूसरे सिद्ध की स्थिति का विरोध नहीं करते– एक मांही अनेक राज, अनेक मांहि एकीक। एक अनक की नहीं सख्या नमो सिद्ध निरंजन।'

बाध अटल अवगाहना, अमूर्ति, अगुरु-लघु, अनन्त आत्मवीर्य सहित विराजमान होते हैं।

३ स्थिति द्वार ×

पहले गुणस्थान के तीन भग हैं–१ अनादि अपयवसित+–जिसकी आदि भी नही और अन्त भी नही, २ अनादिसपर्यवसित●–जिसकी आदि नही, किन्तु अन्त है, ३ सादिसपयवसित†–जिसकी आदि भी है और अन्त भी है। तीसरे भग की स्थिति जघन्य अन्तर मुहूत और उत्कृष्ट देशोन अध पुद्गल परावतन की है।

दूसरे गुणस्थान की स्थिति ज० एक समय, उ० छह आवलिका की है।

तीसरे और बारहवे गुणस्थान की स्थिति ज० उ० अन्तर मुहूत की है।

चौथे गुणस्थान की स्थिति ज० अन्तर मुहूत और उ० छासठ‡ सागर झाझेरी है।

पाचवे और तेरहवे गुणस्थान की स्थिति ज० अन्तर मुहूत

× आत्मा के साथ कर्मों के लगे रहने का काल 'स्थिति' कलाता है।

+ यह भग अभव्य जीव की अपेक्षा से है क्योंकि वे अनादिकाल से मिथ्यात्वी है और अनन्त काल मिथ्यात्वी ही रहते ह।

● यह अनादि मिथ्यादष्टि भव्य जीव की अपेक्षा से है।

† यह तीसरा भग प्रतिपाति सम्यक्त्वी की अपेक्षा से है जो सम्यक्त्व को प्राप्त करके फिर मिथ्यात्व में आया हो।

‡ साधिक तेतीस सागरोपम की धारणा उपयुक्त लगती है–डोशी।

और उ० देशान क्रोड पूर्व की है।

छठे गुणस्थान की जघन्य स्थिति एक समय की उ० देशोन क्रोड पूर्व है।

सातवे, आठवे, नौवे, दसवे और ग्यारहवे गुणस्थान की स्थिति ज० एक समय उ० अन्तर मुहूर्त की है।

चौदहवे गुणस्थान की स्थिति मध्यम रीति से पाँच लघु अक्षर के उच्चारण करने मे जितना काल लगे उतनी है।

४ क्रिया द्वार

पच्चीस क्रियाओ के नाम—१ काइया २ अहिगरणिया ३ पाउसिया ४ पारियावणिया ५ पाणाइवाइया ६ आरम्भिया ७ परिग्गहिया ८ मायावत्तिया ९ मिच्छादसणवत्तिया १० अपच्चक्खाण ११ दिट्ठिया १२ मुट्ठिया १३ पाडुच्चिया १४ सामतोवणिवाइया १५ नेसत्थिया १६ साहत्थिया १७ आणवणिया १८ वेदारणिया १९ अणाभागवत्तिया २० अणवकखवत्तिया २१ पओइया २२ सामुदाणिया २३ पेज्जवत्तिया २४ दोसवत्तिया और २५ ईरियावहिया।

पहले और तीसरे गुणस्थान मे ईरियावहिया के सिवाय चौवीस × क्रियाएँ पाई जाती है। दूसरे ‡ और चौथे मे मिथ्यात्व

× तीसरे गु० में मिश्र परिणाम होते है। अत इसमें जो मिथ्यात्व का अश है उसकी अपेक्षा स मिथ्यात्व क्रिया बतलाई गई है। कारण द्वार में भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

‡ दूसरे गु० का जीव यद्यपि मिथ्यात्व के उन्मुख है तथापि वह

को भी छोडकर तेईस क्रियाएँ पाई जाती हैं। पाचवे मे अविरति को छोडकर बाइस क्रियाएँ हैं। ●छठे मे आरम्भिया और मायावत्तिया ये दो क्रियाएँ है। सातवें, आठवे, नौवें और दसवें गु० मे एक मायावत्तिया क्रिया पाई जाती है। ग्यारहवें, बारहवे और तेरहवे मे एक इरियावहिया क्रिया पाइ जाती है। चौदहवे गुणस्थान मे एक भी क्रिया नही है।

मिथ्यात्व में नही आया है अत उसम मिथ्यात्व क्रिया का अभाव बतलाया गया है।

● बीकानर वाली पुस्तक में पाचवे गुणस्थान तक तो २५ क्रियाओं की अपेक्षा वणन किया है, किन्तु छठ गुणस्थान में आरम्भियादि ५ क्रियाओ में की दो क्रियाएँ बताई ओर ८ से १० तक एक मायावत्तिया बताई। जन सिद्धात बाल सग्रह भाग ५ में छठ गु में पारिग्रहिकी छोडकर २१ तथा सातवे से दसवें तक आरम्भिकी छोडकर २० बताई। किन्तु विचार करते मुझ यह उचित नहीं लगा। इस पर एक बार श्रमण श्रेष्ठ से विचार विमश हुआ था तो ज्ञात हुआ कि–छठ गु० में तो २१ क्रियाएँ लग सकती है किन्तु ७ वे से २० मानना उचित नहीं लगता, क्योंकि कायिकी क्रिया में से अनुपरत कायिकी' चौथ गु० तक और दुष्प्रयुक्त कायिक' क्रिया छठे गु० तक लगती है। इसके बाद कायिकी क्रिया नहीं लगती। प्रज्ञापना पद २२ में कायिकी क्रिया के अभाव में शष आधिकरणिकी आदि चार क्रियाओं का भी अभाव माना है। ऐसी दशा में आधिकरणिकी, प्राद्वषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी क्रिया भी सातवे आदि गु० में नहीं लगनी चाहिये। इस विचार से सातवे आदि में कषाय के सद्भाव में सूक्ष्म रूप से १५ क्रियाएँ लगना समव है–डोशी।

५ सत्ता द्वार *

पहले गुणस्थान से ग्यारहवे गु० तक आठो ही कर्मों की सत्ता है। बारहवे गुणस्थान मे सात ● कर्मों की सत्ता है और तेरहव तथा चौदहवे गु० मे चार अघातिया कर्मों की सत्ता रहती है।

६ बध द्वार †

तीसरे गुणस्थान को छोडकर पहले से सातवे गु० तक सात तथा आठ कर्मो का बध होता है (जब सात कर्मों का बध होता है तब आयु-कर्म नही बँधता) तीसरे आठवे और नौव गुणस्थान मे आयु कर्म के सिवाय सात कर्मों का बध होता है। दसवें गुणस्थान मे मोहनीय और आयु के सिवाय छह कर्मो का बध होता है। ग्यारहवे, बारहवें और तेरहवें गुणस्थान मे एक सातावेदनीय का ही बध होता है। चौदहवें गुणस्थान मे बध नही होता।

७ उदय द्वार ‡

पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक आठो कर्मो का उदय होता है। ग्यारहवें तथा बारहवे गुणस्थान मे मोहनीय कर्म के सिवाय सात कर्मो का उदय होता है। तेरहवे तथा चौदहवे गु० मे चार अघातिया कर्मो का उदय होता है।

---

* आत्मा के साथ कर्मों का मोजूद रहना 'सत्ता' है।

● क्योंकि बारहव गु० में मोहनीय कर्म का अभाव होजाता है

† आत्मा के साथ कर्मों का क्षीर नीर के समान एकमेक हो जाना।

‡ स्थिति पूर्ण करके कर्म का फल देना 'उदय' कहलाता है।

८ उदीरणा द्वार *

तीसरे गणस्थान के मिवाय पहले से लेकर छठे गुणस्थान तक सात आठ कर्मो की उदीरणा होती है, (सात की उदीरणा हो, तो आयु कम की नही होती) तासरे गुणस्थान मे आठा कर्मो की उदीरणा हाती है, सातवे आठवे और नौवे गुणस्थान मे छह कर्मो की उदीरणा (आयु और वदनीय छोडकर) दसवें गुणस्थान मे छह या पाच कर्मो की उदीरणा (छह की हो, तो पूर्वोक्त दो छोडना और पाच की हो तो मोहनीय भी छोड देना) ग्यारहवे गु० मे पाच कर्मो की उदीरणा, बारहवे गु० मे पूर्वोक्त पाच कर्मो की या नाम और गोत्र दो कर्मो की उदीरणा होती है। तेरहवे ग० मे पूर्वोक्त दो की उदीरणा होती है या किमी की नही होती। चौदहवें गु० मे उदीरणा नही होती।

९ निर्जरा द्वार ×

पहले गुणस्थान से दसवे गु० तक आठो कर्मो की निजरा होती है। ग्यारहवें तथा बारहवें गु० मे मोहनीय कम के सिवाय सात कर्मा की निजरा हाती है और तेरहवे तथा चौदहवें गु० मे चार अघातिया कर्मो की निजरा होती है।

---

* तपस्या लोच आदि क्रियाओं से, स्थिति पूण होने से पूव ही कम का फल देना उदीरणा है।

× फल देकर कर्मों का आत्मा से झड जाना निजरा' है।

१० भाव द्वार

भाव पांच होते हैं–१ औदयिक* भाव २ औपशमिक‡ भाव ३ क्षायिक× भाव ४ क्षायोपशमिक† भाव और ५ पारिणामिक● भाव।

पहले, दूसरे और तीसरे गु० मे–औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक–ये तीन भाव होते हैं। चौथे से ग्यारहवें गु० तक उपशम श्रेणी वाले मे पांचो भाव होते हैं। चौथे से बारहवें गु० तक क्षपक-श्रेणी वाले मे औपशमिक छोड़कर शेष चारों भाव पाये जाते है। तेरहवें और चौदहवे गु० मे औदयिक, क्षायिक और पारिणामिक भाव–ये तीन भाव होते हैं तथा सिद्धा मे क्षायिक और पारिणामिक–ये दो भाव होते है।

११ कारण द्वार

बन्ध के कारण पाच होते हैं–१ मिथ्यात्व २ अविरति ३ प्रमाद ४ कषाय और ५ योग।

पहले और तीसरे गुणस्थान मे पांचो ही कारण होते हैं। दूसरे और चौथे गु० मे मिथ्यात्व के सिवाय चार कारण होते है। पाचवे और छठे गु० मे मिथ्यात्व तथा अविरति के सिवाय

---

* कर्मों के उदय से होने वाला भाव जैसे क्रोध आदि।

‡ कर्मों के उपशम से होने वाला भाव जैसे उपशम समकित चारित्र।

× कर्मों के क्षय से होने वाला भाव जैसे केवलज्ञान।

† कर्मों के क्षयोपशम से होने वाला भाव, जैसे मतिज्ञान आदि।

● स्वभाव से ही रहने वाला भाव, जैसे जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व।

तीन कारण होते हैं। सातवे से दसवे गु० तक कषाय और योग-ये दो कारण होते हैं और बारहवे तथा तेरहवे गु० मे मात्र योग ही कारण होता है। चौदहवे गु० मे कोई कारण नही है, वहाँ कर्म का बन्ध ही नही होता।

१२ परीषह द्वार

बाईस परीषहो के नाम-१ क्षुधा २ तृषा ३ शीत ४ उष्ण ५ दशमसक ६ अचेल ७ अरति ८ स्त्री ९ चर्या १० निषद्या (बैठना) ११ शय्या १२ आक्रोश १३ वध १४ याचना १५ अलाभ १६ रोग १७ तणस्पर्श १८ जल (मेल) १९ सत्कार पुरस्कार २० प्रज्ञा २१ अज्ञान और २२ दर्शन।

चार कर्मो के उदय से बाईस परीषह होते हैं-ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से बीसवा और इक्कीसवा-ये दो परीषह होते हैं। वेदनीय कर्म के उदय के ग्यारह-(पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा पाचवा, नौवाँ, ग्यारहवा तेरहवा, सोलहवा, सत्तरहवा और अठारहवा) मोहनीय कर्म के उदय से आठ परीषह (दर्शन-मोहनीय के उदय से एक बाईसवा 'दर्शन परीषह होता है और चारित्र मोहनीय के उदय से सात-छठा सातवा आठवा, दसवा, बारहवा, चौदहवा और उन्नीसवा) परीषह होते हैं। अन्तराय कर्म के उदय से एक पन्द्रहवा परीषह होता है।

पहले गुणस्थान से नौवे गु० तक बाईसो परीषह होते हैं, जिनमे से एक समय मे एक जीव, अधिक से अधिक बीस परीषह वेदता है दो नही वेदता, क्योंकि शीत परीषह हो, तो उष्ण नहीं

होता और उष्ण हो, तो शीत नहीं होता, तथा चर्या परीषह हो, तो निषद्या नहीं होता और निषद्या हो, तो चर्या नहीं होता। दसवें ग्यारहवें और बारहवें गु० में मोहनीय कर्म के आठ परीषह छोडकर शेष चौदह परीषह होते हैं। उनमे से पूर्वोक्त चार मे से दो ही होते हैं इसलिए एक साथ अधिक से अधिक बारह परीषह होते है। तेरहवे और चौदहवे गु० मे वेदनीय कर्म से होने वाले ग्यारह परीषह उत्पन्न होते हैं, जिनमे से एक साथ अधिक से अधिक नौ परीषह वेदते है, पूर्वोक्त रीति से दो नहीं होते +।

१३ आत्मा द्वार

आठ आत्माओं के नाम—१ द्रव्य आत्मा २ कषाय आत्मा ३ योग आत्मा ४ उपयोग आत्मा ५ ज्ञान आत्मा ६ दर्शन आत्मा ७ चारित्र आत्मा और ८ वीर्य आत्मा।

पहले और तीसरे गु० मे ज्ञान और चारित्र आत्मा के सिवाय छह आत्माएँ पाई जाती हैं। दूसरे चौथे और पाचवे गु० मे चारित्र आत्मा के सिवाय सात आत्माएँ होती हैं। छठे गु० से लेकर दसवे ग० तक आठों आत्माएँ होती हैं। ग्यारहवें से तेरहवे गु० तक कषाय आत्मा के सिवाय सात आत्माएँ होती

+ किन्हीं आचार्यों के मत से नौवे गुणस्थान तक बाईस परीषह माने जाते हैं किन्तु कर्म प्रकृतियों का उदय देखते हुए सातवे ग० तक बाईस परीषह होते हैं। आठवें गु० में दर्शन परीषह को छोडकर इक्कीस परीषह होते हैं। नौवें गु० में अचेल परीषह, अरति परीषह और निषद्या परीषह को छोडकर शेष १८ परीषह होते हैं।

हैं। चौदहवें गु० मे कषाय आत्मा और योग आत्मा के सिवाय छह आत्माएँ होती हैं। सिद्ध भगवान् मे ज्ञान, दर्शन, द्रव्य और उपयोग–ये चार आत्माएँ होती है।

१४ जीव भेद द्वार

पहले गुणस्थान मे जीव के चौदह ही भेद पाये जाते हैं। दूसरे गु० मे जीव के छह भेद पाये जाते हैं–दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, असज्ञी तिर्यच पचेन्द्रिय का अपर्याप्त, सज्ञी पचेन्द्रिय का पर्याप्त और अपर्याप्त। तीसरे गु० मे जीव का एक ही भेद पाया जाता है–सज्ञी का पर्याप्त। चौथे गु० मे सज्ञी का पर्याप्त और अपर्याप्त–ये दो भेद पाये जाते हैं। पाचवे से लेकर चौदहवे गु० तक जीव का एक ही भेद–सज्ञी का पर्याप्त पाया जाता है।

१५ गुणस्थान द्वार

प्रत्येक गुणस्थान अपने अपने गुण से सयुक्त होता है। पहले गु० से चौथे गु० तक आठ बोल पाये जाते है–१ असयत २ अप्रत्याख्यानी ३ अविरत ४ असवत ५ अपण्डित ६ अजाग्रत ७ अधर्मी ८ अधमव्यवसायी। पाचवे गु० मे आठ बोल पाये जाते हैं–१ सयतासयत २ पत्याख्यानाप्रत्याख्यानी ३ व्रताव्रती ४ सवतासवत ५ बालपण्डित ६ सुप्त जाग्रत ७ धर्माधर्मी ८ धर्माधमव्यवसायी। छठ गुणस्थान से चौदहवे गु० तक आठ बोल पाये जाते है–१ सयती २ प्रत्याख्यानी ३ विरत ४ सवृत्त ५ पण्डित ६ जागृत ७ धर्मी ८ धमव्यवसायी।

दूसरी तरह से गुणस्थान द्वार–

गत्यन्तर जाते भाग मे गुणस्थान तीन–पहला, दूसरा और चौथा।

अमर गु० तीन–३, १२, १३।

अप्रतिपाति गु० तीन–१२, १३, १४।

तीथकर नामकम के बंधक गु० पाँच–४, ५, ६, ७, ८।

तीथकर के लिए अस्पृश्य गु० पाच–१, २, ३, ५, ११।

शाश्वत गु० पाच–१, ४ ५, ६, १३।

अनाहारक+ गु० पाच–१, २, ४, १३, १४।

मोक्ष प्राप्त करने वाला उस भव मे कम से कम आठ गु० अवश्य प्राप्त करता है–४, ७, ८, ९, १०, १२, १३, १४। और ससार अवस्थान काल मे कम से कम प्रथम गु० सहित नौ गु० प्राप्त करता है।

१६ योग द्वार †

पहले दूसरे और चौथे गुणस्थान मे १३ योग–१ आहारक और २ आहारक मिश्र, इन दो को छोडकर पाये जाते हैं।

+ औदारिक आदि के पुदगलो को ग्रहण नहीं करने वाले को अनाहारक' कहते ह। पहला दूसरा और चौथा गु० विग्रह गति की अपेक्षा से अनाहारक ह और तेरहवाँ केवलि समदघात के तीसरे चौथे और पाचवें समयों की अपेक्षा अनाहारक है। चौदहवें गु० में तो आहार पुदगलों का ग्रहण होता ही नहीं अत वह अनाहारक है।

† मन वचन और काय के निमित्त से, आत्मा के प्रदेशो में होने वाली चचलता को 'योग कहते ह। इसके पन्द्रह भद ह।

तीसरे गु० मे १० योग (१ औदारिक मिश्र २ वैक्रिय मिश्र ३ आहारक ४ आहारक मिश्र और ५ कामण, इन पाचो को छाडकर) पाये जाते हैं। पाचवें गु० मे १२ योग (१ आहारक २ आहारक मिश्र और ३ कामण का छोडकर) पाये जाते हैं। छठे गु० मे कामण के सिवाय चौदह योग पाये जाते हैं। सातवें गु० मे तीन मिश्र (औदारिक मिश्र, वैक्रिय मिश्र, आहारक मिश्र) और एक कामण, इन चारो को छाडकर ग्यारह योग पाये जाते हैं। आठवे से बारहवे गु० तक चार मनोयोग, चार वचन योग और एक औदारिक, इस प्रकार नौ योग पाये जाते हैं। तेरहवे गु० मे पाच या सात योग होते हैं-पाच हावे तो १ सत्य मनो योग २ व्यवहार मनोयोग ३ मत्य वचन योग ४ व्यवहार वचन तथा ५ औदारिक-ये पाच होन है। यदि सात हा तो पाच पूर्वोक्त और औदारिक मिश्र तथा कार्माण इस प्रकार सात होते हैं। चौदहवे गुणस्थान मे योग नही होता।

१७ उपयोग द्वार

पहले और तीसरे गुणस्थान मे छह उपयोग हो सकते हैं- तीन अज्ञान-कुमति कुश्रुत, कुअवधि (विभग) और तीन दशन- चक्षदशन अचक्षुदशन, अवधिदशन। दूसरे, चाथे और पाचवे गु० मे छह उपयाग होते हैं-३ ज्ञान ३ दशन। छठे से बारहवे गु० तक सात उपयोग होते हैं-पूर्वोक्त छह और एक मन पयय ज्ञान। तेरहवे और चौदहवे गु० मे केवलज्ञान और केवलदशन- ये दो ही उपयोग हाते हैं।

१८ लेश्या द्वार

पहले गुणस्थान से छठे गु० तक छह लेश्याएँ पाई जाती हैं। सातवे गु० मे तेज, पद्म और शुक्ल–ये तीन लेश्याएँ होती हैं। आठवे से बारहवे तक एक शुक्ल लेश्या ही होती है। तेरहवे गु० मे एक परम शुक्ल लेश्या होती है। चौदहवे गु० मे लेश्या नहीं होती।

१६ हेतु द्वार

हेतु सत्तावन होते है–५ मिथ्यात्व, २५ कषाय, १५ योग और १२ अव्रत (६ काय● ५ इन्द्रिय १ मन)।

पहले गुणस्थान मे आहारक और आहारक मिश्र को छोड कर शेष पचपन हेतु पाये जाते है। दूसरे गुणस्थान मे पाच मिथ्यात्व को छोडकर पचास हेतु पाये जाते है तीसरे गु० मे पूर्वोक्त पचास मे से चार अनन्तानुबन्धी, ओदारिक मिश्र, वक्रिय मिश्र और कामण–इन सातो के सिवाय तयालीस ४३ हेतु पाये जाते है। चौथे गु० मे पूर्वोक्त तयालीस के सिवाय ओदारिक मिश्र, वैक्रिय मिश्र और कामण–ये तीन विशेष होकर छयालीस हेतु पाये जाते हैं। पाचवे गु० मे, छयालीस मे से अप्रत्याख्यान की चौकडी, त्रस की अविरति और कामण–ये छह घटा कर चालीस हेतु पाये है। छठे गु० मे सत्ताईस हेतु पाये जाते हैं–

● छह काय की यतना न करना और पाच इन्द्रिय तथा मन को वश में न रखना।

१४ योग और १३ कपाय * । सातवे गु० मे, औदारिक मिश्र वैक्रियिक मिश्र और आहारक मिश्र–इन तीन को छोडकर चौवीस हेतु पाये जाते है । आठवे गु० मे वैक्रियक और आहारक को छोडकर बाईस हेतु पाये जाते हैं । नौवे गु० मे हास्य आदि छह के सिवाय सोलह हेतु पाये जाते है । दसवे गु० मे नौ योग और सज्वलन का लोभ, ये दस हेतु पाय जाते है । ग्यारहवे तथा बारहवे गु० मे, चार मन के, चार वचन के और एक औदारिक–ये नौ हेतु पाये जाते हैं । तेरहवे गु० मे पाच तथा सात हेतु पाये जाते हैं–१ सत्य मन योग, २ व्यवहार मन योग ३ सत्य भाषा, ४ व्यवहार भाषा, ५ औदारिक, ६ औदारिक मिश्र, और ७ कामण । चौदहवे गु० मे कोई भी हेतु नही होता ।

२० मार्गणा द्वार *

पहले गुणस्थान की चार मागणाएँ-तीसरा, चौथा पाचवाँ और सातवा गु० । दूसरे गु० की एक मागणा–पहला गु० । तीसरे गु० की चार मागणा–ऊपर ● चढे तो चौथे पाचवे और सातवे मे जाता है और गिरे + तो पहले मे जाता है । चौथे गु० की पाच मागणा–न चे गिरे तो पहले, दूसरे, तीसरे गु० मे

---

* सज्वलन की चौकडी और नो नो कषाय ।

* यहाँ मागणा का तात्पय जाने के माग से है । जसे–पहले गु० वाला ऊपर लिखे चार ग० में जा सकता है ।

● परिणामों की विशुद्धि के कारण आगे के गु० में जावे तो ।

+ परिणामों की अविशुद्धि के कारण नीचे के गु० में आवे तो ।

आवे और ऊपर चढे तो पांचवे या सातवे गु० मे जावे । पाचवे गु० की पाच मागणा-गिरे तो पहले, दूसरे, तीसरे तथा चौथे म आवे और चढे तो सातवें मे जावे । छठे गुण की छह मागणाएँ-गिरे तो पहले के पांच गु० मे आवे, चढे तो सातवें मे जाव । सातवें की तीन मागणाएँ-गिरे तो छठे मे जावे, चढे तो आठवें जावे, काल करे तो चौथे मे जावे । आठवें गु० की तीन मागणाएँ-गिरे तो सातवें मे, चढे ता नौवें म और काल करे तो चौथे मे जावे । नौवें गु० की तीन मागणाएँ-गिरे ता आठव मे, चढे तो दसवें मे और यदि काल करे तो चौथे मे जावे । दसवे गु० की चार मागणाएँ-गिरे तो नौवें मे, चढे तो ग्यारहवें मे, या बारहवें मे जावे और काल करे तो चौथे मे जावे । ग्यारहवें गु० की दो मागणाएँ-गिरे तो दसवे मे और काल करे तो चौथे मे जावे । बारहवें गु० की एक मागणा-तेरहवे मे जाव । तेरहवे गु० की एक मार्गणा-चौदहवे मे जावे । चौदहवें गु० वाले मोक्ष मे ही जाते हैं ।

२१ ध्यान द्वार ×

पहले, दूसरे और तीसरे गुणस्थान मे आत्तध्यान तथा रौद्र ध्यान पाये जाते हैं । चौथ और पाचवें मे आत्तध्यान, रौद्रध्यान और धमध्यान पाये जाते है । छठे मे आत्तध्यान और धमध्यान होता है । सातवे मे केवल धमध्यान ही है । आठवें से तेरहवे तक शुक्ल ध्यान पाया जाता है और चौदहवें गुणस्थान मे परम

× चित्त की एकाग्रता को ध्यान' कहते ह ।

शुक्लध्यान होता है।

२२ दण्डक द्वार

पहले गुणस्थान मे चौवीस दण्डक, दूसरे मे चौवीस मे से पाच स्थावर के छोडकर उन्नीस, तीसरे और चौथे मे (उन्नीस मे से तीन विकलेन्द्रिय के छोडकर) सोलह, पाचवें मे सन्नी तिर्यच पचेंद्रिय और मनुष्य—ये दो, छठे से चौदहवें गु० तक मनुष्य का एक दण्डक पाया जाता है।

२३ जीवयोनि द्वार

पहले गुणस्थान मे चौरासी लाख + जीव योनि। दूसरे गु० मे (एकेन्द्रिय की ५२ लाख छोडकर) बत्तीस लाख। तीसरे चौथे गु० मे (तीन विकलेन्द्रिय की छह लाख घटाकर) छब्बीस लाख, पाचवे गु० मे (चौदह लाख मनुष्यो की और चार लाख तिर्यंचा की—इस प्रकार) अठारह लाख छठे गु० से चौदहवे गु० तक मनुष्य की चौदह लाख जीवयोनिया पायी जाती हैं।

२४ निमित्त द्वार

पहले से चौथे तक चार गुणस्थान दर्शनमोहनीय के निमित्त

+ चौरासी लाख जीवयोनि इस प्रकार है—७ लाख पृथ्वीकाय, ७ लाख अप्काय ७ लाख तेउकाय ७ लाख वायुकाय, १० प्रत्येक-वनस्पति काय, १४ लाख साधारण वनस्पतिकाय २ लाख द्वीन्द्रिय २ लाख त्रीन्द्रिय २ लाख चतुरिन्द्रिय १४ लाख मनुष्य, ४ लाख तिर्यञ्च पचेंद्रिय ४ लाख नारकी और ४ लाख देवों की।

से होते हैं। पांचवें से बारहव तक आठ गु० चारित्र माहनीय के निमित्त से हाते हैं और तेरहवां तथा चौदहवां गु० याग के निमित्त से होता है।

२५ चारित्र द्वार

पहले से चौथे गुणस्थान तक चारित्र नही होता, पांचवें गु० मे देश चारित्र, छठ और सातवें गु० मे तीन चारित्र होते हैं-१ सामायिक ‡ २ छेदोपस्थापनीय + और ३ परिहारविशुद्धि *। आठवे नौवें गु० मे दो चारित्र होते है-१ सामायिक २ छेदो पस्थापनीय। दसवें गु० मे १ सूक्ष्मसम्पराय † चारित्र होता है। ग्यारहवे से चौदहवे गु० तक यथाख्यात ● चारित्र होता है।

---

‡ जिस चारित्र में समता भाव को प्राप्ति हो उसे 'सामायिक चारित्र' कहते ह।

+ पहले ग्रहण किये हुए सयम को छेदकर फिर सयम में आना-अथात पहले जितने दिन सयम पालन किया हो उसे न गिन कर दूसरी बार सयम लेन के समय से दीक्षाकाल गिनना और बडे छाटे का व्यवहार करना, इसे छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते ह।

* जिसमें परिहार विशद्धि नाम की तपस्या की जाती है, उसे परि हार विशुद्धि चारित्र कहते ह ।

† जिस चारित्र में कषाय का सूक्ष्म उदय रहता है उसे सूक्ष्मसम्प राय चारित्र' कहते ह। इसमें सूक्ष्म लोभ का ही उदय होता है।

● जिस चारित्र में लेश मात्र भी कषाय नहीं रहती उसे यथाख्यात चारित्र कहते ह।

२६ समकित द्वार

क्षायिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से चौदहवें गु० तक होता है। उपशम सम्यक्त्व चौथे गु० से ग्यारहवें गु० तक होता है। क्षायोपशमिक (वेदक) सम्यक्त्व चौथे से सातवें गु० तक होता है। सास्वादन सम्यक्त्व दूसरे गु० में होता है। मिथ्यात्व और मिश्र गु० में सम्यक्त्व नहीं है।

२७ अन्तर द्वार

पहले गुणस्थान के तीन भंग हैं—१ अनादि अपर्यवसित (सदा से मिथ्यादृष्टि है और सदा रहेंगे) २ अनादि सपर्यवसित (जिनके मिथ्यात्व की आदि नहीं किन्तु अंत है) ३ सादि सपर्यवसित (जिनके मिथ्यात्व की आदि भी है और अंत भी है)।

इन तीन भंगों में से तीसरे भंग का अंतर ज० अंतर्मुहूर्त और उ० छासठ सागर झाझेरा है। दूसरे से लेकर ग्यारहवें गु० तक का अंतर ज० अंतर्मुहूर्त और उ० देशोन (कुछ कम) अर्द्ध पुद्गल परावर्तन है। बारहवें तेरहवें और चौदहवें गु० का अंतर नहीं है*।

---

*तात्पर्य—किसी गुणस्थान से एक बार च्युत हो कर दूसरी बार फिर उसी गु० में आने तक जितना काल बीच में व्यतीत होता है उसे 'अंतर' कहते हैं। पहले मिथ्यात्व गु० के पहले दो भंगों में अन्तर नहीं होता क्योंकि वे उस गु० से छूटते ही नहीं है। दूसरे गु० से लेकर ग्यारहवें गु० तक के जीव अपने अपने गु० से च्युत होकर कम से कम अंतर्मुहूर्त में और अधिक से अधिक कुछ कम अर्द्ध पुद्गल परावर्तन

२८ अल्प-बहुत्व द्वार

ग्यारहवें गुणस्थान वाले जीव, सब से थोड़े हैं और वे ५४ पाये जाते है * । ग्यारहवें गु० की अपेक्षा बारहवे और चौदहवें गु० वाले सख्यात गुण अधिक हैं। क्षपक श्रेणी वाले एक सौ आठ १०८ पाये जाते हैं। इनसे उपशम श्रेणी के आठवे नौवें और दसवें गु० वाले सख्यात गुण हैं। ये एक समय मे पृथक्त्व ● सौ पाये जाते हैं। उनकी अपेक्षा तेरहवें गु० वाले सख्यात गुण हैं और एक समय मे पृथक्त्व करोड पाये जाते है। उनकी अपेक्षा सातवें गु० वाले सख्यात गुण हैं और एक समय मे पृथक्त्व सौ करोड + पाये जाते हैं। उनकी

काल में उन उन गुणस्थानों में आते है, इसी कारण इनमें इतने समय का अन्तर बतलाया गया है। बारहवे, तेरहवे और चौदहवे गु० वाले जीव, इन गु० से च्युत होकर फिर इन गु० में नहीं आते, एक बार चढ़कर सिद्ध हो जाते है अतएव इनका कुछ भी अन्तर नहीं है।

* यह ५४ की सख्या प्रतिपद्यमान (वर्त्तमान) एक समय में श्रेणि प्रारम्भ करनेवालों की अपेक्षा से है। पूर्वप्रतिपन्न हों तो वे इनसे विशेष होंगे। यही बात १२ वें और १४ वें गुणस्थान के विषय में भी है --डोशी।

● दो से नौ तक की सख्या को 'पृथक्त्व' कहते है। कोई कोई इसे 'प्रत्येक' भी कहते है परन्तु प्रत्येक का अर्थ 'हर एक' होता है। इस कारण 'पृथक्त्व' ही बोलना चाहिए।

+ बीकानेर वाली प्रति पं ३६ में सातवें गुणस्थान वालों को पृथक्त्व हजार बताये, यह ठीक नहीं है --डोशी।

अपक्षा छठे गु० वाले सख्यात गुण है और एक समय मे पृथक्त्व हजार करोड पाय जाते हैं। उनकी अपेक्षा पाचवें गु० वाले असग्यात गुण हैं†। इनकी अपेक्षा दूसरे गु० वाले असख्यात गुण हैं×। दूसरे गु० वालो की अपक्षा तीसरे गु० वाले जीव असख्यात गुण हैं●। तीसरे ग० वालो की अपक्षा चौथे गु० वाले असख्यात गुण‡ है। चौथ गु० वाला से* पहले गु० वाले जीव अन त गुण+ हैं।

---

† क्योंकि असख्यात गभज तियञ्च भी इस पाचवें गुणस्थान में ह।

× दूसरे गुणस्थान वाले पाँचवें ग० से असख्यात इस कारण ह कि पाँचवा गु० केवल मनुष्य और तियञ्चा को होता है, किन्तु दूसरा गुण स्थान तो चारा गति के जीवों का हा सकता है। इसक सिवाय दूसरा गुणस्थान विकलेन्द्रियों को भी होता है परन्तु पाँचवा नहीं हो सकता।

● यद्यपि दूसरा और तीसरा गणस्थान चारों गतियो में पाया जाता है, परन्तु दूसरे की अपेक्षा तीसरे की स्थिति असख्यात गुणी है, इस कारण तीसरे गुण० वाले जीव दूसरे से असख्यात गुण ह।

‡ तीसरे गु० की अपेक्षा चौथे की स्थिति बहुत अधिक है और वह भी चारों गति में पाया जाता है। अत चौथे गु० वाले जीव, उनकी अपेक्षा अधिक ह।

* यहां एक बात और भी कहते ह-चौथे गुणस्थान से सिद्ध भगवत अनन्त गुण ह। फिर सिद्धों से पहले गुणस्थान वाले अनन्त गुण ह-डोशी।

+ साधारण वनस्पतिकाय क जीव, सभी मिथ्यादृष्टि ह, अतएव पहले गु० वाले, चौथे गु० वालों से अनन्त गुण ह।

॥ गुणस्थान स्वरूप समाप्त ॥

हमारी भावना

प्रथम गुणस्थानी मिथ्यत्वी जीव, सम्यक्त्वी बने। चतुर्थ गुणस्थानी सम्यक्त्वी जीव, सर्वविरत अथवा देशविरत बने। देशविरत श्रावक, सर्वविरत श्रमण बने। प्रमत्तसयत, अप्रमत्त निर्ग्रंथ बने। अप्रमत्त निर्ग्रंथ, अकषायी वीतराग बने। निर्ग्रंथ, स्नातक–सर्वज्ञ सर्वदर्शी बनकर जीवो का उद्धार करे। सयोगी स्नातक, अयोगी बन कर, शैलेषीकरण कर के सिद्धबुद्ध और मुक्त होवे।

मेरी गुणस्थान वृद्धि हो। मैं मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा अशुभ योग का त्याग करूँ, निर्ग्रंथ बनकर स्नातक पद प्राप्त करूँ। मेरी काषायिक परिणति नष्ट हो जाय। मेरे समस्त आवरण टूट कर क्षय हो जायँ।

समस्त जीव, अप्रशस्त परिणति एव कृष्णपाक्षिकपन छोडकर, शुक्लपक्षी बने, परित्त ससारी एव चरम शरीरी होकर परमात्म दशा को प्राप्त होवे।

गति-आगति

जीवो की आगति (जहा से आकर उत्पन्न होता है) और गति (मरने के बाद उत्पन्न होने का स्थान) का वणन किया जाता है।

अपेक्षा भेद से जीव के एक, दो, तीन, चार, आदि अनेक भेद होते है। किसी अपेक्षा से ५६३ भेद भी है। वे इस प्रकार है-नारकियो के १४, तियच के ४८, मनुष्यो के ३०३ और देवो के १९८।

नारकियों के १४ भेद

१ घम्मा २ वशा ३ सीला ४ अजना ५ अरिष्टा ६ मघा ७ माघवती। इन सात नरको के नारकी पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी। अत ७ पर्याप्तो और ७ अपर्याप्तो के चौदह भेद हैं।

तिर्यंचो के ४८ भेद

१ पृथिवीकाय के चार भेद—सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त ।
२ अप्काय के चार भेद—सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त ।
३ तेजस्काय के चार भेद-सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त अपर्याप्त ।
४ वायुकाय के चार भेद—सूक्ष्म बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त ।
५ वनस्पतिकाय के छह भेद-सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक इन के पर्याप्त और अपर्याप्त । यो एकेंद्रियो के २२ भेद हुए ।

तीन विकलेंद्रिय के छह भेद—१ द्वींद्रिय २ त्रींद्रिय ४ चतुरिंद्रिय के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

पचेंद्रिय के पाच भेद है १ जलचर २ स्थलचर ३ खेचर ४ उरपरिसप और ५ भुजपरिसप । इनके सज्ञी असज्ञी के भेद से दस भेद है और पर्याप्त तथा अपर्याप्त के भेद से बीस भेद होते हैं। इस प्रकार सब मिलकर तिर्यंचो के ४८ भेद है ।

मनुष्यों के ३०३ भेद

जहा असि मसि कृषि वाणिज्य शिल्प-कला की प्रवृत्ति होती है, उसे 'कर्म भूमि' कहते हैं । और जहा असि मषि आदि की प्रवृत्ति नही होती और कल्पवृक्षो से ही निर्वाह हो जाता है, उसे अकर्म भूमि कहते है । कर्म भूमि के १५ भेद † हैं और भोग

† कर्मभूमि १५ इस प्रकार की है—५ भरत ५ एरावत ५ महाविदेह । एक भरत जम्बूद्वीप का, दो धातकीखंड के और दो पुष्करार्ध के, ये ५ भरत क्षेत्र है । इसी प्रकार ऐरावत और महाविदेह भी समझना चाहिए ।

भूमि के ३० भेद ० हैं। दोनो को मिलाकर उनमे रहने वाले मनुष्यो के ४५ भेद हैं। ५६ अन्तरद्वीपो ‡ मे रहने वाले अकर्मभूमिज मनुष्यो के ५६ भद इनमे जोडने स १०१ भेद हाते हैं। पर्याप्त अपर्याप्त के भद से इनके २०२ भेद हा जाते हैं। इन १०१ क्षेत्रा म चौदह अशुचिस्थानो मे उत्पन्न होने वाले सम्मूर्छिम असज्ञी अपर्याप्त मनुष्या के १०१ भेद जोडने से ३०३ भेद होते है।

देवो के १९८ भेद

१० भवनवासी, १५ परमाधामी १६ व्यन्तर, १० त्रिजृ

---

० भोगभूमि ३० पूर्वोक्त प्रकार से ५ देवकुरु ५ उत्तरकुरु ५ हरिवष, ५ रम्यक्वष ५ हैमवत, ५ हैरण्यवत। इस प्रकार ३० अकमभूमि ह।

‡ जम्बूद्वीप से दक्षिण की ओर चूलहेम पवत और उत्तर की ओर शिखरि पवत की चार चार दाढाएँ ह और प्रत्यक दाढा पर सात सात क्षत्र ह। यही ८+७ = ५६ अन्तरद्वीप कहलाते ह। अन्तरद्वीपों के जसे नाम ह वसे ही वहा के मनुष्य होत ह। नाम ये ह-१ एकोरुक २ आभाषिक-३ वषाणिक ४ नागालिक ५ हयकण ६ गयकण ७ शष्कुलिकण ८ गोकण ९ आदशमुख १० मेण्ढ मुख ११ अयोमुख १२ गोमुख १३ अश्वमुख १४ हस्तिमुख १५ सिंहमुख १६ व्याघ्रमुख १७ अश्वकण १८ सिंहकण १९ अकण २० कणप्रावरण २१ उल्कामुख २२ मेघमुख २३ विद्युद्दन्त २४ विद्युन्मुख २५ घनदन्त २६ लष्टदन्त २७ गूढदन्त २८ शुद्धदन्त। इनका विस्तृत वणन जीवाभिगम प्र ३ उ १ में है। दूसरी ओर के भी यही नाम ह।

भकx १० ज्यातिषीछ, १२ वमानिक, ३ किल्विषी ६ नवग्रवयक के देव, ५ अनुत्तर विमान के दव, ६ लोकान्तिक। ये ६६ प्रकार के दव पयाप्त और अपर्याप्त के भेद से १९८ प्रकार के हाते हैं।

जीवा के ये सभी भेद मिलाकर ५६३ होते है। इन ५६३ भेदो की गति आगति का यहाँ वणन किया जाता है।

१ पहली नारकी मे आगति २५ की है। यथा–१५ कमभूमिज मनुष्य, ५ सज्ञी तिर्यंच और ५ असज्ञी तियच पचेन्द्रिय के पर्याप्त। इन २५ स्थानो से आकर जीव, पहली नरक मे उत्पन्न होते हैं। गति ४० की–१५ कमभूमिज मनुष्य और ५ सज्ञी तियच। इन २० के पर्याप्त और २० अपर्याप्त।

२ दूसरी नारकी मे आगति २० की–१५ कमभूमिज मनुष्य और ५ सज्ञी तियच। गति ४० की–पहली नारकी के समान।

३ तीसरी नारकी मे आगति १६ की। दूसरी नारकी के २० भदो मे से भुजपरिसप को छाडकर। गति ४० की–पहली नारकी के समान।

---

x चन्द्र सूय ग्रह नक्षत्र और तारा ये पाच ज्योतिषी अढाईद्वीप में चर ह और उसके बाहर स्थिर ह। अत चर स्थिर के भेद से इन के दस भेद हाते ह।

* १ अन्नजृभक २ पानजृभक ३ लयणजृभक ४ शयनजभक ५ वस्त्रजभक ६ पुष्पजभक ७ फलजभक ८ पुष्पफलजभक ९ बीजजभक और १० आवतिजभक। य दस तियक्जभक ह।

४ चौथी नारकी मे आगति १८ की। तीसरी के १६ भेदो मे मे 'खेचर' को छोडकर। गति ४० की–पहली नारकी के समान।

५ पाचवी नारका मे आगति १७ भेद से, चौथी नारकी के १८ भेदो मे से स्थलचर को छोडकर। गति ४० की।

६ छठी नारकी म आगति १६ भद से, पाचवी नारकी के १७ भेदो मे से उरपरिसप को छोडकर। गति ४० की।

७ सातवी नारक मे आगति १६ भेद से, १५ कमभूमिज मनुष्य + और १ मत्स्य–जलचर के पयाप्त। गति १० भद मे–५ सज्ञी तियच पर्याप्त और ५ अपयाप्त।

८ भवनपति वाणव्यन्तर देव म आगति १११ भेद से–१०१ सनी मनुष्य, ५ सज्ञा तियच आर ५ असज्ञी तिर्यच पचेन्द्रिय के पर्याप्त। गति ४६ भद मे–१५ कमभूमिज ५ सज्ञी तियच, १ बादर पृथ्वीकाय, १ बादर अप्काय और १ बादर वनस्पतिकाय। इन २३ के पर्याप्त और अपर्याप्त–कुल ४६।

६ ज्योतिषी और पहले देवलोक म आगति ५० भेद से–१५ कमभूमिज मनुष्य, ३० अकमभूमिज और ५ सनी तियच के पर्याप्त। गति ४६ भेद मे–भवनपति क समान।

१० दूसरे देवलोक मे आगति ४० भद से–३० अकर्मभूमिज मे से ५ हैमवत और ५ हैरण्यवत के १० भद छोडकर २०,

+ यहा सामान्य रूप से कमभूमिज मनुष्य गिनाय ह परन्तु स्त्री सातवे नरक मे नहीं जा सकती।

तथा १५ कर्मभूमिज मनुष्य और ५ संज्ञी तिर्यंच। गति ४६ भेद में—भवनपति के समान।

११ पहले किल्विषी मे आगति—३० भेद से—१५ कर्म भूमिज मनुष्य, ५ सज्ञी तिर्यंच, ५ देवकुरु और ५ उत्तरकुरु। गति ४६ भेद मे—भवनपति के समान।

१२ तीसरे देवलोक से आठवे देवलोक तक के नौ लौकान्तिक और दूसरे व तीसरे किल्विषी, इन सत्तरह प्रकार के देवो मे २० भेद से आगति—१५ कर्मभूमि मनुष्य और ५ सज्ञी तिर्यच के पर्याप्त। गति ४० भेद मे—१५ कर्मभूमि के मनुष्य और ५ सज्ञी तिर्यच के पर्याप्त और अपर्याप्त।

१३ नौवे से बारहवे देवलोक, नवग्रवेयक और पाच अनुत्तर विमान, इन अठारह जाति के देवो मे आगति १५ भेद से—१५ कर्मभूमि के पर्याप्ता मनुष्य की। गति ३० भेद मे—१५ कर्मभूमि के पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्य।

१४ पृथ्वी, जल और वनस्पति मे आगति २४३ भेद से—१०१ सम्मूर्छिम अपर्याप्त मनुष्य ३० पन्द्रह कर्मभूमि के पर्याप्त अपर्याप्त मनुष्य, ४८ तिर्यच, * ६४ देव (२५ भवनपति, २६ वाणव्यन्तर, १० ज्योतिषी पहला व दूसरा देवलोक के और पहला

* गिनति की सुविधा के लिए १७९ बोल की लडी बना लेते है। इसमें सम्मूर्छिम मनुष्य के १०१ कर्मभूमिज मनुष्य के पर्याप्त और अपर्याप्त ३० और तिर्यच के ४८—ये १७९ हुए। मनुष्य की आगति में इनमें से तेउकाय वाउकाय के ८ भेद निकालकर १७१ की लडी कर लेते है—डोशी।

किल्विषी के पर्याप्त एवं २४३। गति १७६ भेदों में—१०१ सम्मूर्छिम मनुष्य के अपर्याप्त १५ कर्मभूमि के पर्याप्त और १५ अपर्याप्त तथा ४८ तिर्यंच—एवं १७६।

१५ तेउकाय और वायुकाय में आगति—१७६ भेद से, ऊपर लिखे अनुसार। गति ४८ भेद के तिर्यंच की।

१६ तीन विकलेन्द्रिय में आगति—१७९ भेद से और गति १७९ भेद में—पूर्ववत।

१७ असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय मे आगति—१७६ भेदों से पूर्ववत। गति ३६५ भेदों में—५६ अन्तरद्वीप के पर्याप्त मनुष्य, भवनपति के २५ और व्यन्तर के २६—यों कुल ५१ जाति के देव और पहली नारकी, इन १०८ के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से २१६ और १७६ पूर्व कहे हुए। इस प्रकार ३९५।

१८ पांच सन्नी तिर्यंच में आगति—२६७ भेदों से—८१ प्रकार के देव (ऊपर के चार देव लोक, नौ ग्रैवेयक पांच अनुत्तर, इन १८ को छोड़कर) ७ नारकी के पर्याप्त और पहले कहे हुए १७९ भेद, ये सब मिलाकर २६७ भेद हुए। इन पांचों की गति भिन्न भिन्न इस प्रकार है।

जलचर की गति—५२७ भेदों में। ५६३ भेदों में से नौवें देवलोक से सर्वार्थसिद्ध तक के १८ जाति के देव के पर्याप्त और अपर्याप्त या ३६ कम करने से शेष बचे हुए ५२७।

उरपरिसर्प की गति—५२३ भेदों में। ५२७ भेदों में से छठी और सातवीं नारकी के पर्याप्त और अपर्याप्त, ये ४ कम

करने से शेष रहे हुए ५२३ भेद।

स्थलचर की गति–५२१ भद की। ५२३ मे से पाचवी नारकी का पर्याप्त और अपर्याप्त ये २ छोड कर।

खेचर की गति–५१६ भद की। ५२१ म से चौथी नारकी के पर्याप्त और अपयाप्त य २ छोडकर।

भुजपरिसप की गति–५१७ भेद की। ५१६ मे स तीसरी नारकी के पर्याप्त और अपर्याप्त, य २ छोडकर।

१६ असज्ञी मनुष्य मे आगति–१७१ भेद की। पहले कहे हुए १७६ भेदा मे से तेउकाय और वायुकाय के ८ भेद कम करके शेष बचे हुए। गति १७६ भेद की–पूववत।

२० पद्रह कमभूमि के सज्ञी मनुष्य मे आगति २७६ भद की। १७१ पूववत (असज्ञी मनप्य की आगति के समान) ६६ जाति के देव और पहली से ६ नारकी के पर्याप्त। गति ५६३ की।

२१ तीस अकमभूमि के सज्ञी मनुष्य की आगति–२० की। १५ कमभूमि और ५ सज्ञी तियच इन २० बीस के पर्याप्त। उनकी गति भिन्न भिन्न है।

पाच देवकुरु और पाच उत्तरकुरु, इन दस क्षेत्रो के मनुष्या की गति–१२८ की। ६४ प्रकार के देव पर्याप्त और ६४ अपर्याप्त।

पाच हरिवास और पाच रम्यकवास, इन दस क्षेत्रो के मनुष्यो की गति–१२६ की। १२८ मे से पहले किल्विप के पर्याप्त और अपर्याप्त छोडकर।

पाच हैमवत और पाच हैरण्यवत, इन दस क्षेत्रो के मनुष्यो

की। गति १०४ की। १९८ में से दूसरे देवलोक के पर्याप्त और अपर्याप्त छोड़कर।

२२ उत्तम अन्तर्द्वीपों मे आगति २५ की। १५ कर्म-भूमिज मनुष्य ५ सन्नी तिर्यंच और ५ असन्नी तिर्यंच के पर्याप्त। गति १०२ की—२५ भवनपति और २६ वाणव्यन्तर। इन ५१ के पर्याप्त और ५१ अपर्याप्त।

२३ तीर्थंकर की आगति ३८ की—३५ वैमानिको के (किल्विपी छोडकर) और पहले से ३ नारकी के पर्याप्त। गति—मोक्ष की।

२४ चक्रवर्ती की आगति ८२ भेद से—९९ जाति के देवो मे से १५ परमाधामी और ३ किल्विपी, इन १८ को छोड़कर शेप बचे हुए ८१ देव और पहली नारकी के पर्याप्त। गति १४ की—७ नरक के पर्याप्त और अपर्याप्त एव १४। (यदि दीक्षा लेवे तो देव या मोक्ष की)।

२५ वासुदेव की आगति ३२ की—१२ देवलोक, ९ लोकान्तिक ९ ग्रैवेयक और पहली व दूसरी नारकी के पर्याप्त, इस प्रकार ३२। गति १४ की—सात नरक के पर्याप्त और अपर्याप्त।

२६ बलदेव की आगति ८३ की—चक्रवर्ती के ८२ और दूसरी नारकी मे +।

२७ केवली की आगति १०८ की—९९ जाति के देव म से १५ परमाधर्मी और ३ किल्विपी निकाल कर, शेप ८१,

---

+ बलदेव की पदवी अमर है, यदि दीक्षा लेवे तो गति ७० केट-साधु के समान या मोक्ष।

१५ कर्मभूमिज मनुष्य, ५ सन्नी तिर्यंच, १ पृथिवी, १ पानी, १ वनस्पति और पहले की चार नरक। इस प्रकार १०८ पर्याप्त की। गति मोक्ष की।

२८ साधु की आगति २७५ की–१७१ पूर्वोक्त (असन्नी मनुष्य की आगति नं० १६) ६६ प्रकार के देव और प्रथम से ५ पृथ्वी तक के नारक पर्याप्त, इस प्रकार २७५। गति ७० भेद की–१२ देवलोक, ६ लौकान्तिक, ६ ग्रैवेयक और ५ अनुत्तर विमान के देव। इन ३५ के पर्याप्त और अपर्याप्त ७०।

२६ श्रावक की आगति २७६ की–पूर्वोक्त २७५ और छठी नरक। गति ४२ की–१२ देवलोक, ६ लौकान्तिक, इन २१ जाति के देवों के पर्याप्त और अपर्याप्त ४२।

३० सम्यगदष्टि की आगति ३६३ की–६६ प्रकार के देव, १०१ सन्नी मनुष्य के पर्याप्ता १०१ सम्मूर्छिम मनुष्य १५ कर्म भूमिज मनुष्य के अपर्याप्ता ७ नारकी के पर्याप्ता और तेजस्काय वायुकाय के ८ भेदों को छोड़कर शेष रहे हुए ४० भेद तिर्यंच के। सभी मिलाकर ३६३। गति २८२ × भेद की–८१ जाति के देवता, १५ कर्मभूमिज मनुष्य, ३० अकर्मभूमिज मनुष्य ५ सन्नी तिर्यंच और ६ नारकी, इन १३७ के पर्याप्त और अपर्याप्त, इस प्रकार २७४ तथा ३ विकलेंद्रिय और ५ असन्नी तिर्यंच का अपर्याप्ता–य २८२।

× मतांतर से २५८ भेद। २८२ में से अकर्म भूमिज मनुष्यों के ६० कम करके परमाधामी और किल्विषी के ३६ जोड़ने से २५८ भेद होते हैं। किन्तु २८२ की गणना ठीक लगती है–डोशी।

३१ मिथ्यादृष्टि की आगति ३७१* की–१७६ पूर्वोवत भेद, ६६ जाति के देव, ७ नारकी पर्याप्ता और ८६ यगलिक मनुष्य पर्याप्ता। गति ५५३ की–५६३ मे से ५ अनुत्तर विमान के पर्याप्त और अपर्याप्त–ये १० छोडकर।

३२ माडम्बि राजा की आगति २७६ की–श्रावक के भेदो के अनुसार। गति ५३५ की (५६३ मे से ६ ग्रैवेयक,५ अनुत्तर विमान, इन १४ के पर्याप्त अपर्याप्त के २८ भेदो को निकाल कर शेष रहे हुए)।

३३ स्त्रीवेद की आगति ३७१ की मिथ्यादृष्टि के अनुसार। गति ५६१ की (सातवी नरक के पर्याप्त अपर्याप्त छोडकर)।

३४ पुरुष वेद की आगति ३७१ की–स्त्रीवेद की आगति के अनुसार। गति ५६३ की।

३५ नपुंसक वेद की आगति २८५ की–१७६ पहले कहे हुए, ६८ प्रकार के देव पर्याप्त,७ नारकी के पर्याप्ता–एव २८५। गति ५६३ की।

---

* मिथ्यादृष्टि की आगति में कोई अपेक्षा भेद से ६४ प्रकार देव गिनते है। वे पांच अनुत्तर विमान के देवो को नहीं गिनते। वास्तव में अनुत्तर देव एकान्त सम्यग्दृष्टि ही होते है किन्तु वहा से मनुष्य भव में आकर कोई क्षयोपशम सम्यक्त्वी कुछ देर के लिए मिथ्यात्व फरस कर पुन सम्यक्त्वी हो सकता है। इस अपेक्षा से ७१ ठीक है, क्योंकि वह आया तो अनुत्तर विमान से है। अतएव आगत में गिनना ठीक है-डोशी।

३६ गभज जीव की आगति २८५ भेदो से, नपुसक वेदवत। गति ५६३।

३७ नोगभज+ जीवो की आगति ३२६ भेदा से (-७१ मे से नरक ७, तीसरे से बारहवे देवलोक तक १०, लोकातिक देव ६,दूसरे व तीसरे किल्विपी के २,ग्रैवेयक ६,अनुत्तर देव ५- ये ४२ छोडकर। गति ३६५ की। असज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंचवत।

+ जो माता के गभ से उत्पन्न होते हों -एसे सज्ञी तियच पचेन्द्रिय के १० और सज्ञी मनुष्य के २०२ कुल २१२ भेद छोड कर शेष ३५१ भेद नोगभज के ह-डोशी।

॥ गति आगति समाप्त ॥

नव तत्त्व

तत्त्व–वस्तु के वास्तविक स्वरूप को 'तत्त्व' कहते हैं। तत्त्व नौ हैं। यथा–१ जीव २ अजीव ३ पुण्य ४ पाप ५ आस्रव ६ सवर ७ निजरा ८ वध और ९ मोक्ष।

जीव–जिसमे उपयोग (ज्ञानशक्ति) हो। जीव सुख, दु ख, पुण्य और पाप का कर्त्ता और भोक्ता है। वह अतीत अनागत और वतमान–तीनो काल मे सदा शाश्वत रहता है। वह अमर है, उसका कभी विनाश नही होता।

अजीव–जो चैतन्य रहित (जड) हो। अजीव को सुख दु ख नही होता। वह पुण्य पाप का कर्त्ता और भोक्ता भी नहीं है।

पुण्य–जिसके उदय से जीव को सुख की प्राप्ति हो तथा जिससे आत्मा पवित्र वने, उसे 'पुण्य' कहते हैं। पुण्य की प्रकृति शुभ होती है। पुण्य कठिनाई से वाधा जाता है और सुखपूवक

भोगा जाता है । यह शुभ योगो से बाधा जाता है । पुण्य के फल मीठे होते हैं ।

पाप–जिसके उदय से जीव को दुख की प्राप्ति हो तथा जो आत्मा के पतन का कारण हो । पाप की प्रकृति अशुभ होती है और अशुभ योगो से बाधी जाती है । पाप बाधना सरल है, परन्तु भोगना बडा दु खदायी होता है । पाप के फल कडवे होते हैं ।

आस्रव–जिसके द्वारा कर्म पुदगल, आत्मा के साथ चिपकने के लिये आते है । जीव रूपी तालाब मे कर्मरूपी नालो से पुण्य और पापरूपी पानी आता है, उसे 'आस्रव' कहते हैं ।

सवर–आस्रव को रोकना 'सवर' कहलाता है । जीव रूपी तालाब मे कर्मरूपी नालो से आते हुए पुण्य पापरूपी पानी को रोकना 'सवर' कहलाता है ।

निर्जरा–विपाक (फलभोग) द्वारा अथवा तप सयम द्वारा देशत कर्मो का क्षय होना 'निर्जरा' है । जिस प्रकार कपड पर लगा हुआ मल जल तथा साबुन द्वारा दूर कर दिया जाता है, उसी प्रकार जीवरूपी कपडे पर लगे हुए कर्मरूपी मैल को ज्ञान-रूपी जल एव तप सयम रूप साबुन से धोकर आत्मा को निर्मल बनाना 'निर्जरा' कहलाता है ।

बन्ध–आस्रव द्वारा आये हुए कर्मो का आत्मा के साथ, सम्बन्ध होना अर्थात आत्मा के साथ कर्मो का लालीभूत हो जाना 'बन्ध' कहलाता है ।

मोक्ष–सम्पूर्ण कर्मो का सर्वथा क्षय हो जाने पर आत्मा का

अपने स्वरूप में लीन हो जाना 'मोक्ष' कहलाता है।

हेय ज्ञेय और उपादेय

वैसे तो नव ही तत्त्व ज्ञेय हैं, क्योंकि ज्ञान किये बिना उनका स्वीकार और त्याग नहीं किया जा सकता किन्तु दूसरी अपेक्षा से जीव अजीव और पुण्य + ये तीन ज्ञेय (जानने योग्य) हैं। संवर, निर्जरा और मोक्ष—ये तीन तत्त्व उपादेय (ग्रहण करने योग्य) हैं। पाप आस्रव और बन्ध-ये तीन हेय (छोड़ने योग्य) हैं।

रूपी अरूपी

पुण्य, पाप आस्रव और बन्ध-ये चार रूपी हैं। जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष-ये चार अरूपी हैं। (जीव है तो अरूपी किन्तु संसारी जीव कर्मों से युक्त हैं अतएव बन्ध तत्त्व से मिश्र है।) अजीव तत्त्व के पांच भेद हैं उनमें से धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय और काल-ये चार तो अरूपी हैं और एक पुद्गलास्तिकाय रूपी है।

नव तत्त्व में जीव अजीव

चार जीव और पांच अजीव हैं। जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष-ये चार तो जीव हैं और अजीव, पुण्य, पाप आस्रव और बन्ध-ये पांच अजीव हैं। निश्चयदृष्टि से तो जीव तत्त्व ही जीव है और अजीव तत्त्व अजीव है, शेष सात तत्त्व जीव अजीव की पर्याय हैं जैसे कि गीली मिट्टी से गाली बंधती है, वैसे ही जीव और अजीव के संयोग से सात तत्त्व उत्पन्न होते हैं।

+ अपेक्षा भेद से पुण्य को हेय भी कहा है-डोशी।

नव तत्त्वो के भेद

जीव तत्त्व के चौदह भेद, अजीव तत्त्व के चौदह भद, पुण्य के नौ, पाप के अठारह, आस्रव के बीस, सवर के बीस, निजरा के बारह, बन्ध के चार और मोक्ष तत्त्व के चार भेद हैं।

१ जीव तत्त्व

जीव तत्त्व तीन प्रकार से पहचाना जाता है–१ द्रव्य २ गुण और ३ पर्याय। द्रव्य और गुण सदा एक साथ रहते हैं, वे कभी भिन्न नही होते। जहा द्रव्य है, वहा गुण रहता ही है, द्रव्य के आश्रय मे ही गुण रहता है। जिस प्रकार चन्द्रमा से चादनी पथक नही रहती, वह सदा चन्द्रमा के साथ ही रहती है। पानी की शीतलता सदव पानी के साथ रहती है और अग्नि की उष्णता सदव अग्नि के साथ ही रहती है, उसी प्रकार जीव का उपयोग गुण सदव जीव के साथ ही रहता है। अवस्था मे परिवत्तन 'पर्याय कहलाता है। जीव की अवस्था का पलटना तथा एक गति से दूसरी गति मे जाना जीव की 'पर्याय' कहलाता है।

सामान्य रूप से जीव के चौदह भद हैं। किन्तु अपेक्षा विशेष से जीव के भेद एक से लेकर चौदह तक होते हैं। जसे कि–

१ उपयोग गुण की अपेक्षा जीव का भेद एक है।

२ जीव के दो भेद–१ सिद्ध और २ ससारी, अथवा १ त्रस

और २ स्थावर ।

३ जीव के तीन भेद–१ स्त्रीवेद, २ पुरुष वेद और ३ नपुसक वेद ।

४ जीव के चार भेद–१ नरक, २ तिर्यंच, ३ मनुष्य और ४ देव ।

५ जीव के पाच भेद–१ एकेंद्रिय, २ बेइन्द्रिय, ३ तेइन्द्रिय ४ चौरीन्द्रिय और ५ पचेन्द्रिय ।

६ जीव के छह भेद–१ पथ्वीकाय, २ अप्काय, ३ तेउकाय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय और ६ त्रसकाय ।

७ जीव के सात भेद–१ नरक, २ तियच, ३ तिर्यंचिनी, ४ मनुष्य, ५ मनुष्यिनी, ६ देव और ७ देवागना ।

८ जीव के आठ भेद–चार गति के पर्याप्त जीव और अपर्याप्त जीव ।

९ जीव के नौ भेद–१ पथ्वीकाय, २ अप्काय, ३ तेउकाय, ४ वायकाय, ५ वनस्पतिकाय, ६ बेइन्द्रिय, ७ तेइन्द्रिय, ८ चौरीन्द्रिय और ९ पचेन्द्रिय ।

१० जीव के दस भेद–एकेंद्रिय, बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय, चौरीन्द्रिय और पचेन्द्रिय–इन पाच के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

११ जीव के ग्यारह भेद–उपरोक्त दस भेद और ग्यारहवा अनिन्द्रिय (सिद्ध भगवान) ।

१२ जीव के बारह भेद–पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय–इन छह काय के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

१३ जीव के तेरह भेद–छह काया के उपरोक्त बारह भेद और तेरहवा भेद अकायिक (सिद्ध भगवान)।

१४ जीव के चौदह भेद-एकेद्रिय के दो भेद-सूक्ष्म और बादर। इन दोनो के पर्याप्त और अपर्याप्त। इस प्रकार एकद्रिय के चार भेद। ५–६ बेइन्द्रिय के पर्याप्त और अपर्याप्त। ७–८ तेइन्द्रिय के पर्याप्त और अपर्याप्त। ९–१० चौरीन्द्रिय के पर्याप्त और अपर्याप्त। ११–१४ पचेन्द्रिय के ४ भेद–सज्ञी पचेन्द्रिय और असज्ञी पचेन्द्रिय, इनके पर्याप्त और अपर्याप्त।

त्रस–त्रास एव भय तथा सर्दी गर्मी आदि से अपना बचाव करने के लिए जो जीव एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकते हैं, चल फिर सकते हैं, वे त्रस नाम कर्म के उदय से 'त्रस' कहलाते है। जसे-बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरीन्द्रिय और पचेन्द्रिय।

स्थावर-जीव त्रास भय सर्दी, गर्मी आदि से अपना बचाव करने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर नही जा सकते, चल फिर नही सकते, वे जीव स्थावर नाम कर्म के उदय से 'स्थावर' कहलाते हैं। जसे-एकेन्द्रिय जीव, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय वायुकाय वनस्पतिकाय।

जीव के उत्कृष्ट भेद ५६३ है। यथा–नारकी के १४ भेद, तिर्यंच के ४८, मनुष्य के ३०३ और देव के १९८ भेद। ये सब मिला कर ५६३ भेद होते हैं।

नारकी के चौदह भेद–१ घम्मा २ वशा ३ सीला, ४ अजना, ५ रिट्ठा ६ मघा और ७ माघवई–ये सात नरको के नाम हैं और १ रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा ३ वालुकाप्रभा, ४ पकप्रभा, ५

धूमप्रभा, ६ तम प्रभा और ७ तमस्तम प्रभा–ये सात नरको के गोत्र हैं। इन सात मे रहनेवाले जीवो के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से नारक जीवो के १४ भेद होते है।

रत्नप्रभा, शकराप्रभा आदि नाम का कारण–पहली नारकी मे रत्नकाण्ड है, जिससे वहा रत्नो की प्रभा पडती है, इसलिए उस 'रत्नप्रभा' कहते हैं। दूसरी नारकी मे शकरा अर्थात तीखे पत्थरो के टुकडो की अधिकता है, इसलिए उसे 'शकराप्रभा' कहते हैं। तीसरी नारकी मे वालका अर्थात् वालू (रेत) अधिक है और वह भडभुजा की भाड से अनन्त गुण अधिक उष्ण है, इसलिए उसे वालुकाप्रभा' कहते हैं। चौथी नारकी मे रक्त-मास के कीचड की अधिकता है, इसलिए उसे 'पङ्कप्रभा' कहते हैं। पाचवी नारकी मे धूम (धूआ) अधिक है और सोमल खार से भी अनन्तगुण अधिक खारा है, इसलिए उसे 'धूम-प्रभा' कहते हैं। छठी नारकी मे तम (अधकार) की अधिकता है इसलिए उस 'तम प्रभा' कहते ह। सातवी नारकी मे महात-मस (गाढ अधकार) है इसलिए उसे 'महातम प्रभा' कहते है। इसको 'तमस्तम प्रभा' भी कहते हैं, जिसका अथ है–जहा घोरतम अन्धकार है।

पहली रत्नप्रभा नरक का पिण्ड एक लाख अस्सी हजार योजन का है। उसमे से एक हजार योजन की ठीकरी ऊपर और एक हजार योजन की ठीकरी नीचे छोड देने पर बीच मे एक लाख अठहत्तर हजार योजन की पोलार है। उसमे १३ पाथडे और १२ आतरे हैं। उसमे तीस लाख नरकावास हैं

और उनमे नैरयिक जीवो के उत्पन्न होने की असख्यात कुम्भियाँ हैं। उनमे असख्यात नैरयिक जीव हैं। पहली नरक के नीचे चार बोल है–१ बीस हजार योजन का घनोदधि है, २ असख्यात योजन का घनवात है, ३ असख्यात योजन का तनुवात है और ४ असख्यात योजन का आकाश है। उसके नीचे दूसरी नरक है।

पाथडा–नरक के एक परदे के बाद जो स्थान होता है उस तरह के स्थानो को 'पाथडा'–प्रस्तँट अथवा प्रतर कहते है।

आतरा–एक पाथडे से दूसरे पाथडे के बीच का जो स्थान है उसको आतरा (अन्तर) कहते है।

दूसरी नरक का पिण्ड एक लाख बत्तीस हजार योजन का है। उसमे से एक हजार योजन की ठीकरी ऊपर और एक हजार योजन नीचे छोड देने पर बीच मे एक लाख तीस हजार योजन की पोलार है। उसमे ११ पाथडे और १० आतरे हैं, उनमे पच्चीस लाख नरकावास है। उनमे नैरयिक जीवो के उत्पन्न होने की असख्यात कुम्भिया है। उनमे असख्यात नरयिक जीव है। उसके नीचे पहली नरक की तरह घनोदधि, घनवात तनुवात और आकाश है। उसके नीचे तीसरी नरक है।

तीसरी नरक का पिण्ड एक लाख अठाईस हजार योजन का है। उसमे से एक हजार योजन की ठीकरी ऊपर और एक हजार योजन की ठीकरी नीचे छोड देने पर बीच मे एक लाख छब्बीस हजार योजन की पोलार है। उसमे ९ पाथडे और ८ आतरे है। उनमे पन्द्रह लाख नरकावास है। नरयिक जीवो

के उत्पन्न होने की असख्यात कुम्भिया है। वहा असख्यात नैरयिक जीव है। तीसरी नरक के नीचे, ऊपर लिखे अनुसार घनोदधि घनवात, तनुवात और आकाश है। इसके नीचे चौथी नरक है।

चौथी नरक का पिण्ड एक लाख बीस हजार योजन का है। उसमे से एक हजार योजन की ठीकरी ऊपर और एक हजार योजन की ठीकरी नीचे छोड देने पर, बीच मे एक लाख अठारह हजार योजन की पोलार है। उसमे ७ पाथडे और ६ आतरे हैं। उनमे दस लाख नरकावास है। नैरयिक जीवो के उत्पन्न होने की असख्यात कुम्भिया हैं। असख्यात नरयिक जीव हैं। उसके नीचे, ऊपर लिखे अनुसार घनोदधि घनवात, तनुवात और आकाश है। उसके नीचे पाचवी नरक है।

पाचवी नरक का पिण्ड एक लाख अठारह हजार योजन का है। उसमे से एक हजार योजन ठीकरी ऊपर और एक हजार योजन ठीकरी नीचे छोड देने पर बीच मे एक लाख सोलह हजार योजन की पोलार है। उनमे पाच पाथडे और चार आतरे है। उनमे तीन लाख नरकावास है। नरयिक जीवो के उत्पन्न होने की असख्यात कुम्भिया हैं। असख्यात नरयिक जीव है। उसके नीचे, ऊपर लिखे अनुसार घनोदधि घनवात तनुवात और आकाश है। उसके नीचे छठी नरक है।

छठी नरक का पिण्ड एक लाख सोलह हजार योजन का है। उसमे से एक हजार योजन की ठीकरी ऊपर और एक हजार योजन की ठीकरी नीचे छोड देने पर, बीच मे एक लाख

चौदह हजार योजन की पालार है। उसमे तीन पाथडे और दो आतरे हैं। उनमे पाच कम एक लाख नरकावास हैं। नरयिक जीवो के उत्पन्न होने की असख्यात कुम्भिया हैं। असख्यात नैरयिक जीव हैं। उसके नीचे ऊपर लिखे अनुसार घनोदधि, घनवात, तनुवात और आकाश है। उसके नीचे सातवी नरक है।

सातवी नरक का पिण्ड एक लाख आठ हजार योजन का है। उसमे से साढे बावन हजार योजन की ठीकरी ऊपर और साढे बावन हजार योजन की ठीकरी नीचे छोड देने पर, बीच मे तीन हजार योजन की पोलार है। उसमे केवल एक पाथडा है, आतरा नही है। उसमे पाच नरकावास हैं। उसमे नैरयिक जीवो के उत्पन्न होने की असख्यात कुम्भिया है उनमे असख्यात नैरयिक जीव है। उसके नीचे बीस हजार योजन का घनोदधि है, उसके नीचे असख्यात योजन का घनवात है, उसके नीचे असख्यात योजन का तनुवात है, उसके नीचे असख्यात योजन का लोकाकाश है और उसके नीचे अनन्त अलाकाकाश है।

तियञ्च के ४८ भेद

तिर्यंच के ४८ भेद--एकेंद्रिय के २२, विकलेन्द्रिय के ६ और पचेंद्रिय के २०, ये कुल मिला कर तियच के ४८ भेद होते हैं।

४ पथ्वीकाय के चार भेद–सूक्ष्म और बादर, इन दोनो के अपर्याप्त और पर्याप्त।

पथ्वीकाय की–मिट्टी, हीगलू, हडताल पत्थर, हीरा, पन्ना आदि सात लाख योनि है। स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूत और

उत्कृष्ट स्थिति सण्हा (श्लक्ष्ण) पृथ्वी की एक हजार वर्ष, शुद्ध पृथ्वी की बारह हजार वर्ष, बालु पृथ्वी की चौदह हजार वर्ष, सक्करा पृथ्वी की अठारह हजार वर्ष और खर पृथ्वी की बाईस हजार वर्ष की है। एक कंकर जितनी पृथ्वीकाय मे असंख्याता जीव होते हैं। पृथ्वीकाय का वर्ण पीला है, स्वभाव कठोर है, संस्थान चन्द्रमा अथवा मसूर की दाल के समान है। एक पर्याप्त की नेश्राय मे असंख्यात अपर्याप्त उत्पन्न होते हैं।

४ अप्काय के चार भेद—सूक्ष्म और बादर, इन दोनो के अपर्याप्त और पर्याप्त। अप्काय मे—बरसात का पानी, ओस का पानी, गडे का पानी, समुद्र का पानी, धुअर का पानी, कुआ, बावडी आदि का पानी। योनि सात लाख है। स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की है। एक पानी की बूद मे असंख्यात जीव है। अप्काय का वर्ण लाल है, स्वभाव ढीला है, संस्थान पानी के परपोटे (बुलबुले) के समान है। एक पर्याप्त के आश्रय मे असंख्यात अपर्याप्त होते हैं।

४ तेउकाय के चार भेद—सूक्ष्म और बादर, इन दोनो के अपर्याप्त और पर्याप्त। झाल की अग्नि, बिजली की अग्नि, बास की अग्नि उल्कापात आदि। योनि सात लाख है। स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट तीन दिन रात की है। एक अग्नि की चिनगारी मे असंख्याता जीव हैं। तेउकाय का वर्ण श्वेत और स्वभाव उष्ण है। संस्थान सूई के भारे के समान है। सूई की तरह अग्नि की झाल नीचे से छोटी और ऊपर से मोटी होती है। एक पर्याप्त के आश्रय मे असंख्यात अपर्याप्त उत्पन्न होते हैं।

४ वायुकाय के चार भेद–सूक्ष्म और वादर, इन दोनो के अपर्याप्त और पर्याप्त । उक्कलियावाय, मडलियावाय, घनवाय, तनुवाय, पूववाय, पश्चिमवाय आदि । यानि सात लाख है। स्थिति जघन्य अन्तमूहूत और उत्कृष्ट तीन हजार वप की है । एक फूक की वायु मे असरयाता जीव हैं । वायुकाय का वण हरा है । स्वभाव चलना है । सस्थान ध्वजा (पताका) के आकार है ।

६ वनस्पतिकाय के छह भेद–सूक्ष्म, प्रत्येक और साधारण इन तीनो के अपर्याप्त और पर्याप्त । प्रत्येक वनस्पतिकाय की यानि दस लाख है और साधारण वनस्पतिकाय की चौदह लाख है । वनस्पतिकाय का वण काला है । स्वभाव और सस्थान नाना प्रकार का है । एक शरीर मे एक जीव हो, उसे 'प्रत्येक वनस्पतिकाय' कहते है । जसे–आम, अगूर, केला, बड, पीपल आदि । योनि दस लाख है । स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट दस हजार वप है ।

कन्दमूल की जाति को 'साधारण वनस्पतिकाय' कहते हैं । जसे–ल्हशुन सकरकन्द, अदरख, आलू, रतालू गाजर, मूली, हरी हलदी, मूगफली, लीलण फूलण आदि । योनि चौदह लाख है । उपरोक्त कन्दमूल आदि साधारण वनस्पतिकाय मे एक सूई के अग्रभाग म आवे उतने मे असरयाता श्रेणिया ह । एक श्रेणि मे असरयाता प्रतर हैं । एक प्रतर मे असरयाता गोले है । एक एक गोले मे असरयाता शरीर हैं । एक एक, शरीर मे अनन्त जीव हैं । स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त की है ।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय वायुकाय और वनस्पतिकाय–

इन पांचो काय के सूक्ष्म को ता केवली भगवान ही देख सकते है, वे छद्मस्थ के दृष्टिगोचर नही होते । बादर को केवली भगवान और छद्मस्थ दोनो देखते हैं । इन पाचो काय के जीव, चार पर्याप्तिया (आहार शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छवास) पूरी बाध लेते है वे 'पर्याप्त' कहलाते हैं और जो इनसे कम बाधते ह, या पूरा नही बाधते, वे 'अपर्याप्त' कहलाते हैं ।

पृथ्वीकाय आदि पाच स्थावर के उपरोक्त प्रकार से २२ भेद हुए ।

विकलेन्द्रिय के ६ भेद होते हैं । वे इस प्रकार हैं–बेइन्द्रिय के दो भेद–अपर्याप्त और पर्याप्त । जिसके स्पर्शनेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय अर्थात शरीर और मुख–ये दो इन्द्रिया होती हैं उसको बेइन्द्रिय कहते हैं । जैसे–शख, सीप, कोडी कोटा, लट, अलसिया, कृमि (चूरणिया) बाला (नहरू) आदि दो लाख योनि हैं । बेइन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बारह वर्ष की है ।

तेइन्द्रिय के दो भेद–अपर्याप्त और पर्याप्त । जिसके स्पर्शनेन्द्रि, रसनेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय अर्थात शरीर मुख और नाक–ये तीन इन्द्रिया होती हैं, उसे तेइन्द्रिय कहते हैं । जसे–जू लीख, चाचड, माकड (खटमल), कीडा, कुथुआ, कानखजूरा आदि दो लाख योनि है । स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट उन पचास दिन की है ।

चौरीन्द्रिय के दो भेद–अपर्याप्त और पर्याप्त । जिसके स्पर्शनेन्द्रिय, रसनन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय और चक्षुइन्द्रिय है, अर्थात् शरीर

मुख, नाक और आँख–ये चार इन्द्रियां होती है, उसे चौरीन्द्रिय कहते हैं। जैसे–मक्खी, डास, मच्छर, भवरा, टीडी, पतंगिया, कसारी आदि दो लाख योनि है। स्थिति जघन्य अन्तमुहूत उत्कृष्ट छह मास की होती है।

तिर्यच पचेन्द्रिय के बीस भेद–१ जलचर २ स्थलचर ३ खेचर ४ उरपरिसप और ५ भुजपरिसप। इन पाच के सन्नी असन्नी के भेद से दस भेद होते है। इन दस के अपर्याप्त और पर्याप्त के भेद से बीस भेद हो जाते हैं। तिर्यच पचेन्द्रिय के–स्पर्श नेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय अर्थात शरीर, मुख नाक, आँख और कान–ये पाचो ही इन्द्रिया होती है। गाय, भस, बल, हाथी, घोडा आदि चार लाख योनि है। स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूत और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की होती है।

जलचर–जल मे चलने वाले जीव 'जलचर' कहलाते हैं। जलचर के मच्छ, कच्छप (कछुआ) मगर, ग्राह और सुसुमार ये पाच भेद हैं।

स्थलचर–स्थल (पृथ्वी) पर चलने वाले जीव 'स्थलचर' कहलाते हैं। जैसे–गाय, भस, घोडा आदि। स्थलचर के एक खुरा दो खुरा, गण्डीपदा और सनखपदा–ये चार भेद होते है। जिनके पर मे एक ही खुर होता है, वे 'एकखुरा' कहलाते है, जैसे–घोडा गदहा आदि। जिनके पर मे दो खुर होते हैं वे दोखुरा कहलाते हैं, जैसे–गाय, भस बल आदि। जिनके पैर सुनार की एरण की तरह चपटे होते है, वे गण्डीपदा' कहलाते हैं। जसे–हाथी आदि। जिनके पैरो मे नख युक्त पजा होता

है वे 'सनखपदा' कहलाते हैं। जैसे–कुत्ता, बिल्ली, सिंह, चीता आदि।

खेचर खे अर्थात आकाश, आकाश मे उडने वाले जीव 'खेचर' कहलाते है। जसे–कबूतर, कौआ आदि। खेचर के चार भेद होते हैं जसे कि–१ चमपक्षी, २ रामपक्षी, ३ समुदगक पक्षी और ४ वितत पक्षी। चममय पख वाले पक्षी 'चमपक्षी' कहलाते है। जसे–चमगादड आदि। रोममय पख वाले पक्षी 'रोमपक्षी' कहलाते हैं। जसे–हस, बगुला, चीडी, कबूतर आदि। समुदगक (डिब्बे के समान) बन्द पख वाले पक्षी 'समुदगक पक्षी' कहलाते हैं। फैले हुए पख वाले 'विततपक्षी' कहलाते है। समुदगक पक्षी और विततपक्षी–ये दो जाति के पक्षी ढाईद्वीप के बाहर ही होते हैं।

उरपरिसप–उर अर्थात छाती से चलने वाले जीव 'उरपरिसप' कहलाते है, जैसे–साप आदि।

भुजपरिसप–भुजाओ से चलने वाले जीव 'भुजपरिसप' कहलाते ह जैसे–नेवला, चूहा आदि।

इस प्रकार एकेंद्रिय के २२, तीन विकलेंद्रिय के ६, और तियञ्च पचेंद्रिय के २० भेद–ये सभी मिलाकर तियञ्च के ४८ भेद हुए।

मनुष्य के ३०३ भेद

१५ कमभूमि के ३० अकमभूमि के और ५६ अन्तर्द्वीपो के–ये सभी मिलाकर गभज मनुष्य के १०१ भेद होते हैं। इनके अपयाप्त और पर्याप्त ये २०२ भेद हुए और १०१ सम्मूर्च्छिम

मनुष्य के अपर्याप्त । य सब मिलाकर मनुष्य के ३०३ भेद होत हैं ।

प द्रह कमभूमि के स्थान–५ भरत, ५ ऐरावत और ५ महा विदेह ये १५ कमभूमि के क्षेत्र है । इनमे से एक भरत, एक ऐरावत और एक महाविदेह–ये तीन क्षेत्र जम्बुद्वीप मे है । दो भरत, दो ऐरावत और दो महाविदेह–ये छह क्षत्र धातकीखण्ड द्वीप मे ह । दो भरत, दो ऐरावत और दो महाविदेह–य छह क्षेत्र अद्ध पुष्कर द्वीप मे है ।

कमभूमि जहा असि (तलवार आदि शस्त्र) मसि (स्याही अर्थात लिखने–पढने का काय) और कृषि (खती) के द्वारा मनुष्य अपना निर्वाह करते है, उमे 'कमभूमि' कहते हैं । कम भूमि मे तीर्थकर, गणधर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासु देव, साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका होते है । राजा प्रजा का व्यवहार होता है । कमभूमि मे केतु, सेतु और अपकेतु रूप पृथ्वी हाती है । जहा बीज बोने से धायादि हाते हैं उस भूमि को 'केतु' कहते है । जहा जल सीचने से धायादि होते है उस भूमि को 'सेतु' कहते हैं और जहा बोये बिना ही अडक धाय तथा घास फूस आदि उगते हैं, उस भूमि को 'अप केतु' कहते है । इन प द्रह कमभूमि मे उत्पन्न मनुष्यो को 'कम भूमिज' कहते है ।

तीस अकमभूमि–५ देवकुरु, ५ उत्तरकुरु, ५ हरिवास, ५ रम्यकवास ५ हैमवत और ५ हैरण्यवत–ये तीस क्षेत्र 'अकम भूमि' कहलाते हैं । इनमे से एक देवकुरु एक उत्तरकुरु, एक

हरिवाम एक रम्यकवाम, एक हैमवत और एक हैरण्यवत–ये छह क्षेत्र जम्बूद्वीप मे है। इनमे से दो दो क्षेत्र के हिसाव से बारह क्षेत्र धातकीखण्ड द्वीप मे है और बारह क्षेत्र अर्द्ध पुष्कर द्वीप मे हैं।

अकर्मभूमि–जहा असि मसि कृषि का कम (व्यापार) नही हाता उसे 'अकमभूमि' कहते हैं। इन क्षेत्रो मे उत्पन्न हुए मनुष्यो को 'अकमभूमिज' कहते है। इन क्षेत्रो मे दस प्रकार के कल्पवृक्ष होते ह। ये कल्पवक्ष मन वाच्छित फल देते है। इ ही से अकमभूमिज मनुष्य अपना निर्वाह करते हैं। काई भी कम (काय) न करने से और कल्पवक्षो द्वारा मनवाच्छित भोग (फल) प्राप्त होने से इन क्षत्रो का भोगभूमि' और यहा के उत्पा मनुष्यो को 'भागभूमिज' कहते हैं। यहा पुत्र और पुत्री जोडे से ज म लेते है, इसलिए इन्हे 'युगलिया' भी कहते है। युगलिया (भाई बहन का जोडा) बडे होकर पतिपत्नी रूप से रहते है और अपने जीवन मे केवल एक युगल (पुत्रपुत्री) को ज म देते हैं फिर दोनो एक साथ ही मत्यु को प्राप्त हाते हैं। युगलिया मर कर दवलोक मे जाते है।

उपरोक्त तीस अकमभूमि के क्षेत्रो मे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदव, साधु साध्वी, श्रावक और श्राविका आदि नही हाते। राजा प्रजा का व्यवहार नही होता। वहा केतु और सेतु क्षेत्र नही होते किन्तु अपकेतु क्षेत्र हाता है।

छप्पन अन्तरद्वीप–जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र की मर्यादा करने वाला 'चुल्ल हिमवत' नाम का पवत है। वह स्वण समान पीला

है, वह सौ योजन ऊचा है, पच्चीस योजन पृथ्वी के भीतर है। एक हजार बावन योजन बारह कला का चौडा है। चौवीस हजार नौ सौ बत्तीस योजन लम्बा है। उसके पूव पश्चिम के किनारे पर लवणसमुद्र मे गजद ताकार (हाथी के दात के समान) दो दो दाढाए निकली है। एक एक दाढा पर सात सात अतर द्वीप है। इसी प्रकार इसकी चार दाढाओ पर अट्ठाईस अन्तरद्वीप है। चुल्लहिमवत पवत के समान ही ऐरावत क्षेत्र की मर्यादा करनेवाला 'शिखरी' पवत है। उसकी ऊचाई गहराई लम्बाई चौडाई आदि चल्लहिमवत पवत के समान है। शिखरी पवत के भी पूव पश्चिम के किनारे लवण समुद्र मे गजदताकार दो दो दाढाए निकली है। एक एक दाढा पर सात सात अतरद्वीप है। इस प्रकार इसकी चार दाढाओ पर अट्ठाईस अतरद्वीप हैं। इस प्रकार इन दोनो पवतो की आठ दाढाओ पर छप्पन अतर द्वीप हैं।

अतरद्वीप-जम्बूद्वीप मे भरतक्षेत्र की मर्यादा करने वाला चुल्लहिमवत पवत है। पूव और पश्चिम की ओर लवण समुद्र के जल से जहा इस पवत का स्पश होता है वहा इसके दोनो ओर, चारो विदिशाओ मे गजदन्ताकार दो-दो दाढाए निकली हुई है। एक एक दाढा पर सात सात अतरद्वीप है। इस प्रकार चार दाढाओ पर अट्ठाईस अतरद्वीप है।

पूव दिशा मे ईशान कोण मे जो दाढा निकली है उस पर सात अन्तर द्वीप इस प्रकार है–१ जम्बूद्वीप के जगती के कोट से लवण समुद्र मे तीन सौ योजन जाने पर पहला 'एकासक'

नाम वाला अतरद्वीप आता है । इसका विस्तार तीन सौ योजन का और इसकी परिधि कुछ कम ६४६ योजन की है । २ एकोरुक द्वीप से चार सौ योजन आगे जाने पर दूसरा हयकण' नाम वाला द्वीप आता है । यह द्वीप जगती के कोट से चार सौ योजन दूर है । यह चार सौ योजन विस्तार वाला है और इसकी परिधि कुछ कम १२६८ योजन की है । ३ हयकण द्वीप से पाच सौ याजन आग जाने पर तीसरा 'आदशमुख' नाम का अन्तरद्वीप आता है । यह जगती के कोट से पाच सौ सोजन दूर है । इसका विस्तार (लम्बाई चौडाई) पाच सौ याजन है और परिधि १५८१ योजन की है । ४ आदशमुख अतर द्वीप से छह सौ याजन आगे जान पर चौथा 'अश्वमुख' नाम वाला अन्तरद्वीप आता है । यह जम्बूद्वीप की जगती के कोट से छह सौ योजन दूर है । इसका विस्तार छह सौ योजन का है और परिधि १८६७ योजन की है । ५ चौथे अश्वमुख अतरद्वीप से सात सौ योजन आगे जाने पर पाचवा अश्वकण अतरद्वीप आता है । यह जम्बूद्वीप की जगती के कोट से सात सौ योजन दूर है । इसका विस्तार सात सौ योजन का है और परिधि २२१३ योजन की है । ६ अश्वकण अतरद्वीप से आठ सौ योजन आगे जाने पर छठा 'उल्कामुख' नाम का अन्तरद्वीप आता है । यह जगती के कोट से आठ सौ योजन दूर है । इसका विस्तार आठ सौ योजन का और परिधि २५२९ योजन की है । ७ उल्कामुख अन्तरद्वीप से नौ सौ योजन आगे जाने पर सातवा 'घनदन्त' नाम का अन्तरद्वीप आता है । यह जगती के कोट से नौ सौ

योजन दूर है। इसका विस्तार नामो योजन का है और परिधि २८४५ योजन की है। इन साता अन्तरद्वीपा मे उत्तरोतर सौ सौ योजन का विस्तार बढता गया है और परिधि मे उत्तरात्तर ३१६ योजन वढते गये है। जितना इनका विस्तार है उतने ही ये जगती के कोट से दूर है।

ईशानकाण की दाढा पर सात अन्तरद्वीप जिस क्रम से स्थित हैं और जितने विस्तार और परिधि वाले हैं। चुल्लहिमवत पवत की आग्नेय कोण, नैऋत्य कोण और वायव्य कोण की दाढाआ पर भी उसी क्रम से सात सात अतरद्वीप हैं। वे भी विस्तार, परिधि और दूरी मे इसके अनुसार हा हैं।

चारा काणो की दाढाओ पर स्थित २८ अतरद्वीपा के नाम इस प्रकार हं–

सख्या	ईशानकोण	आग्नेयकोण	नैऋत्यकोण,	वायव्यकाण
१	एकोरुक	आभासिक	वपाणिक	नागलिक
२	हयकण	गजकण	गौकण	शष्कुलीकण
३	आदशमुख	मेघमुख	अयोमुख	गोमुख
४	अश्वमुख	हस्तिमख	सिहमुख	व्याघ्रमुख
५	अश्वकण	हरिकण	अकण	कणप्रावरण
६	उल्कामुख	मेघमुख	विद्युतमुख	विद्युददन्त
७	घनदन्त	लष्टदन्त	गूढदन्त	शुद्धदन्त

चुल्लहिमवन्त पवत के समान ही एरावत क्षेत्र की मर्यादा करनेवाले शिखरी पवत के पूव पश्चिम के चारो कोणो मे चार दाढाएँ हैं और एक एक दाढा पर उपरोक्त प्रकार से उपरोक्त

नामवाले सात सात अतरद्वीप हैं। इस प्रकार दोनो पवता की आठ दाढाओ पर छप्पन अतरद्वीप हैं। ये अतरद्वीप लवण समुद्र के पाना की सतह से ढाई योजन से कुछ अधिक ऊपर है। प्रत्येक अन्तरद्वीप चारा ओर पद्मवर वेदिका से शाभित है और पद्मवर वेदिका भी वनखण्ड से घिरी हुई है।

इन अतरद्वीपा मे अतरद्वीप के नाम वाले ही युगलिक मनुष्य रहते हैं। इनके वज्रऋषभ नाराच सहनन और समचतुरस्र सस्थान होता है। इनकी अवगाहना आठ सौ धनुप की होती है और आयु पल्योपम के असख्यात भाग प्रमाण है। इनके शरीर मे चौसठ पसुलिया होती है। छह माम आयु शप रहने पर वे युगल सन्तान का जन्म देते ह। ७६ दिन सन्तान का पालन करत ह। फिर वह युगल सतान बडी हो जाती है और पति पत्नी रूप से रहत है। व अल्प कपायी, सरल और सतोपी होते है। वहा की आय भोगकर वे देवलोक मे उत्पन्न हाते हैं।

लवण समुद्र के बीच मे हाने से अथवा परस्पर द्वीपो मे अतर (दूरी) होने से य 'अतरद्वीप' कहलाते है। अकमभूमि की तरह अतरद्वीपा मे भी असि, मसि, कृपि–किसी भी प्रकार का कम (धधा) नही होता। यहा भी कल्पवक्ष होते है। अतर द्वीपो मे रहनवाले मनुष्य अतरद्वीपक' कहलाते हैं। ये एकान्त मिथ्यादृष्टि ही होत है।

अब सम्मूर्च्छिम मनुष्य के १०१ भेद बतलाये जाते हैं–

बिना माता पिता (स्त्री पुरुप के समागम बिना) ही उत्पन्न हाने वाले जीव 'सम्मूर्च्छिम' कहलाते है। पतालीस

लाख योजन परिमाण मनुष्य क्षेत्र में (अढ़ाईद्वीप और दो समुद्रों में) पन्द्रह कर्मभूमि तीस अकर्मभूमि और छप्पन अन्तरद्वीपों में गर्भज मनुष्य रहते हैं। इनके मलमूत्रादि में सम्मूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं। इनकी उत्पत्ति के स्थान चौदह हैं। यथा-

१ उच्चारेसु-विष्ठा में, २ पासवणेसु-मूत्र में, ३ खेलेसु-कफ में ४ सिंघाणेसु-नाक के मैल में, ५ वंतेसु-वमन में, ६ पित्तेसु-पित्त में ७ पूएसु-राध (रसी पीप) में और दुर्गन्ध युक्त बिगड़े घाव में से निकले हुए खून में ८ सोणिएसु-शोणित (रक्त) में, ९ सुक्केसु-शुक्र (वीर्य) में, १० सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु-शुक्र के सूखे हुए पुद्गलों के पुनः गीले होने पर उनमें, ११ विगय जीव कलेवरेसु-जीव रहित शरीर में, १२ इत्थी-पुरिस संजोगेसु-स्त्री पुरुष के संयोग में १३ णगरणिद्धमणेसु-नगर की मोरी (गटर) में और १४ सव्वेसु असुइट्ठाणेसु-अशुचि के सभी स्थानों में।

उपरोक्त चौदह स्थानों में एक अन्तर्मुहूर्त में सम्मूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं। इनकी अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमाण होती है। इनकी आयु अन्तर्मुहूर्त की होती है अर्थात् ये अन्तर्मुहूर्त में ही मर जाते हैं। ये असंज्ञी (मन रहित) मिथ्यादृष्टि एवं अज्ञानी होते हैं। अपर्याप्त अवस्था में ही इनका मरण हो जाता है।

देवों के १९८ भेद

१० भवनपति १५ परमाधार्मिक, १६ वाणव्यन्तर, १० जृम्भक १० ज्योतिषी १२ वैमानिक, ३ किल्विषिक, ९ लोका-

तिक ६ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर वैमानिक। ये कुल मिलाकर ६६ भद हुए। इनके अपर्याप्त और पयाप्त के भेद से देवो के १६८ भेद हाते है।

भवनपति देव

भवनपति देवो के नाम इस प्रकार है–१ असुरकुमार, २ नागकुमार, ३ सुवण (सुपण) कुमार, ४ विद्युत्कुमार, ५ अग्निकुमार, ६ द्वीपकुमार, ७ उदधिकुमार, ८ दिशाकुमार, ९ वायकुमार और १० स्तनितकुमार+।

पन्द्रह परमाधार्मिक देव–घार पापाचरण करनेवाले और क्रूर परिणामवाले असुर जाति के देव जो तीमरी नरक तक नारकी जीवो का विविध प्रकार के दुख देते है, वे 'परमाधार्मिक'–परम अधार्मिक कहलाते है। वे पन्द्रह प्रकार के होते है। यथा–१ अम्ब, २ अम्बरीष, ३ श्याम, ४ शबल, ५ रौद्र ६ उपरौद्र (महारौद्र), ७ काल, ८ महाकाल, ९ असिपत्र, १० धनुष, ११ कुम्भ, १२ बालुक, १३ वैतरणी, १४ खरस्वर

+ य देव प्राय भवनो में रहते ह इसलिए इ हे 'भवनपति' या भवनवासी देव कहते ह। इस प्रकार की व्युत्पत्ति असुरकुमारों की अपेक्षा समझनी चाहिए, क्योंकि विशषत ये ही भवनों में रहते ह। भवनपति देवो क भवन और आवासों में यह अन्तर हाता है कि भवन तो बाहर से गोल और भीतर से चतुष्कोण होते ह। उनके नीचे का भाग कमल की कर्णिका के आकार वाला होता है। शरीर प्रमाण बड, मणि तथा रत्नों के दीपकों से चारों दिशाओं को प्रकाशित करन वाले मण्डप आवास' कहलाते ह। भवनपति देव भवनों में तथा आवासों में –दानों में रहते ह।

और १५ महाघाप । इन परमाधार्मिक देवो के काय इस प्रकार हैं–

१ अम्ब-असुर जाति के जो देव नारकी जीवो को ऊचा आकाश मे ले जाकर एकदम नीचे गिरा देत हैं ।

२ अम्बरीष–जो नारकी जीवो के छुरी आदि से छोटे छोट टकडे करके भाड मे पकन याग्य बनाते हैं ।

३ श्याम–जो रस्सी या लात घूसे आदि से नारकी जीवो को पीटते ह और भयकर स्थानो मे डाल देते हैं तथा काले रग के होते ह वे श्याम कहलाते हैं ।

४ शबल–जो शरीर की आत नसे और कलेजे आदि को बाहर खीच लेते हैं तथा शबल अर्थात् चित्तकबरे रगवाले होते ह ।

५ रौद्र–जो भाले मे और शक्ति आदि शस्त्रो मे नारकी जीवो को पिरो देते ह । वे बहुत भयकर होते हैं ।

६ उपरौद्र (महारौद्र)–जो नारकी जीवो के अगोपागो को फाड डालते हैं, महाभयकर होने के कारण उन्हे उपरौद्र या महारौद्र कहते ह ।

७ काल–जो नारकी जीवो को कडाई आदि मे पकाते ह । ये काले रग के होते ह ।

८ महाकाल–जो नारकी जीवो के मास के टुकडे-टुकडे करते ह और उन्हे खिलाते हैं । वे बहुत काले होते ह ।

९ असिपत्र–जो वैक्रिय शक्ति द्वारा असि (तलवार) के आकार वाले पत्तो से युक्त वन की विक्रिया करके उसमे बैठे

हुए नारकी जीवो के ऊपर तलवार सरीखे पत्ते गिराकर तिल तिल जितने छोटे छोटे टुकडे कर डालते ह ।

१० धनुप–जो विनिया द्वारा निर्मित धनुप से बाण छोड-कर नारकी जीवो के कान आदि काट डालते ह ।

११ कुम्भ–जो तलवार द्वारा काटे हुए नारकी जीवो को कुम्भियो मे पकाते है।

१२ वालुक–जा वैक्रिय के द्वारा बनाई हुई कदम्ब पुष्प के आकार वाली अथवा वज्र सरीखी बालू-रेत मे नारकी जीवो को चनो की तरह भूनते है।

१३ वैतरणी–जो वक्रिय के द्वारा गरम किये हुए मास, रुधिर, राध, ताम्बा, सीसा आदि पदार्था से उबलती हुई नदी मे नारकी जीवो को फक कर तरने के लिये कहते है।

१४ खरम्वर–जो वज्र सरीखे काटो वाले शात्मली वक्षो पर नारकी जीवो को चढा कर कठोर स्वर करते हुए अथवा करुण रुदन करते हुए नारकी जीवा का खीचते है।

१५ महाघाप–जा डर से भागते हुए नारकी जीवो को पशुओ की तरह बाडे मे ब द कर देते है तथा जोर से चिल्लाते हुए उ हे वही रोक रखते हैं।

वाणव्यन्तर देव

वाणव्य तर देवो के २६ भेद है+। यथा–पिशाच आदि आठ

+ य सभी व्यन्तर देव मनष्य क्षत्रों में इधर उधर घूमते रहते ह। ये टूट फूटे घर जगल वक्ष और शू य स्थानों में रहत ह।

रत्नप्रभा पथ्वी क ऊपर क भाग में एक हजार योजन में से सौ

(पिशाच भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग और गन्धर्व)। आणपन्ने आदि आठ (आणपन्ने, पाणपन्ने, इसिवाई, भूयवाई, कन्दे महाकन्दे, कुहाण्ड, पयगदेव)। जम्भक दस(अन्न जम्भक, पाण जृम्भक, लयन जम्भक, शयन जम्भक, वस्त्र जमक, फल जभक, पुष्प जभक, फल्पुष्प जृभक, विद्या जृभक और अग्नि जभक)।

ऊपर बताये हुए छव्वीस भेद वाणव्यन्तर देवा के हैं, किन्तु शास्त्रो मे इनके तीन विभाग बनाये गये हैं। यथा–जम्भक, पिशाच आदि आठ को 'वाणव्यन्तर' अथवा 'व्यन्तर' कहा गया है। आणपन्न आदि आठ को 'गन्धर्व' कहा गया है। अन्न जभक आदि दस को 'जभक' कहा गया है। वे इस प्रकार है–

१ अन्न जभक–भोजन के परिमाण को बढाना, घटाना, सरस करना, नीरस करना आदि शक्ति रखने वाले 'अन्न जभक' कहलाते हैं।

योजन ऊपर और सौ योजन नीचे छोडकर बीच के आठ सौ योजन तिर्च्छालोक मे वाणव्यन्तर देवों के असंख्यात नगर है। वे नगर बाहर से गोल अन्दर से समचौरस तथा नीचे कमल की कर्णिका के आकार वाले है। ये पर्याप्त तथा अपर्याप्त व्यन्तर देवा के स्थान बताये गये है। वहा आठों प्रकार के वाणव्यन्तर रहते है। गन्धर्व नाम के व्यन्तर देव संगीत में बहुत प्रीति रखते है। ये सब बहुत चपल चित्तवाले तथा क्रीडा एव हास्य प्रिय है। वे विविध आभूषणों से अपना शृगार करने अथवा विविध क्रीडाओं में लगे रहते है। वे विचित्र चिन्होंवाले महाऋद्धि वाले महा कान्तिवाले महायशवाले, महाबलवाले महासामर्थ्यवाले तथा महासुखवाले होते है।

२ पाण जृंभक–पानी को घटाने या बढाने वाले देव।

३ वस्त्रजृंभक–वस्त्र को घटाने बढाने की शक्ति वाले।

४ लयण जभक–घर आदि की रक्षा करने वाले।

५ शयनजृंभक–शय्या आदि की रक्षा करने वाले।

६ पुष्पजृंभक–फूलो की रक्षा करने वाले।

७ फलजभक–फलो का रक्षा करने वाले।

८ पुष्पफल जभक–फूलो और फलो की रक्षा करने वाले देव। कही कही यहा 'अन्न जभक' नाम भी मिलता है।

९ विद्याजभक–विद्याओ की रक्षा करने वाले देव।

१० अव्यक्त जभक–सामान्यरूप से सभी पदार्थो की रक्षा करने वाले देव। कही कही 'अधिपति जृभक'–ऐसा नाम भी है।

ज्योतिषी देवो के दस भेद है–१ चन्द्र, २ सूय, ३ ग्रह, ४ नक्षत्र और ५ तारा। इनके चर (अस्थिर) और अचर (स्थिर) के भेद से दस भेद हो जाते है। ये प्रकाश करते है, इसलिए ये ज्योतिषी कहलाते हैं।

मनुष्य क्षेत्रवर्ती अर्थात मानुषोत्तर पवत तक ढाई द्वीप मे रहे हुए ज्योतिषी देव, सदा मेरु पवत की प्रदक्षिणा करते हुए चलते रहते है। मानुषोत्तर पवत के आगे रहने वाले सभी ज्योतिषी देव स्थिर रहते हैं।

जम्बूद्वीप मे दो चन्द्र, दो सूय छप्पन नक्षत्र, एक सौ छिहत्तर ग्रह और एक लाख तेतीस हजार नौ सौ पचास कोडाकोडी तारे हैं। लवण समुद्र मे चार, धातकी खण्डद्वीप मे बारह, कालोदधि समुद्र मे बयालीस और अर्द्ध पुष्कर द्वीप मे बहत्तर चन्द्र

हैं। इन क्षेत्रो म सूय की सख्या भी चन्द्र के समान ही है। इस प्रकार अढाई द्वीप मे १३२ चन्द्र और १३२ सूय हैं।

एक चन्द्र का परिवार २८ नक्षत्र, ८८ ग्रह और ६६६७५ कोडाकोडी तारा है। इस प्रकार ढाई द्वीप मे इनस १३२ गुणा ग्रह, नक्षत्र और तारा है।

चन्द्र से सूय की गति शीघ्र है। इसी प्रकार सूय से ग्रह, ग्रह से नक्षत्र और नक्षत्र स तारा की गति शीघ्र है।

तिर्च्छालोक मे मेरु पवत के समभूमि भाग से ७६० योजन से ६०० याजन तक यानी ११० योजन की मोटाई मे ज्योतिषी देवो के विमान है। समभूमि भाग से ६०० योजन की ऊँचाइ तक तिर्च्छालोक है। ज्योतिषी देव भी ६०० योजन की ऊँचाई तक ही है। इस प्रकार ज्योतिषी देव तिर्च्छालोक म है। तिर्च्छालोक की लम्बाइ चौडाइ करीब एक रज्जु परिमाण है। जहा लोक का अन्त होता है, वहा से ११११ योजन इधर भीतर की ओर तक ही ज्योतिषी देव है अर्थात् ११११ याजन रूप लोक के अन्तिम भाग मे ज्योतिषी देव नहीं है। आशय यह है कि ज्योतिषी देवो के जो सब से अन्तिम विमान है उनसे ११११ योजन रूप लोक के अन्तिम भाग मे ज्योतिषी देवो के विमान नही है।

वैमानिक देव

वैमानिक देवो के दो भेद हैं–कल्पोपपन्न और कल्पातीत। कल्प का अथ है–मर्यादा। जिन देवो मे इन्द्र, सामानिक आदि एव छोटे बडे की मर्यादा बन्धी हुई है उन्हे कल्पोपपन्न'

कहते है। जिन देवो मे इन्द्र, सामानिक आदि की एव छोटे बडे की मर्यादा नही है अपितु सभी 'अहमिन्द्र' है, वे 'कल्पातीत' कहलाते है।

कल्पोपपन्न देवो के बारह भेद हैं–१ सौधम, २ ईशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्म, ६ लान्तक, ७ महाशुक्र, ८ सहस्रार ९ आणत, १० प्राणत, ११ आरण और १२ अच्युत।

इन सौधम आदि विमानो मे वमानिक देव रहते हैं।

तिर्च्छालोक मे मेरु पवत के समतल भूमिभाग से डेढ रज्जु की ऊचाई पर सौधम और ईशान देवलोक हे। ढाई रज्जु पर सनत्कुमार और माहेन्द्र देवलोक है। सवा तीन रज्जु पर ब्रह्म देवलोक, साढे नीन रज्जु पर लान्तक, पोने चार रज्जु पर महाशुक्र, चार रज्जु पर सहस्रार, साढे चार रज्जु पर आणत और प्राणत, पाच रज्जु पर आरण और अच्युत देवलोक हैं। कुछ कम सात रज्जू की ऊचाई पर लोक का अन्त है। सौधम देवलोक से सर्वार्थसिद्ध तक के सभी देवलोको के ८४९७०२३ विमान है। सभी विमान रत्नो के बने हुए स्वच्छ, कोमल, स्निग्ध, घिसे हुए, स्वच्छ, रजरहित, निमल, निष्पक, बिना आवरण की दीप्ति वाले, प्रभा सहित, शोभा सहित, उद्योत सहित, प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाले, दशनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है। इनमे देव रहते हैं।

सौधम देवलोक के देवो के मुकुट मे मृग का चिन्ह होता है। ईशान मे महिषी (भस) का, सनत्कुमार मे वराह (सूअर) का, माहेन्द्र मे सिह का, ब्रह्म देवलोक मे बकरे का, लान्तक

मे ढक का, महाशुक्र मे घोडे का, सहस्रार म हाथी का, आणत मे भुजग का, प्राणत मे मेढे का, आरण मे वृषभ का और अच्युत मे विडिम (एक प्रकार के मग) का चिन्ह हाता है।

प्रथम सौधम स्वग मे शक्र नाम का इन्द्र है। बत्तीस लाख विमान, चौरासी हजार सामानिक देव, तेतीस गुरुस्थानीय त्राय स्त्रिंश देव, चार लोकपाल, आठ अग्र महिषिया, तीन परिषदाए सात अनीको (सेनाओ) सात अनीकाधिपतियो और तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देवो तथा बहुत से दूसरे वैमानिक देव और देवियो का अधिपति है।

दूसरे ईशान देवलाक का स्वामी ईशानेन्द्र है। अट्ठाईस लाख विमान अस्सी हजार सामानिक देव, तेतीस त्रायस्त्रिंशक देव चार लोकपाल, आठ अग्रमहिषिया तीन परिषदाओ, सात अनीक सात अनीकाधिपतियो तीन लाख बीस हजार आत्म रक्षक देवो तथा दूसरे बहुत से वमानिक देव और देवियो का स्वामी है।

३ सनत्कुमार देव लोक का इन्द्र सनत्कुमार है। बारह लाख विमान, बहत्तर हजार सामानिक देव आदि शक्रेन्द्र के समान जानना चाहिए। यहा अग्रमहिषिया या देविया नही होती। दो लाख अठासी हजार आत्मरक्षक देव होते है।

चौथा माहेन्द्र देवलोक का माहेन्द्र नामक इन्द्र है। आठ लाख विमान, सत्तर हजार सामानिव देव तथा दो लाख अस्सी हजार अगरक्षक देवो का स्वामी है। शेष सारा वणन सनत्कुमा रेन्द्र के समान जानना चाहिये।

पाचवे ब्रह्म देवलोक का इन्द्र ब्रह्म है। चार लाख विमान, साठ हजार सामानिक दव, दो लाख चालीस हजार आत्मरक्षक देव तथा दूसरे बहुत से वमानिक देवो का अधिपति है।

छठा लान्तक देवलोक का इन्द्र भी इसी नाम का है। पचास हजार विमान, पचास हजार सामानिक देव, दो लाख आत्म रक्षक देव तथा दूसरे बहुत से वैमानिक देवो का स्वामी है।

सातवा महाशुक्र देवलोक का स्वामी भी इसी नाम का है। चालीस हजार विमान, चालीस हजार सामानिक देव एक लाख साठ हजार आत्मरक्षक देव और दूसरे बहुत से वमानिक देवो का अधिपति है।

आठवे सहस्रार देवलोक का इन्द्र सहस्रारेन्द्र है। छह हजार विमान, तीस हजार सामानिक देव और एक लाख बीस हजार आत्मरक्षक दव तथा दूसरे बहुत से वमानिक देवो का स्वामी है।

नौवे और दसवे देवलोक—आणत और प्राणत का 'प्राणत' नाम का इन्द्र है। दोनो देवलोक का एक ही इन्द्र है। वह चार सौ विमान, बीस हजार सामानिक दव अस्सी हजार आत्म रक्षक देव तथा दूसरे बहुत से वमानिक दवा का अधिपति है।

ग्यारहवे और बारहवे आरण और अच्युत देवलोक का इन्द्र 'अच्युतेन्द्र है। तीन सौ विमान दसहजार सामानिक देव और चालीस हजार आत्मरक्षक देवा का अधिपति है।

किल्विषिक देव

किल्विषिक देवा के तीन भेद हैं। जसे कि—१ त्रिपल्यापमिक, २ त्रिसागरिक और ३ त्रयोदश सागरिक। ये नाम उनकी स्थिति

के अनुसार है। १ जिन किल्विषिक देवो की स्थिति तीन पल्योपम की है वे 'त्रिपल्योपमिक' कहलाते है। जिन की स्थिति तीन सागरोपम की होती है वे 'त्रि सागरिक' कहलाते हैं और जिन की स्थिति तेरह सागरोपम की है वे 'त्रयादश सागरिक' कहलात है।

वसे तो भुवनपति, वाणव्यतर, ज्योतिषी और वैमानिक, चारो ही जाति क देवो मे किल्विषिक देव होते है। भवनपति, वाणव्यतर और ज्योतिषी जाति के किल्विषिक देवो के रहन का प्रथक कोई खास स्थान नियत नही है। उपर्युक्त किल्विषिक देव, वमानिक जाति के है। इनमे से त्रिपल्यापमिक किल्विषिक, ज्योतिषी देवो के ऊपर और सौधम और ईशान नामक पहले और दूसरे देवलोक के नीचे के प्रतर भाग मे रहते है। तीन सागरिक किल्विषिक देव, दूसरे देवलोक से ऊपर सनत्कुमार और माहेन्द्र नामक तीसरे और चौथे दवलोक के नीचे क प्रतर भाग मे रहते है और तेरह सागरिक किल्विषिक दव, पाचवे देवलोक के ऊपर और लान्तक नामक छठे देवलोक के नीचे के प्रतर भाग मे रहते हैं।

लोकान्तिक देव

लोकान्तिक देवो के नौ भेद हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं–
१ सारस्वत २ आदित्य, ३ वह्नि, ४ वरुण, ५ गदतोय, ६ तुषित, ७ अव्याबाध ८ आग्नेय और ९ अरिष्ठ।

पाचवे देवलोक का नाम ब्रह्मलोक है। लोकान्तिक देव ब्रह्मलोक के अन्त मे अर्थात पास मे रहते है इसलिये इन्हे लोकान्तिक कहत हैं। अथवा ये दव औदयिक भावरूप भावलोक

के अन्त मे स्थित है अर्थात इनके स्वामी देव प्राय एक भवावतारी होते है, इसलिए इन्हे 'लोकान्तिक' कहते हैं।

लोकान्तिक देवो का मान-सत्कार बहुत होता है। इन के मुख्य देव सम्यगदृष्टि ही होते हैं। तथा सभी लोकान्तिक देव भव्य ही होते है। अभवी जीव लोकान्तिक देवो मे उत्पन्न नही होत। जब तीर्थङ्कर के दीक्षा लेने का समय आता है, तब ये लोकान्तिक देव, मनुष्य लोक मे आ कर उनसे प्रार्थना करते हैं कि 'हे भगवन्! आप दीक्षा धारण कीजिये और जगज्जीवो के कल्याण के लिये धर्म तीर्थ की स्थापना कीजिये।"

ग्रैवेयक देव

ग्रैवेयक देवो के ९ भेद है—१ भद्र, २ सुभद्र, ३ सुजात, ४ सुमनस, ५ सुदर्शन, ६ प्रियदर्शन, ७ अमोघ, ८ सुप्रतिबद्ध और ९ यशोधर।

इन नौ प्रकार के ग्रैवेयक देवो के इन्ही नामवाले नौ विमान हैं। उनकी तीन त्रिक है अर्थात तीन तीन विमान एक एक पंक्ति मे आये हुए हैं। जैसे कि—पहली त्रिक मे भद्र, सुभद्र और सुजात—ये तीन है। इस पहली त्रिक म १११ विमान हैं। पहली त्रिक के ऊपर दूसरी त्रिक मे सुमनस सुदर्शन और प्रियदर्शन, ये तीन ग्रैवेयक हैं। इस त्रिक मे १०७ विमान हैं। दूसरी त्रिक के ऊपर तीसरी त्रिक है, उसमे अमोघ सुप्रतिबद्ध और यशोधर— ये तीन ग्रैवेयक हैं। इस त्रिक मे १०० विमान हैं।

ग्रैवेयक देवों के विमान आरण और अच्युत नामक ग्यारहवे और बारहवे देवलोक के असंख्यात योजन ऊपर है और तीन

निको मे विभक्त हैं।

अनुत्तर विमान

अनुत्तर विमानवासी देवा क पाच भेद हैं। उनके विमाना के नाम इस प्रकार हैं–१ विजय, २ वजयन्त, ३ जयन्त, ४ अपराजित और ५ मर्वाथसिद्ध। इन विमाना मे रहनेवाले दव भी इन्ही नामवाले हैं।

नव ग्रवेयक विमानो से असख्यात योजन ऊपर अनुत्तर विमान हैं।

य विमान अनुत्तर अर्थात सर्वोत्तम हाते हैं और इन विमाना मे रहनेवाले देवो के शब्द रूप गध रस और स्पश सव श्रेष्ठ होत हैं। इसलिए उनके विमानो का 'अनुत्तर विमान' कहते हैं और उनमे रहने वाले देवो को अनुत्तर विमानवासी' देव कहत हैं।

इस प्रकार १० भवनपति, १५ परमाधार्मिक, १६ वाण व्यन्तर, १० जभक, १० ज्योतिषी, १२ वैमानिक, ३ किल्विषिक, ९ लोकान्तिक, ९ ग्रवेयक और ५ अनुत्तर विमानिक–य कुल मिलाकर ९९ भद हुए। इन ९९ के अपर्याप्त और पर्याप्त के भेद से देवो के १९८ भद होते हैं।

नारकी के १४, तियच के ४८, मनुष्य के ३०३ और देव के १९८ इस प्रकार कुल मिलाकर जाव के ५६३ भेद होते हैं।

काल चक्र

अवसर्पिणी काल दस कोडाक्रोडी +सागरोपम का होना है।

+ सागरोपम और पल्योपम का वणन काल वणन के बाद दिया गया है।

इसके छह विभाग होते हैं, जिन्हे 'आरा' कहते हैं। वे इस प्रकार हैं–

१ सुषम सुषमा २ सुषमा ३ सुषम दुषमा ४ दुषम-सुषमा ५ दुषमा ६ दुषम दुषमा।

(१) सुषम सुषमा–यह आरा चार कोडाकोडी सागरोपम का होता है। इसमें मनुष्यो की अवगाहना तीन कोस की और आयु तीन पल्योपम की होती है। इस आरे मे पुत्र पुत्री युगल रूप से उत्पन्न होते हैं। बडे होकर वे ही पति पत्नी बन जाते हैं। युगलरूप से उत्पन्न होने के कारण इस आरे के मनुष्य 'युगलिया' कहलाते हैं। माता पिता का आयु जब छह मास शेष रहती है, तब एक युगल (पुत्र पुत्री का जोडा) उत्पन्न होता है। माता पिता ४९ दिन तक उनकी प्रतिपालना करते है। तबतक वे स्वय जवान हो जाते हैं और पृथक विचरण करने लग जाते हैं। आयु समाप्ति के समय माता को छीक और पिता को जभाई आती है और दोनो एक साथ काल कर जाते है। पति का वियोग पत्नी नही देखती और पत्नी का वियोग पति नही देखता। वे मर कर देवो मे उत्पन्न होते हैं। इस आरे के मनुष्य दस प्रकार के * कल्पवृक्षो मे मनोवाच्छित सामग्री पाते हैं। तीन दिन के अन्तर से इन्हे आहार की इच्छा होती है। युगलियो के वज्रऋषभ नाराच सहनन और समचतुरस्र सस्थान होता है। इनके शरीर मे २५६ पसलिया होती है। युगलिया

* कल्पवृक्ष का अर्थ और भेद, कालचक्र के वर्णन के बाद दिया गया है।

असि, मसि और तृपि मे से कोई वम नही करते ।

इस आरे मे पृथ्वी का स्वाद मिश्री आदि मधुर पदार्थों से भी अधिक स्वादिष्ट होता है । पुष्प और फला का स्वाद, चक्र वर्ती के श्रेष्ठ भोजन से भी वढकर होता है । भूमि भाग अत्यन्त रमणीय होता है और पाँच वणवाली विविध मणिया से एव वक्षो और पौधो से सुशोभित होता है । सभी प्रकार के सुखो से परिपूण होने के कारण यह आरा 'सुपम सुपमा' कहलाता है ।

(२) सुपमा–यह आरा तीन कोडाकोडी सागरोपम का होता है । इसमे मनुष्यो की अवगाहना दो कोस की और आयु दो पल्योपम की हाती है । पहले आरे के समान इस आरे मे भी युगल धम रहता है । पहले आरे के युगलियो से इस आरे के युगलियो मे इतना ही अन्तर होता है कि इनके शरीर मे १२८ पसलिया होती है । माता पिता बच्चो का ६४ दिन तक पालन-पापण करते है । दो दिन के अतर से आहार की इच्छा हाती है । यह आहार भी सुखपूण हाता है । शेप सारी बाते स्थूलरूप से पहले आरे जैसो जानना चाहिये । अवसर्पिणी काल हाने के कारण इस आरे मे पहले की अपेक्षा सभी वाता मे क्रमश हीनता होती जाती है ।

(३) सुपम-दुपमा–यह आरा दो कोडाकोडी सागरोपम का होता है । इसम दूसरे आरे की तरह सुख तो है, पर तु साथ म दु ख भी है । इस आरे के तीन भाग है । प्रथम दो भाग म मनष्यो की अवगाहना एक कोस और स्थिति एक पल्योपम की होती है । इन दोनो भागो मे युगलिया उत्पन्न होते है । उनके

शरीर मे ६४ पसलिया होती हैं, माता पिता ७९ दिन तक बच्चो का पालन पोषण करते हैं। एक दिन के अन्तर से आहार की इच्छा होती है। पहले दूसरे आरो के युगलियो की तरह ये भी छीक और जमाई आने पर काल कर जाते है और देवो मे उत्पन्न होते हैं। सभी बाते स्थूलरूप से पहले-दूसरे आरे जैसी जाननी चाहिये, किन्तु सभी बातो मे पहले की अपेक्षा क्रमश हीनता होती ही जाती है।

सुषमदुषमा नामक तीसरे आरे के तीसरे भाग मे छहो सहनन और छहो सस्थान होते है। अवगाहना एक हजार धनुष से कम रह जाती है। आयु जघन्य सख्यात वर्ष, उत्कृष्ट असख्यात वर्ष की होती है। मृत्यु होने पर जीव स्वकृत कर्मानुसार चारो गतियो मे जाते हैं। इस भाग मे जीव मोक्ष मे भी जाते हैं।

वर्तमान अवसर्पिणी के तीसरे आरे के तीसरे भाग की समाप्ति मे जब पल्योपम का आठवा भाग शेष रह गया, तब कल्पवृक्षो की शक्ति काल दोष से न्यून हो गई। युगलियो मे द्वेष और कषाय की मात्रा बढने लगी और वे आपस मे विवाद करने लगे। अपने विवादो का निपटारा कराने के लिये उन्होंने 'सुमति' को स्वामी रूप से स्वीकार किया। सुमति प्रथम कुलकर थे। इनके बाद क्रमश चौदह कुलकर हुए। पहले पाच कुलकरो के शासन मे 'हकार' दण्ड था। अपराधी को 'हू' इतना कह देना ही पर्याप्त था, फिर वह वैसा अपराध नहीं करता था। छठे से दसवे कुलकर तक के शासन मे 'मकार' दण्ड था। म–'ऐसा मत करो'–इतना कह देना ही पर्याप्त था,

फिर वह आगे से वसा अपराध नही करता था । ग्यारहवें से पन्द्रहवे कुलकर तक के शासन मे 'धिक्कार' दण्ड था 'तुमने ऐसा काय किया ? तुम्हे धिक्कार है'—इतना कहना ही पर्याप्त था । चौदहवे कुलकर 'नाभि' थे और पन्द्रहवे कुलकर उनके पुत्र श्रीऋषभदेव स्वामी थे । इनकी माता का नाम 'मरुदेवी' था । ऋषभदेव, इस अवसर्पिणी के प्रथम राजा, प्रथम साधु, प्रथम केवली और प्रथम तीर्थंकर थे इनकी आयु चौरासी लाख पूर्व की थी । इन्होने बीस लाख पूर्व कुमारावस्था मे बिताये और त्रेसठ लाख पूर्व राज्य किया । अपने राजशासनकाल मे इन्होने प्रजाहित के लिये लेख गणित आदि ७२ पुरुष कलाओ और ६४ स्त्री कलाओ का उपदेश दिया । इसी प्रकार एक सौ शिल्प और असि मसि कृषि रूप तीन कर्मो की भी शिक्षा दी । त्रेसठ लाख पूर्व राज्य का उपभोग कर, दीक्षा अगीकार की । एक हजार वर्ष तक छद्मस्थ रहे । एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व केवली रहे । चौरासी लाख पूर्व की आयुष्य पूर्ण होने पर मोक्ष पधारे । भगवान ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र भरत महाराज' इस आरे के प्रथम चक्रवर्ती थे ।

४ दुषम सुषमा—यह आरा बयालीस हजार वर्ष कम एक कोडाकोडी सागरोपम का होता है । इसमे मनुष्यो के छहो सहनन और छहो सस्थान होते हैं । अवगाहना बहुत से धनुषो की होती है और आयु जघन्य अतमुहूर्त और उत्कृष्ट एक करोड पूर्व + की होती है । यहा से आयु पूरी करके जीव स्वकृत कर्मो

+ सत्तर लाख करोड वर्ष और छप्पन हजार करोड वर्ष

नुसार चारो गतियो मे जाते हैं और सिद्ध गति भी प्राप्त करते हैं।

वतमान अवसर्पिणी के इस आरे मे तीन वश उत्पन्न हुए–अरिहन्त वश, चक्रवर्ती वश और दशार वश। इसी आरे मे तेईस तीर्थकर, ११ चक्रवर्ती, ६ वलदेव, ६ वासुदेव और ६ प्रति वासुदेव उत्पन्न हुए। दुख विशेष और सुख कम होने से इस आरे को 'दुषमसुषमा' कहते हैं।

(५) दुषमा–पाचव आरे का नाम दुषमा है। यह इक्कीस हजार वष का है। इस आरे मे मनुष्यो के छहो सहनन और छहो सस्थान होते हैं। शरीर की अवगाहना सात हाथ तक की होती है। आयु जघन्य अन्तर्मुहूत और उत्कृष्ट सौ वष झाझेरी होती है। जीव स्वकृत कर्मानुसार चारो गतियो मे जाते हैं। चौथे आरे मे उत्पन्न कोई जीव मुक्ति भी प्राप्त कर सकता है, जैसे–जम्बस्वामी। वतमान पचम आरे के अतिम दिन का तीसरा भाग बीत जाने पर गण (समुदाय जाति) विवाह आदि व्यवहार, पाखण्ड धम, राजधम, अग्नि और अग्नि से होनेवाली रसोई आदि क्रियाएँ, चारित्र धम और गच्छ व्यवहार, इन सभी का विच्छेद हो जायगा। यह आरा दुख प्रधान है। इसलिए इसे 'दुषमा' कहते हैं।

(६) दुषमदुषमा–अवसर्पिणी काल का दुषमा नामक पाचवाँ आरा बीत जाने पर अत्यन्त दुखो से परिपूण 'दुषमदुषमा' नाम का छठा आरा प्रारम्भ होगा। यह आरा इक्कीस हजार वष

(७०५६०००००००००००) का एक पूव होता है।

का है। यह काल मनुष्य और पशुओं के दुःख जनित हाहाकार से व्याप्त होगा। इस आरे के प्रारम्भ में धूलिमय भयकर आंधी चलेगी तथा सवतक वायु बहेगी। दिशाएं धूलि से भरी होगी, इसलिए प्रकाश शून्य होगी। अरस, विरस, क्षार, खात, अग्नि, विद्युत और विषप्रधान मेघ बरसेंगे। प्रलयकालीन पवन और वर्षा के प्रभाव से विविध वनस्पतियाँ और त्रस प्राणी नष्ट हो जायँगे। पहाड़ और नगर, पृथ्वी से मिल जायँगे। पर्वतों में एक वैताढ्य पर्वत स्थिर रहेगा और नदियों में गंगा और सिंधू नदियां रहेगी। काल के अत्यन्त रूक्ष होने से सूर्य खूब तपेगा और चन्द्रमा अति शीतल होगा। गंगा और सिंधू नदियों का पट रथ के चीले जितना अर्थात पहियों के बीच के अन्तर जितना चौड़ा होगा और उनमें रथ की धुरी प्रमाण गहरा पानी होगा। नदियां मच्छ कच्छपादि जलचर जीवों से भरी होगी। भरत और एरवत क्षेत्र का भूमि अंगार, भोभर तथा तप हुए तवे के समान होगी। ताप में अग्नि जैसी होगी तथा धूलि और कीचड़ से भरी होगी। इस कारण प्राणी पृथ्वी पर कष्ट पूर्वक चल फिर सकेंगे। इस आरे के मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना एक हाथ की होगी और आयु सोलह तथा बीस वर्ष की होगी। वे अधिक संतानवाले होंगे। इनके वर्ण गंध, रस, स्पर्श संहनन संस्थान सभी अशुभ होंगे। शरीर सभी प्रकार से बेडौल होगा। अनेक व्याधियाँ घर किये रहेंगी। राग-द्वेष कषाय की मात्रा अधिक होगी। धर्म और श्रद्धा बिल्कुल न रहेगी। वैताढ्य पर्वत में गंगा और सिंधू महानदियों के पूर्व और पश्चिम तट

पर ७२ बिल हैं, वे ही इस काल के मनुष्यो के निवासस्थान होगे। वे लोग सूर्योदय और सूर्यास्त के समय अपने अपने बिलो से निकलेग और गगा और सिंधू महानदियो से मच्छ कच्छपादि पकडकर रेत मे गाड देंगे। शाम के गाड हुए मच्छ कच्छपादि सुबह निकाल कर खायेंग और सुबह के गाडे हुए शाम का निकाल कर खायेंगे। वे व्रत नियम प्रत्याख्यानादि से रहित, मास का आहार करने वाले, सक्लिष्ट परिणामवाले होगे। वे मर कर प्र य नरक और तियच योनि मे उत्पन्न होगे।

उत्सर्पिणी काल

उत्सर्पिणी काल–जिस काल मे जीवो के सहनन और सस्थान क्रमश अधिकाधिक शुभ होते जायँ, आयु और अव गाहना बढती जाय तथा उत्थान, कम बल, वीय, पुरुषाकार और पराक्रम की वद्धि होती जाय, वह 'उत्सर्पिणी काल' है। इस काल मे वण गन्ध, रस और स्पश भी क्रमश शुभ होते जाते हैं। अवसर्पिणी काल से उत्सर्पिणी काल का प्रभाव उलटा है। इसके भी छह आरे है किन्तु उल्टे क्रम से हैं।

सागरोपम–दस कोडाकोडी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। सागरोपम का स्वरूप समझने के लिए, पहले पल्योपम का स्वरूप समझ लेना आवश्यक है।

पल्योपम–एक योजन लम्बे, एक योजन चौडे और एक योजन गहरे गोलाकार पल्य (कूआ) की उपमा से जो काल गिना जाय उसे पल्योपम' कहते हैं।

दस कोडाकोडी पल्योपम का एक सागरोपम होता है।

कोडाकोडी–एक करोड का एक करोड से गुणा करने पर जितनी सख्या आती है, उसे 'कोडाकोडी' कहते है ।

कल्पवक्ष–अकमभूमि मे होने वाले युगलिया के लिए जा उपभोग रूप हो, मनोवाच्छित पदार्थो की पूर्ति करने वाले वक्षा को 'कल्पवृक्ष' कहते हैं । उनके दस भेद हैं–

१ मतगा–शरीर के लिए पौष्टिक रस देने वाले ।

२ भतगा–पात्र आदि देने वाले ।

३ त्रुटितागा–वादित्र देने वाले ।

४ दीपागा–दीपक का काम देने वाले ।

५ ज्योतिरगा–प्रकाश को 'ज्योति' कहते है । सूय के समान प्रकाश देने वाले । अग्नि को भी ज्योति कहते हैं । अग्नि का काम देने वाले कल्पवक्षो को 'ज्योतिरगा' कहते हैं ।

६ चित्रागा–विविध प्रकार के फूल देने वाले ।

७ चित्ररसा–विचित्र एव विविध प्रकार का भोजन देनेवाले ।

८ मण्यगा–आभूषण देने वाले ।

९ गहाकारा–मकान के आकार परिणत हो जाने वाले (मकान की तरह आश्रय देने वाले) ।

१० अणियणा (अनग्रा) वस्त्रादि देने वाले ।

इस प्रकार के कल्पवृक्षो से युगलियो की आवश्यकताए पूरी होती है । अत ये कल्पवक्ष कहलाते है ।

अगुल का नाप

अगुल के तीन भेद है–१ आत्मागुल, २ उत्सेधागुल और ३ प्रमाणागुल ।

१ आत्मागुल–जिस काल मे जो मनुष्य होते हैं,उनके अपने अगुल को 'आत्मागुल' कहते हैं। काल के भेद से मनुष्यो की अवगाहना मे न्यूनाधिकता होने से इस अगुल का परिमाण भी परिवर्तित होता रहता है। जिम समय जो मनुष्य होते हैं, उनके नगर, कानन, उद्यान, वन तालाव, कूप, मकान आदि उन्ही के अगुल से अर्थात आत्मागुल से मापे जाते है।

२ उत्सेधागुल–आठ यवमध्य का एक उत्सेधागुल होता है। अथवा इस अवसर्पिणी काल के पाचवे आरे का आधा भाग अर्थात् साढे दस हजार वष वीत जाने पर, उस समय के मनुष्य के अगुल को उत्सेधागुल कहते हैं। उत्सेधागुल से नरक, तिर्यच, मनुष्य और देवो की अवगाहना मापी जाती है।

३ प्रमाणागुल–यह अगुल सवसे बडा होता है। इसलिए इसे प्रमाणागुल कहते हैं। उत्सेधागुल से प्रमाणागुल हजार गुण बडा होता है। इस अगुल से रत्नप्रभा आदि नरक, भवनपतियो के भवन कल्प (विमान), वषधर पवत द्वीप आदि की लम्बाई, चौडाई उचाई, गहराई और परिधि नापी जाती है। शाश्वत वस्तुओ को नापने के लिए चार हजार कोस का एक योजन माना है। इसका कारण यही है कि शाश्वत वस्तुओ के नापने का योजन प्रमाणागुल से लिया जाता है। प्रमाणागुल उत्सेधागुल से हजार गुणा अधिक होता है। इसलिए इस अपेक्षा से प्रमाणागुल का योजन उत्सेधागुल के योजन से हजार गुणा वडा होता है।

॥ जीव तत्त्व समाप्त ॥

२ अजीव तत्त्व

अजीव-जो चेतना रहित हो, सुख दुख का वेदन नहीं करता हो, पर्याप्ति, प्राण, योग,उपयोग और आठ कर्मों से रहित हो, तथा जड स्वरूप हो, उस 'अजीव' कहते हैं।

अजीव के दो भेद हैं–रूपी अजीव और अरूपी अजीव।

अरूपी अजीव के दस भेद हैं–१ धर्मास्तिकाय, २ धर्मास्तिकाय के देश, ३ धर्मास्तिकाय के प्रदेश, ४ अधर्मास्तिकाय ५ अधर्मास्तिकाय के देश ६ अधर्मास्तिकाय के प्रदेश, ७ आकाशास्तिकाय ८ आकाशास्तिकाय के देश ९ आकाशास्तिकाय के प्रदेश, और १० काल।

रूपी अजी के चार भेद–१ स्कन्ध, २ देश, ३ प्रदेश और ४ परमाणु पुदगल।

सामान्य रूप से अजीव तत्त्व के ये चौदह भेद है।

रूपी–जिसमे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श पाये जाते हों और जो मूर्त्त हो उसे 'रूपी द्रव्य' कहते हैं।

रूपी द्रव्य के दो भेद है–अष्ट स्पर्शी, और चतुस्पर्शी। जिसमे वर्ण, गन्ध, रस और सस्थान के साथ ये आठ स्पर्श हो,–१ खरदरा–कर्कश कठोर २ सुहाला–मृदु कोमल, ३ लघु–हलका, ४ गुरु–भारी, ५ स्निग्ध–चिकना ६ रूक्ष–रूखा, ७ शीत–ठण्डा, ८ उष्ण–गरम। ये पाये जाते हो, उसे 'अष्ट-स्पर्शी' रूपी कहते हैं। जिसमे वर्ण, गन्ध, रस के साथ शीत उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष, ये चार स्पर्श पाये जाते हो,उसे 'चतु-

स्पर्शी' रूपी कहते हैं +।

अरूपी–जिसमे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श न पाये जाते हों, तथा जो अमूर्त हो उसे अरूपी कहते हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल–ये अरूपी हैं।

अजीव के सामान्य रूप से उपर्युक्त चौदह भेद हुए। विशेष रूप मे अजीव तत्त्व के ५६० भेद होते हैं। वे इस प्रकार हैं।

अजीव के दो भेद–रूपी और अरूपी। रूपी अजीव के ५३० भेद हैं।

१ परिमण्डल २ वृत्त ३ त्र्यस्त्र, ४ चतुरस्त्र और ५ आयत, इन पाच सस्थानो के ५ वर्ण २ गन्ध, ५ रस और ८ स्पर्श। पूर्वोक्त पाचो सस्थानो के प्रत्येक के वर्णादि २० से १०० भेद हुए।

काला नीला लाल, पीला और श्वेत–ये पाच वर्ण हैं। प्रत्येक वर्ण मे ५ रस, २ गन्ध ८ स्पर्श और ५ सस्थान–ये बीस-बीस बोल पाये जाते हैं। इस प्रकार पाच वर्णो के (५×२०= १००) सौ भेद होते हैं।

सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध–ये दो गन्ध हैं। प्रत्येक गन्ध मे ५ वर्ण, ५ रस, ८ स्पर्श और ५ सस्थान–यो २३-२३ बोल पाये जाते हैं। इस प्रकार दो गन्धो के ४६ भेद होते हैं।

तिक्त, कटु कषैला, खट्टा और मीठा–इन पाच रसो मे से प्रत्येक मे ५ वर्ण, २ गन्ध, ८ स्पर्श और ५ सस्थान–ये बीस-

---

+ द्विस्पर्शी आदि पुद्गल भी होते हैं किन्तु यहा मुख्य रूप से चतुस्पर्शी और अष्टस्पर्शी भेद ही लिये गये हैं–दोशी

बोल पाये जाते हैं। इस प्रकार पाच रसो के (५×२०=१००) सौ भेद होते हैं।

ककश, मदु हलका, भारी, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष- इन आठ स्पर्शों मे से प्रत्यक स्पश मे ५ वण, ५ रस, २ गध, ६ स्पश और ५ सस्थान-ये २३-२३ बोल पाये जाते हैं। इस प्रकार आठ स्पर्शों के (८×२३=१८४) एक सौ चोरासी भद होते हैं।

इस प्रकार सस्थान के १००, वण के १००, गध के ४६, रस के १०० और स्पश के १८४। ये सब मिलाकर रूपी अजीव के ५३० भेद हाते हैं।

अरूपी अजीव के ३० भेद इस प्रकार हैं-

धर्मास्तिकाय के तीन भेद-स्कध, देश और प्रदेश। अधर्मास्तिकाय के तीन भेद-स्कध देश और प्रदेश। आकाशास्तिकाय के तीन भेद-स्कध, देश और प्रदेश। ये ९ और एक काल-ये दस भेद होते है।

धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल, इन चारो को द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव और गुण-इन पाच की अपेक्षा पहचाना जाता है। इसलिए इन प्रत्यक के पाच पाच भेद हो जाते है। इस प्रकार इन चारो के बीस भेद हाते हैं। उपरोक्त १० और ये २०, कुल मिलाकर अरूपी अजीव के ३० भेद होते हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण, इन पाच का विवेचन पहले दिया जा चुका है।

रूपी अजीव के ५३० और अरूपी अजीव के ३० ये कुल

मिलाकर अजीव तत्त्व के ५६० भेद हाते है ।

॥ अजीव तत्त्व समाप्त ॥

३ पुण्य तत्त्व

पुण्य-जो आत्मा को पवित्र करे, जिसकी प्रकृति शुभ हो, जो उपाजन करने मे कठिन किन्तु भोगते हुए सुखकारी, दु ख पूवक बाधा जाय किन्तु सुखपूवक भोगा जाय, शुभयोग से बँधे शुभ उज्ज्वल पुदगलो का बन्ध हो, जिसका फल मीठा हो उसे 'पुण्य' कहते है। पुण्य, धम मे सहायक तथा पथ्यरूप होता है। पुण्य नौ प्रकार से बाधा जाता है। यथा-

१ अन्न पुण्य-अन्न देने से पुण्य होता है।

२ पाण पुण्य-पानी देने से पुण्य होता है।

३ लयन पुण्य-जगह, स्थान आदि देने से पुण्य होता है।

४ शयन पुण्य-शय्या पाट पाटला, बाजोट आदि देने से पुण्य होता है।

५ वस्त्र पुण्य-वस्त्र देने से पुण्य होना है।

६ मन पुण्य-मन का शुभ रखने से अर्थात दानरूप, शीलरूप, तपरूप भावरूप और दयारूप आदि शुभ मन रखने से पुण्य होता है।

७ वचन पुण्य-मुख से शुभ वचन बोलने से पुण्य होता है।

८ काय पुण्य-शरीर द्वारा दया पालने, सेवा विनय, वैयावच्च करने से पुण्य होता है।

६ नमस्कार पुण्य-अपने से अधिक गुणवान् को नमस्कार

करने से पुण्य होता है।

यह नो प्रकार का पुण्य, सुपात्र के विषय मे महान पुण्य उपाजन करता है और इससे मन्द मन्दतर पात्रों मे परिणामा क अनुसार मन्द मन्दतर पुण्य हाता है।

सातावेदनीय, उच्च गोत्र,मनुष्य गति मनुष्यानुपूर्वी देव गति देवानुपूर्वी, पचेन्द्रिय जाति औदारिक वैक्रिय आहारक, तजस, और कामण-ये पाच शरीर आदारिक शरीर अगोपाग, वक्रिय शरीर अगोपाग, आहारक शरीर अगोपाग वज्रऋषभनाराच सहनन, समचतुरस्र सस्थान शुभ वण, शुभ गध शुभ रस, शुभ स्पर्श, अगुरुलघु पराघात श्वासोच्छवास, आतप उद्योत, शुभ विहायोगति निर्माण, त्रस दशक देवायु मनुष्यायु, तियचायु और तीर्थकर नामकम।

ये पुण्य की बयालीस प्रकृतिया ह। इनके उदय म आने पर ४२ प्रकार से फल भागा जाता है।

१ सातावेदनीय-जिस कम के उदय से जीव सुख का अनु भव करता है।

२ उच्च गात्र-जिस कम के उदय से जीव उच्च कुल में जन्म पाता है।

३ मनुष्य गति-जिस कम के उदय से जीव को मनुष्य की गति मिले।

४ मनुष्यानुपूर्वी-जिस कम के उदय से मनुष्य की आनु पूर्वी मिले।

जसे-इस भव मे जो जीव आगे के लिये मनुष्य गति मे जन्म

लेने का कम बाध चुका है, परन्तु मरणकाल मे वह इस शरीर को छोडकर विग्रहगति द्वारा दूसरी गति मे जाने लगता है, तो मनुष्यानुपूर्वी कम उसे खीच कर मनुष्य गति मे ले जाता है। इसी प्रकार देवानुपूर्वी आदि का स्वरूप समझना चाहिये। आनुपूर्वी नामकम बैल की नाथ के समान है।

५ देवगति–जिससे जीव का देव का भव मिले।

देवानुपूर्वी-जिस कर्म के उदय से जीव को देव की आनुपूर्वी प्राप्त हो।

७ पचेद्रिय जाति–जिस कम के उदय से जीव को स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय–ये पाचो इन्द्रिया प्राप्त हो।

८ औदारिक शरीर–उदार अथात प्रधान अथवा स्थूल पुदगलो से बना हुआ शरीर 'औदारिक' कहलाता है। तीथकर भगवान का शरीर सब श्रेष्ठ एव सब प्रधान पुदगलो से बनता है और सब साधारण का शरीर स्थूल असार पुदगलो से बना हुआ होता है। अथवा हाड मास लोही आदि से बना हुआ शरीर, औदारिक शरीर कहलाता है। मनुष्य, पशु, पक्षी पथ्वी काय आदि का शरीर औदारिक है।

९ वैक्रिय शरीर–जिस कम के उदय मे वैक्रिय शरीर प्राप्त हो। जिस शरीर से विविध प्रकार के आकार बनाने की क्रियाएँ अथवा विशिष्ट क्रियाएँ होती हैं वह वैक्रिय शरीर' कहलाता है। जैसे–एकरूप होकर अनेक रूप धारण करना अनेकरूप होकर एकरूप धारण करना, छोटे शरीर से बडा शरीर बनाना

और बडे से छोटा बनाना, पृथ्वी और आकाश में चलने योग्य शरीर धारण करना, दृश्य, अदश्य रूप बनाना आदि।

१० आहारक शरीर–जिस कम के उदय से आहारक शरीर की प्राप्ति हो उसे 'आहारक नामकम' कहते है।

प्राणी दया के लिए, दूसरे द्वीप मे रहे हुए तीथकर भगवान की ऋद्धि ऐश्वय देखने के लिय तथा अपना सशय निवारणाथ उनसे प्रश्न पूछने के लिए, चौदह पूवधारी मुनिराज अपनी लब्धि से अति विशुद्ध स्फटिक के सदृश एक हाथ का पुतला (चमचक्षु से अदश्य) अपने शरीर मे से निकालते है और उस पुतले को तीथकर भगवान या केवली भगवान के पास भेजते हैं। यदि तीथकर भगवान या केवली भगवान वहा से विहार कर गय हो तो उस एक हाथ के पुतले मे से मुण्ड हाथ का पुतला निकलता है। वह तीथकर भगवान के पास जाकर अपना काय करता है। उसे 'आहारक शरीर' कहते हैं। वे मुनिराज यदि उस लब्धि फोडने की आलोचना करे, ता आराधक हाते है, यदि अलोचना नही करे तो विराधक होते हैं।

११ तैजस शरीर–जिस कम के उदय से तजस शरीर की प्राप्ति हो उसे 'तजस् नामकम' कहते है। किये हुए आहार को पचा कर रस, रक्त बनानेवाला तथा तपोबल से तेजालेश्या निकालनेवाला शरीर 'तैजस् शरीर' कहलाता है।

१२ कामण शरीर–कर्मों से बना हुआ शरीर 'कामण' कहलाता है अथवा जीव के प्रदेशो के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कमपुदगलो को कामण शरीर कहते है। (जिस प्रकार बाग

सा माली, प्रत्येक क्यारी मे पानी पहुचाता है, उसी प्रकार शरीर के प्रत्येक अवयव मे जो रसादि का परिणमन करता है तथा कर्मों का रस परिणमन कराता है, उसे 'कामण शरीर' कहते है) यह शरीर ही सभी कर्मों का बीज है।

तजस शरीर और कामण शरीर–ये दोनो शरीर अनादि काल से जीव के साथ लगे हुए हैं। मोक्ष प्राप्त किये बिना ये जीव से पथक नही होते। जब जीव मरणस्थान को छोडकर, उत्पत्ति स्थान को जाता है, तब ये दोनो शरीर जीव के साथ रहते है।

१२-१४ १५ अग, उपाग और अगोपाग जिन कर्मों से मिलें, उसे 'अगापाग नामकम' कहते है। जानु, भुजा, मस्तक, पीठ आदि 'अग' है और अगुली आदि 'उपाग' है और अगुलियो की पव रेखा आदि अगोपाग है'। य अगोपाग औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर और आहारक शरीर–इन तीन शरीरो के होते है, तजस् और कामण शरीर के नही होते।

१६ वज्रऋषभ नाराच सहनन–यहा वज्र का अथ कील है, ऋषभ का अथ वेप्टन (पट्टी) है और नाराच का अर्थ दोनो ओर से मकट बध है। जिस सहनन मे दोनो ओर से मकट बध द्वारा जुडी हुई दो हड्डियो पर तीसरी पट्टी की आकृति वाली हड्डी का चारो ओर से वेप्टन हो और इन तीनो हड्डियो को भेदने वाली वज्र नामक हड्डी की कील हो उसे 'वज्रऋषभ नाराच-सहनन' कहते हैं। मोक्ष जाने वाले जीवो के यही सहनन होता है।

१७ समचतुरस्र सस्थान–सम का अथ है–समान, चतु का अथ है चार और अस्र का अथ है कोण। पालथी मारकर बैठने पर जिस शरीर के चारो कोण समान हो अथात आसन और कपाल का अन्तर, दोनो जानुओ का अन्तर, बाएँ कन्धे और दाहिने जानु तथा दाहिने कन्धे और बाएँ जानु का अन्तर समान हो, उसे 'समचतुरस्र सस्थान' कहते है। छहो सस्थानो मे यह सस्थान सब श्रेष्ठ है। तीथकर भगवान और देवो के यही सस्थान होता है।

१८ शुभ वण–जिस कम के उदय से जीव के शरीर मे हस आदि की तरह शुक्ल आदि शुभ वण हो, वह 'शुभ वण नाम कम' कहलाता है। श्वेत, लाल, पीला, नीला और काला–ये पाच वण माने गये है। इन्ही पाचो के सयोग से दूसरे रग तैयार होते है। इनमे से श्वेत, लाल और पीला–ये तीन वण शुभ हैं तथा नीला और काला ये दो वण अशुभ हैं।

१९ सुरभि गन्ध–जिस कम के उदय से जीव के शरीर मे कमल और गुलाब के फूल आदि की तरह शुभ गन्ध हो, उसे 'सुरभिगन्ध नामकम' कहते है।

दो प्रकार के गन्ध मे से सुरभिगध शुभ है और दुरभिगध अशुभ है।

२० शुभ रस–जिस कम के उदय से जीव के शरीर मे आम्रफल आदि के समान मधुर आदि शुभ रस हो, उसे 'शुभ रस' नामकम कहते हैं।

तीखा, कडवा, कषैला, खट्टा और मीठा। पाच रस मे से

कपला, खट्टा और मीठा–ये तीन शुभ है और तीखा तथा कडवा रस अशुभ है।

२१ शुभ स्पश–जिस कम के उदय से जीव के शरीर में स्निग्ध आदि शुभ स्पश हो, उसे 'शुभ स्पश' नामकम कहते हैं।

स्पश आठ हैं–कर्कश, मदु गुरु, लघु रूक्ष, स्निग्ध, शीत और उष्ण। इन आठ स्पश मे से मदु, लघु, स्निग्ध और उष्ण–ये चार स्पश शुभ हैं और शेष चार अशुभ है।

२२ अगुरुलघु–जिस कम क उदय से जीव का शरीर न तो लोहे के समान अत्यन्त भारी हो और न अकतूल (आक की रूई) क समान अत्यन्त हलका हो, अपितु मध्यम दर्जे का हो, उस 'अगुरुलघु' नाम कम कहते है।

२३ पराघात–जिस कम के उदय से जीव अन्य वलवानों की दृष्टि मे अजेय समझा जाता हो, उसे 'पराघात' कम कहत है।

२४ श्वासोच्छ्वास–जिस कम के उदय से जीव श्वासोच्छवास ले सके।

२५ आतप–जिस कम के उदय से जीव का शरीर उष्ण न होकर भी उष्ण प्रकाश करे। सूय के मण्डल मे रहने वाले पथ्वीकाय के जीव ऐसे ही हैं। उन्ह आतप नामकम का उदय है। वे स्वय उष्ण न होते हुए भी उष्ण प्रकाश देते ह।

२६ उद्योत–जिस कम के उदय से जीव का शरीर शीतल प्रकाश करने वाला हो। चन्द्रमण्डल, ज्योतिष चक्र, रत्न प्रकाश, प्रकाश करनेवाली ओषधिया और लब्धि से वक्रियरूप धारण

करने वाला शरीर–ये सब 'उदयोत नामकर्म' वाले है ।

२७ शुभविहायागति–जिस कर्म के उदय से जीव हंस, हाथी और वृषभ की चाल के समान चले ।

२८ निर्माण नामकर्म–जिस कर्म के उदय से जीव के अगोपाग नियत स्थान पर ही हो । जैसे–चित्रकार, चित्र के यथा योग्य स्थानो मे अवयव बनाता है, वैसे ही निर्माण नामकर्म भी शरीर के अवयवो को व्यवस्थित करता है ।

जिस कर्म के उदय से जीव को त्रस दशक की प्राप्ति हो उसे 'त्रसदशक नामकर्म' कहते है । वे त्रस दशक प्रकृतिया ये है–त्रस बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यश–ये त्रसदशक' है ।

२९ त्रस–जिस कर्म के उदय से जीव को त्रस का शरीर मिले ।

३० बादर–जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर या शरीर समुदाय छद्मस्थ के दृष्टि गोचर हो सके इतना स्थूल हो ।

३१ पर्याप्त–जिस कर्म के उदय से जीव अपनी पर्याप्तियो से पूर्ण हो ।

३२ प्रत्येक–जिस कर्म के उदय से एक शरीर का स्वामी एक ही जीव हो ।

३३ स्थिर–जिस कर्म के उदय से जीव के दांत, हड्डी आदि अवयव दृढ हो ।

३४ शुभ नाम–जिस कर्म के उदय से नाभि के ऊपर का भाग शुभ हो ।

३५ सुभग-(सौभाग्य) जिस कम के उदय से जीव सभी का प्रेमपात्र हो।

३६ सुस्वर-जिस कम के उदय से जीव का स्वर (आवाज) कोयल की तरह मधुर हो।

३७ आदेय-जिस कर्म के उदय से जीव का वचन लोगो मे आदरणीय हो, लोग जिसकी आज्ञा माने।

३८ यश कीर्ति-जिस कम के उदय से लोगो मे यश और कीर्ति हो उसे 'यश कीर्ति+ नामकम' कहते हैं।

३९ देवायु-जिस कम के उदय से जीव देव योनि मे जाता है।

४० मनुष्यायु-जिस कम के उदय से जीव मनुष्य योनि मे जाता है।

४१ तियचायु-जिस कम के उदय मे जीव तियच योनि मे जाता है।

४२ तीर्थंकर-जिस कम के उदय से जीव चौतीस अतिशया से युक्त होकर त्रिभुवन का पूज्य होता है।

नो प्रकार का पुण्य जीव ने अनन्ती वार किया और तीर्थंकर नामकम और आहरक शरीर तथा आहारक अगोपाग को छोड कर शेष उनतालीस * प्रकार का पुण्य भी अनन्ती वार उदय

+ एक दिशा में फलने वाली प्रशसा कीर्ति' और सभी दिशाओं में फलने वाली प्रशसा को यश कहते ह। अथवा दान और पुण्य से उत्पन्न प्रशसा कीर्ति है और पराक्रम-पुरुषाथ से प्राप्त प्रशसा को यश' कहते ह। वसे ता कीर्ति और यश एक ही है, यह भद अपेक्षा कृत है।

* पूव पुस्तक में इकतालीस लिखा, यह अनुचित है-डोशी।

मे आया और इस जीव ने इसका भोग भी किया कि तु समकित प्राप्त हुए विना जीव का काय सिद्ध नही हुआ । अत जीव को समकित की प्राप्ति के लिये उद्यम करना चाहिये ।

॥ पुण्य तत्त्व समाप्त ॥

४ पाप तत्त्व

चारो गति मे रहे हुए सभी सासारिक जीव, प्रत्येक समय नये कम बाधते रहते ह । उनमे अशुभ अध्यवसायो से जो कम बधते है, वे पाप रूप होते है ।

पाप–जो आत्मा का मलीन करे, जा बाधते समय तो सुख कारी, किंतु भोगते समय दुख कारी, अशुभ योग से सुखपूवक बाधा जाय, दु खपूवक भोगा जाय । पाप अशुभ प्रकृति है जिसका फल कडवा होता है । जो जीव को मैला करे उसे 'पाप' कहते है ।

पाप कम अठारह प्रकार से बाधा जाता है । यथा–

१ प्राणातिपात–प्रमाद पूवक प्राणो का अतिपात करना अर्थात आत्मा से प्राणो को पथक करना–प्राणातिपात (हिंसा) है ।

२ मपावाद–झूठ बालना । जसे–यह कहना कि–आत्मा, पुण्य, पाप, स्वग, नरक आदि नही है । तथा आत्मा सव व्यापी है, ईश्वर जगत का कर्ता है । कटु सत्य कहना जिससे सुनने वाले को दु ख हा–मपावाद है, जैसे–काने को काना कहना, चोर को चोर कहना, कोढी का कोढी कहना आदि ।

३ अदत्तादान–ग्राम, नगर, बन आदि मे रही हुई सचित, अचित, अल्प, बहु, अणु, स्थूल आदि वस्तु, उसके स्वामी की आज्ञा बिना लेना 'अदत्तादान' है।

४ मैथुन–स्त्री पुरुष के सहवास का 'मैथुन' कहते है। देव सम्बधी, मनुष्य सम्बधी और तिर्यंच सम्बधी–यह तीन प्रकार का मैथुन सेवन करना।

५ परिग्रह–अल्प, बहु, अणु, स्थूल, सचित, अचित, आदि समस्त द्रव्यो मे ममत्व रखना।

६ क्रोध–मोहनीय के उदय मे हाने वाला कृत्य अकृत्य के विवेक को हटाने वाला, प्रज्वलन स्वरूप आत्मा के परिणाम का 'क्रोध' कहते हैं। क्रोध वश जीव किसी की बात सहन नहीं करता और बिना विचारे, अपने और पराए के अनिष्ट के लिये जलता रहता है।

७ मान–मोहनीय कम के उदय मे जाति आदि गुणो मे अहकार बुद्धि रूप आत्मा के परिणाम को 'मान' कहते हैं। मान वश जीव मे छोटे बड के प्रति उचित आदरभाव नही रहता। मानी जीव अपने को बडा समझता है और दूसरा को तुच्छ समझता हुआ उनकी अवहेलना करता है। मान (गव) वश वह दूसरो के गुणा को सहन नही कर सकता।

८ माया–मोहनीय कम के उदय से मन, वचन, काया की कुटिलता द्वारा परवचना (दूसरो क साथ ठगाई) कपटाई रूप आत्मा के परिणाम विशेप को 'माया' कहते हैं।

६ लोभ–मोहनीय कम के उदय मे द्रव्यादि विपयक इच्छा,

मूर्च्छा, ममत्वभाव एव तृष्णा अर्थात असतोषरूप आत्मा क परिणाम विशप को लोभ' कहते है ।

१० राग–माया और लोभ जिसमे अप्रकट रूप स विद्यमान हो, ऐसा आसक्तिरूप जीव का परिणाम 'राग' कहलाता है ।

११ द्वेष–क्रोध और मान जिसमे अप्रकट रूप से हो एसा अप्रीतिरूप जीव का परिणाम 'द्वष' है ।

१२ कलह–लडाई झगडा करना ।

१३ अभ्याख्यान–प्रकटरूप से अविद्यमान दोषो का आरोप लगाना (झूठा आल देना) ।

१४ पैशुन्य–पीठ पीछे किसी के दोष प्रकट करना (चाहे उसमे हो या न हो) ।

१५ पर परिवाद–दूसरे की बुराई करना, नि दा करना ।

१६ रति-अरति–अनुकूल विषयो के प्राप्त होने पर मोह नीय कम के उदय से चित्त मे जो आनन्द रूप परिणाम उत्पन्न होता है वह 'रति' है और प्रतिकूल विषयो मे अरुचि–उद्वेग हो वह 'अरति' है ।

१७ मायामृषावाद–माया (कपट) पूर्वक झूठ बोलना माया मृषावाद है। दो दोषो के सयोग से यह पाप स्थानक माना गया है ।

१८ मिथ्यादर्शन शल्य–श्रद्धा का विपरीत होना मिथ्या दर्शन है । जैसे–शरीर मे चुभा हुआ शल्य सदा कष्ट देता है । इसी प्रकार मिथ्यादर्शन भी आत्मा को दुखी बनाये रखता है, इसलिए इसे 'शल्य' कहा है ।

इन अठारह स्थानो से बाधा हुआ पाप बयासी प्रकार मे भोगा जाता है। वे बयासी प्रकृतिया इस प्रकार है-ज्ञानावरणीय की ५, दशनावरणीय की ६, वेदनीय की १, मोहनीय की २६, आयुकम की १, नामकम की ३४, गोत्र कम की १ और अन्त-राय कम की ५। ये सभी ८२ हुईं।

इनके भेद इस प्रकार हैं।

ज्ञानावरणीय कम के पाच भेद हैं–

१ मति ज्ञानावरणीय–मन और पाच इन्द्रियो के सम्बध से जीव को जो ज्ञान होता है उसे 'मतिज्ञान' कहते है। उस ज्ञान का आवरण करने वाले कम का 'मति ज्ञानावरणीय' कहते हैं।

२ श्रुत ज्ञानावरणीय–शास्त्र को द्रव्य श्रुत कहते है और उसके सुनने से जो ज्ञान होता है उस भाव श्रुत कहते है। इन दोना का जो आवरण करता है उस 'श्रुतज्ञानावरणीय' कहते हैं।

३ अवधिज्ञानावरणीय–अतीन्द्रिय (इन्द्रियो की सहायता के बिना) आत्मा को रूपी पदार्था का जो मर्यादित ज्ञान होता है उसे 'अवधिज्ञान' कहते है। उस ज्ञान का जो आवरण करे उसे 'अवधिज्ञानावरणीय' कहते है।

४ मन पर्याय ज्ञानावरणीय–ढाई द्वीप मे रहे हुए सज्ञी पचेन्द्रिय जीवो के मन की बात जिस ज्ञान से जानी जाय उसे मन पर्याय ज्ञान कहते है। उसे आवरण करने वाला 'मन पर्याय ज्ञानावरणीय' कहलाता है।

५ केवल ज्ञानावरणीय–केवल अर्थात प्रतिपूण, जिसके समान

दूसरा कोई ज्ञान नहीं। लोकालोक की सपूण रूपी अरूपी वस्तु को जानने वाला कवलज्ञान कहलाता है। उसका जा आवरण करे उसे 'केवल ज्ञानावरणीय' कहते हैं।

दशनावरणीय की ६ प्रकृतियाँ

१ चक्षु दशनावरणीय–चक्षु (आख) से पदार्थो का जो सामान्य ज्ञान होता है, उसे 'चक्षुदशन' कहते है। उसका आवरण करने वाला चक्षदशनावरणीय' कहलाता है।

२ अचक्षु दशनावरणीय–श्रोत्र, घ्राण, रसना, स्पशन और मन के सम्बध से शब्द, ग ध रस और स्पश का जो सामान्य ज्ञान होता है, उसे 'अचक्षु दशन' कहते हैं। उसका आवरण करने वाला अचक्षु दशनावरणाय' कहलाता है।

३ अवधि दशनावरणीय–इन्द्रियो की सहायता के बिना ही रूपी द्रव्य का जिसमे सामान्य बोध होता है, उसे 'अवधिदशन' कहते ह। उसका आवरण करने वाला 'अवधि दशनावरणीय' है।

४ केवल दशनावरणाय–ससार के सम्पूण पदार्थो का जिससे सामान्य अवबोध हाता है उसे 'केवल दशन' कहते है उसका आवरण करने वाला केवल दशनावरणीय' है।

५ निद्रा–सोया हुआ मनुष्य जरा सी खटखटाहट से या आवाज से जाग जाता है, उस नीद को 'निद्रा' कहते है। जिस कम से ऐसी नीद आवे, उस कम को निद्रा' कहते हैं।

निद्रानिद्रा–जोर म आवाज देने पर या देह हिलाने से जो मनुष्य कठिनाई मे जागता है उसकी नीद को 'निद्रानिद्रा' कहते हैं।

७ प्रचला–खडे खडे या बैठे बैठे जिसको नीद आती है, उस नीद को 'प्रचला' कहते हैं। जिस कम के उदय से ऐसी नीद आवे उस कम का नाम प्रचला' है।

८ प्रचलाप्रचला–चलते फिरते जिस को नीद आती है, उस नीद को 'प्रचलाप्रचला' कहते हैं, जिस कम से ऐसी नीद आवे उस कम को 'प्रचलाप्रचला' कहते हैं।

९ स्त्यानगद्धि–जो दिन मे साचे हुए काम को रात में निद्रावस्था मे कर डालता है उस नीद को 'स्त्यानगद्धि' कहते हैं। जिस कम के उदय से ऐमी नीद आवे उसका नाम 'स्त्यान-गृद्धि' है। जव स्त्यानगद्धि कम का उदय होता है, तव वज्र-ऋषभ नाराच महनन वाले जीव मे वासुदेव का आधा वल आ जाता है। यदि उम समय उम जीव की मत्यु हो जाय और उसने यदि पहले आयु न बाधी हो तो नरक गति मे जाता है।

वेदनीय कम की दा प्रकृतिया मे मे एक 'अमाता वेदनीय' पाप प्रकृति है। जिस कम के उदय से जीव दुख का अनुभव करे उसे 'असाता वदनीय कहते है।

मोहनीय कम की २६ प्रकृतिया–चार कपाय–१ क्रोध, २ मान, ३ माया और ४ लोभ। इन चारा के प्रयेक के चार चार भेद हैं–अनतानुबधी, अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यानावरण और मज्वलन। इम प्रकार कपाय के १६ भेद। नोकपाय के नौ भेद– १ हास्य, २ रति ३ अरति, ४ भय, ५ शोक, ६ जुगुप्सा, ७ स्त्रीवेद, ८ पुरुपवेद और ९ नपुसकवेद। और मिथ्यात्व मोहनीय।

नोकषाय का अथ

१७ हास्य–जिस कम के उदय से विना कारण या कारण वश हँसी आवे उसे 'हास्य मोहनीय' कहते हैं।

१८ रति–जिस कर्म के उदय से अच्छ अच्छे रुचिकर सासारिक पदार्थो में अनुराग हो उसे 'रति मोहनीय' कहते हैं।

१९ अरति–जिस कम के उदय से बुरी चीजो से अरुचि हो उसे 'अरति मोहनीय' कर्म कहते है।

२० भय–जिम कम के उदय से सकारण अथवा अकारण ही मन मे भय उत्पन्न हो उसे 'भय मोहनीय कम कहते हैं।

२१ शोक–जिस कम के उदय से इष्ट वस्तु का वियोग होने पर मन मे शोक उत्पन्न हो उसे 'शोक मोहनीय' कहते है।

२२ जगुप्सा–जिस कम के उदय से दुर्गन्धि या बीभत्स पदार्थों को दखकर घणा उत्पन हो उसे 'जुगुप्सा मोहनीय' कम कहते हैं।

२३ स्त्रीवेद–जिस कम के उदय से स्त्री को पुरुष से रमण करने की अभिलाषा हाती है, उसे 'स्त्रीवेद' कहते है।

२४ पुरुषवेद–जिस कम के उदय से पुरुष को स्त्री के साथ रमण करने की अभिलाषा हाता है उसे 'पुरुषवेद' कहते हैं।

२५ नपुसक वेद–जिस कम के उदय से नपुसक का स्त्री और पुरुष दाना के साथ रमण करने की अभिलाषा होती है, उसे 'नपुसकवेद कहते है।

२६ मिथ्यात्व मोहनीय–जिस कम के उदय से मिथ्यात्व की प्राप्ति हो, उसे मिथ्यात्व मोहनीय' कहते हैं। मिथ्यात्व का

लक्षण इस प्रकार है–

अदेवे देवबुद्धिर्या, गुरु धीर गुरौ च या ।
अधर्मे धम बुद्धिश्च, मिथ्यात्व तन्निगद्यते ॥

अथ–जिसमे देव के गुण न हो, उसे देव मानना, जिसमे गुरु के गुण न हो उसे गुरु मानना और जिसमे धम के लक्षण न हो ऐसे अधम को धम मानना मिथ्यात्व है ।

आयु कम की चार प्रकृतियो मे से एक नरकायु पाप प्रकृति मे है । जिस कम के उदय से जीव को नरक यानि मे जीवित रहता है उसे 'नरकायु' कहते है ।

नामकम की प्रकृतियो मे से ३४ पाप प्रकृतिया हैं । उनका नाम और अथ इस प्रकार है–

१ नरक गति–जिस कम के उदय से जीव नरक मे जाता है उसे 'नरक गति' कहते हैं ।

२ नरकानुपूर्वी–जिस कम से जीव का बरबस नरकगति मे लाया जाता है ।

३ तिर्यंचगति–जिस कम के उदय से जीव तियचयोनि मे जाता है ।

४ तियचानुपूर्वी–दूसरी गति मे जाते हुए जीव को जो बरबस खीचकर तियच गति मे ले जाय ।

५–८ जाति चार–जिस कम के उदय से जीव को एकेन्द्रिय जाति मिले उसे एकेन्द्रिय जाति'नामकम कहते हैं, इसी प्रकार बेइन्द्रिय,तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जाति नामकम समझ लेना चाहिये ।

९ ऋषभ नाराच सहनन–हड्डियो की सन्धि मे दोनो ओर

से मकटबन्ध और उन पर लपेटा हुआ पट्टा हो (लेकिन कील न हो) उसे 'ऋषभ नाराच सहनन' कहते है।

१० नाराच सहनन–दोनो ओर केवल मकटबन्ध हो वह 'नाराच सहनन' है।

११ अद्ध नाराच सहनन–एक ओर मकटबन्ध हो और दूसरी ओर खीला हो, उसे 'अद्ध नाराच सहनन' कहते हैं।

१२ कीलिका सहनन–मकटबन्ध न होकर केवल कीलो से ही हड्डियें जुडी हुई हो।

१३ छेवट्ट (सेवात्त)–खीला न होकर केवल हड्डिये परस्पर जुडी हुई हो।

१४ न्यग्रोध परिमण्डल सस्थान–वटवृक्ष को 'न्यग्रोध' कहते है। उसका ऊपरी भाग जसा अति विस्तार युक्त सुशोभित होता है वसा नीचे का भाग नही होता। उसी प्रकार नाभि के ऊपर का भाग विस्तृत हो और नाभि से नीचे का भाग वैसा न हो, उसे 'न्यग्रोध परिमण्डल सस्थान' कहते है।

१५ सादि सस्थान–जिस सस्थान मे नाभि के नीचे का भाग पूर्ण हो और ऊपर का भाग हीन हो।

१६ कुब्ज सस्थान–जिस शरीर मे हाथ, पर, सिर, गदन आदि अवयव ठीक हो परन्तु छाती पेट, पीठ आदि टेढे हो।

१७ वामन सस्थान–जिस शरीर मे छाती, पीठ, पेट आदि अवयव पूर्ण हो, परन्तु हाथ, पर आदि अवयव छोटे हो।

१८ हुण्डक सस्थान–जिस शरीर के समस्त अवयव बेढब हो।

१६-२२ अशुभ वण–जिन कर्मो से जीव का शरीर अशुभ वण वाला हो, उसे अशुभ वण नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार अशुभ गन्ध, अशुभ रस और अशुभ स्पश नामकम भी है।

२३ अशुभ विहायोगति–जिस कर्म के उदय से जीव ऊट या गधे की चाल जैमा चले।

२४ उपघात नामकम–जिस कम के उदय से जीव अपने ही अवयवो से दु खी हो। जैसे–प्रतिजिन्हा (पडजीभ), गण्डमाला, चोर दात आदि।

२५ स्थावर नामकम–जिस कम के उदय से स्थावर शरीर की प्राप्ति हो।

२६ सूक्ष्म नामकम–जिस कम के उदय से जीव का सूक्ष्म (आख से नही दिखने योग्य) शरीर मिले। निगाद के जीव सूक्ष्म शरीर वाले हाते है।

२७ अपर्याप्त नामकम–जिस कम के उदय से जीव अपनी पयाप्ति पूरी किये विना ही मर जावे।

२८ साधारण नामकम–जिस कम के उदय से अनन्त जीवो को एक शरीर मिले।

२६ अस्थिर नामकम–जिस कम के उदय से जीव के मुँह कान, जीभ हाठ आदि अवयव अस्थिर होते हैं (स्वत हिलते रहते हैं)।

३० अशुभ नामकम–जिस कम के उदय से शरीर के अवयव अशुभ होते हैं।

३१ दुभग नामकम–जिस कम के उदय से जीव, किसी का

प्रीतिपात्र न हो।

३२ दुस्वर नामकर्म-जिस कर्म के उदय से जीव का स्वर सुनने मे बुरा लगे।

३, अनादेय नामकर्म-जिस कर्म के उदय से जीव का वचन लोगो मे माननीय न हो।

३४ अयश कीर्ति नामकर्म-जिस कर्म के उदय से लोक मे अपयश और अपकीर्ति हो।

गोत्रकर्म की दो प्रकृतिया है। उनमे से एक नीच गोत्र पापप्रकृति है।

नीचगोत्र-जिस कर्म के उदय से नीच कुल मे जन्म हो उसे 'नीच गोत्र' कहते है।

अन्तराय कर्म की पाच प्रकृतिया हैं-

जो कर्म आत्मा के वीर्य दान लाभ, भोग और उपभोग रूप शक्तियो का घात करता है उसे 'अन्तराय कर्म' कहते है। यह कर्म भण्डारी के समान है।

१ दानान्तराय-दान की सामग्री तयार है, गुणवान् पात्र आया हुआ है, दाता दान का फल भी जानता है। इस पर भी जिस कर्म के उदय से जीव दान नही कर सकता, उसे 'दानान्तराय कर्म' कहते हैं।

२ लाभान्तराय-योग्य सामग्री के रहते हुए भी जिस कर्म के उदय से अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति नही होती।

३ भोगान्तराय-त्याग प्रत्याख्यान के न होते हुए तथा भोगने की इच्छा रहते हुए भी जिस कर्म के उदय से जीव विद्यमान

स्वाधीन भोग सामग्री का कृपणतावश भोग न कर सके।

जो चीज एक बार भागने मे आवे, वह भाग्य वस्तु है, जैसे—पुष्प फल, अन्न आदि।

४ उपभोगान्तराय—जिस कम के उदय से जीव, त्याग प्रत्याख्यान न होत हुए तथा उपभाग की इच्छा होते हुए भी विद्यमान स्वाधीन उपभोग सामग्री का कृपणतावश उपभोग न कर सके, वह उपभागान्तराय' कम है।

जा चीज बार बार भोगने मे आवे (सतत भोगी जाती रहे) उसे 'उपभोग' कहते है। जसे—वस्त्र, आभूषण आदि।

५ वीर्यान्तराय—शरीर नीरोग हो, तरुण अवस्था हो, बलवान हा, फिर भी जिस कम के उदय से जीव अपनी शक्ति का विकास न कर सके, वह 'वीर्यान्तराय कम' है।

उपरोक्त सभी प्रकृतियो को मिलाने से ८२ हाती है। ये ८२ प्रकृतिया पाप प्रकृतिया है। इन ८२ प्रकृतियो के द्वारा पाप कम भोगा जाता है।

॥ पाप तत्त्व समाप्त ॥

५ आश्रव तत्त्व

आश्रव—जिनके द्वारा जीव रूपी तालाब मे पुण्य पाप रूपी जल आता रहता है, उस आगमन को 'आश्रव' कहते है। आश्रव के पाच भेद है—

१ मिथ्यात्व सेवे सो आश्रव है। मिथ्यात्व के पाच भेद हैं—

आभिग्रहिक मिथ्यात्व-तत्त्व की परीक्षा किये बिना ही

पक्षपातपूवक एक सिद्धात का आग्रह करना और अय पक्ष का खण्डन करना । १ ।

अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व–गुण दोष की परीक्षा किये बिना ही सभी पक्षो को वरावर समझना । २ ।

आभिनिवेशिक मिथ्यात्व–अपने पक्ष को असत्य मानते हुए भी उसकी स्थापना के लिए दुराग्रह करना । ३ ।

साशयिक मिथ्यात्व–देव, इस स्वरूप वाला होगा या अय स्वरूप वाला ? इसी प्रकार गुरु और धम तथा जीवादि तत्त्व के स्वरूप के विषय मे स देहशील बने रहना । ४ ।

अनाभोगिक मिथ्यात्व–विचार शू य एकेद्रियादि असज्ञी जीवो को तथा ज्ञान विकल जीवो को जो मिथ्यात्व होता है, वह 'अनाभोगिक मिथ्यात्व' कहा जाता है । ५ ।

मोहवश तत्त्वाथ मे श्रद्धा न होना या विपरित श्रद्धा होना मिथ्यात्व है ।

२ अविरति–प्राणातिपात आदि पाप से निवत्त न होना ।

३ प्रमाद–शुभ काय मे उद्यम न करना 'प्रमाद' कहलाता है । अथवा सम्यगज्ञान, सम्यगदशन और सम्यगचारित्र रूप मोक्षमाग के प्रति उद्यम न करना 'प्रमाद' कहलाता है ।

४ कषाय–जा शुद्ध स्वरूप वाली आत्मा को कलुषित करती है, उसे 'कषाय' कहते हैं । अथवा कष अर्थात कम या ससार की प्राप्ति या वद्धि जिससे हो वह 'कषाय' है ।

५ याग–मन, वचन, काया की शुभाशुभ + प्रवृत्ति को

+ व्यवहार से शुभ योग को सवर माना गया है ।

'योग' कहते है। अशुभ योग आश्रव है।

प्रकारांतर से आश्रव के बीस भेद भी होते हैं। यथा–

१ मिथ्यात्व का सेवन करना।
२ अव्रत–पाप प्रवृत्ति का त्याग प्रच्चक्खाण नही करना।
३ प्रमाद–पाच प्रमाद का सेवन।
४ कषाय–पच्चीस कषाय सेवन।
५ अशुभ योग–अशुभ योग प्रवर्तावे।
६ प्राणातिपात–जीवो की हिंसा करे।
७ मषावाद–झूठ बाले।
८ अदत्तादान–चारी करे।
९ मैथुन–कुशील सेवे।
१० परिग्रह–धन, धान्य, वस्त्र, भूमि आदि रखे।
११ श्रोत्रेन्द्रिय वश मे न रखे।
१२ चक्षुइन्द्रिय वश मे न रखे।
१३ घ्राणेन्द्रिय वश मे न रखे।
१४ रसनेन्द्रिय वश मे न रखे।
१५ स्पर्शनेन्द्रिय वश मे न रखे।
१६ मन वश मे न रखे।
१७ वचन वश मे न रखे।
१८ काया वश मे न रखे।
१९ भण्ड–उपकरण अयतना से लेवे और अयतना से रखे।
२० सूई कुशाग्र मात्र अयतना से लेवे और अयतना से रखे।

अन्य प्रकार से आश्रव के ४२ भेद भी होते हैं। यथा,–

५ पांच इन्द्रियों के विषय, चार कषाय, तीन अशुभ योग, पच्चीस क्रियाएँ, पांच अव्रत (हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह) ये बयालीस भेद भी होते हैं। पच्चीस क्रियाओं के नाम इस प्रकार हैं–

१ कायिकी–असावधानी पूर्वक शरीर के हलन चलन आदि से जो क्रिया लगती है।

२ आधिकरणिकी–जिस क्रिया से जीव नरक में जाने का अधिकारी बनता है, उसे 'अधिकरण' कहते हैं। अथवा तलवार आदि घातक शस्त्रों को अधिकरण कहते हैं, उनको बनाने और संग्रह करने की प्रवृत्ति।

३ प्राद्वेषिकी–जीव या अजीव पर द्वेष करने से जो क्रिया लगती है।

४ पारितापनिकी–दूसरे जीवों को पीड़ा पहुंचाने से तथा अपने ही हाथ से अपना सिर छाती आदि को पीटने से जो क्रिया लगती है।

५ प्राणातिपातिकी–दूसरे प्राणियों के प्राणों का विनाश करने से तथा आत्मघात करने से लगनेवाली क्रिया।

६ आरम्भिकी–खेती घर आदि के कार्य में हल कुदाल आदि चलाने से अनेक जीवों का विनाश होता है उससे जो क्रिया लगती है।

७ पारिग्रहिकी–दास दासी, पशु आदि जीवों तथा धन, वस्त्र आभूषण घर आदि अजीव पदार्थों का संग्रह करने से एवं उस पर ममत्व करने से जो क्रिया लगती है।

८ मायाप्रत्ययिकी—झूठे लेख आदि द्वारा दूसरो को ठगने मे जो क्रिया लगती है।

९ मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी—वीतराग भगवान के वचनो से विपरीत श्रद्धान तथा अश्रद्धान को 'मिथ्यात्व' कहते हैं। उसमे लगने वाली क्रिया को 'मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया' कहते है।

१० अप्रत्याख्यानिकी—त्याग पच्चक्खाण न करने मे जो क्रिया लगती है।

११ दृष्टिकी—रागद्वेष मे कलुषित चित्तपूर्वक किसी जीव या अजीव पदार्थ को देखने मे जो क्रिया लगती है।

१२ स्पृष्टिकी—रागादि से कलुषित चित्तपूर्वक स्त्री आदि के अगो का स्पर्शन करने मे जो क्रिया लगती है। अथवा मलिन भावना से जो प्रश्न किया जाता है, उसे 'स्पृष्टिकी क्रिया' कहते हैं।

१३ प्रातीत्यिकी (पाडुच्चिया)—दूसरो के वैभव (हाथी, घोडे आभूषण आदि) देख कर राग द्वेष करने से।

१४ सामन्तोपनिपातिकी—अपने वैभव की प्रशसा सुन कर प्रसन्न होने से अथवा घी तेल आदि के पात्र खुले रखने से उसमे सपातिम जीव गिर कर विनाश को प्राप्त होते हैं, इसमे जो क्रिया लगती है।

१५ नैशस्त्रिकी—राजा आदि की आज्ञा से यन्त्रो द्वारा कुएँ, तालाव आदि से पानी निकाल कर बाहर फेकने मे, क्षेपणी (गोफण) आदि द्वारा पत्थर आदि फेंकने मे, स्वार्थवश योग्य शिष्य को या पुत्र को बाहर निकाल देने से शुद्ध एषणीय भिक्षा होने

पर भी निष्कारण उसे परटा देन से जा क्रिया लगती है।

१६ स्वहस्तिकी–हिरण, खरगोश आदि जानवरा का मारन मे या मरवाने स, किसी जीव का अपने हाथ आदि द्वारा ताडन करन से जा क्रिया लगती है।

१७ आनापनिकी–जीव अथवा अजीव म सबधित आज्ञा दन से अथवा दूसरे के द्वारा सजीव निर्जीव वस्तु मँगवान स जा क्रिया लगता है।

१८ वैदारणिकी–जीव और अजीव पदार्थो को चीरन फाडन स अथवा वरी एव नकली वस्तु का असली तथा अच्छा बतलान से जा क्रिया लगती है।

१६ अनाभोगिकी–बेपरवाही से चीजो को उठाने रखने स एव अनुपयागपूवक चलने फिरने से जो क्रिया लगती है।

२० अनवकाक्षाप्रत्ययिकी–इस लोक और परलोक की पर वाह न करते हुए दोनो लोक विरोधी हिंसा, झूठ आदि तथा आत्तध्यान रौद्रध्यान करने से लगने वाली क्रिया।

२१ प्रयोगिकी–आत्तध्यान रौद्रध्यान करना तीथकरो से निन्दित मावद्य वचन बोलना तथा प्रमादपूवक जाना आना, हाथ पैर फलाना सकोचना आदि से तथा मन वचन काया के व्यापार से लगने वाली क्रिया।

२२ सामुदायिकी–जिस पाप काय के द्वारा समुदाय रूप मे आठा कर्मो का बधन हो तथा सामूहिक रूप से अनेक जीवो क एक साथ कम बध हो।

२३ प्रेमप्रत्यया–खुद प्रेम करने से तथा दूसरे को प्रेम उत्पन

हो ऐसे माया तथा लोभपूवक व्यवहार करने से होनेवाली ।

२४ द्वेष प्रत्यया–खुद क्रोध करने से अथवा दूसरे को क्रोध उत्पन्न कराने से या अभिमान करने से जो क्रिया लगती है ।

२५ ईर्यापथिकी–उपशात मोह, क्षीणमोह और सयोगी केवली–इन ग्यारहवे बारहवे और तेरहवे गुणस्थानो मे रहे हुए वीतराग महामुनि को केवल योग के कारण से जो सातावेदनीय कम बधता है, उसे 'इर्यापथिकी क्रिया' कहते हैं । यह क्रिया पहले समय मे बँधती है, दूसरे समय मे वेदी जाती है और तीसरे समय मे उसकी निजरा हो जाती है ।

आश्रव के ५७ भेद भी होते ह । वे इस प्रकार है–५ मिथ्या त्व, १२ अव्रत, २५ कपाय और १५ योग ।

पाच मिथ्यात्व ये है–आभिग्रहिक अनाभिग्रहिक, आभि निवेशिक, साशयिक और अनाभोगिक ।

बारह अव्रत–पाच इन्द्रियो तथा मन को वश मे न रखने से और छह काया की दया अनुकम्पा न करन से तथा व्रत पच्च-क्खाण न करने से आश्रव होता है ।

पच्चीस कपाय- क्रोध, मान, माया और लोभ–इन चार के अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और सज्वलन के भेद से सोलह भेद होते है । हास्य, रति अरति, भय, शोक जुगुप्सा, स्त्रीवेद पुरुपवेद और नपुमकवेद–ये नौ 'नोकपाय' कहलाते है ।

योग पन्द्रह–मन, वचन काया के व्यापार को योग' कहते है । इनमे मन क चार वचन के चार और काया के सात इस प्रकार कुल पन्द्रह भेद हो जाते हैं ।

॥ आश्रव तत्त्व समाप्त ॥

६ संवर तत्त्व

संवर-आश्रव की रोक को 'संवर' कहते हैं। जीव रूपी तालाब मे आश्रव रूपी नालो से कर्म रूपी पानी आवे, उसे संवर रूपी पाल द्वारा रोकना 'संवर' कहलाता है।

संवर के दो भेद है–द्रव्य संवर और भाव संवर। आते हुए नवीन कर्मों को रोकने वाले आत्मा के परिणाम को 'भाव संवर' कहते है और कर्म पुद्गल की रुकावट का 'द्रव्य संवर' कहते हैं। इसके सामान्य रूप से बीस भेद होते है–

१ समकित को धारण करना।

२ व्रत पच्चक्खाण करना।

३ प्रमाद नही करे।

४ कषाय नही करे।

५ शुभ योग प्रवर्तावे।

६ अप्राणातिपात–जीव की हिंसा नही करे।

७ अमृषावाद–झूठ नही बोले।

८ अदत्तादान का त्याग–चोरी नहीं करे।

९ मैथुन त्याग–कुशील नहीं सेवे।

१० अपरिग्रह–ममता नही रखे।

११–१५ श्रोत्रेंद्रिय चक्षुरिंद्रिय, घ्राणेंद्रिय रसनेंद्रिय और स्पर्शेन्द्रिय इन पाच इन्द्रियो को वश मे करे।

१६–१७–१८ मन, वचन और काया को वश मे रखे।

१९ भण्ड उपकरण यतना से लेवे, यतना से रखे।

१० सूई कुशाग्र मात्र यतना से लेवे, यतना से रखे।

प्रकारान्तर से सवर के ५७ भद भी होते हैं। वे इस प्रकार है–

५ समिति, ३ गुप्ति का पालन करना २२ परीपहो को जीतना, १० यति धर्म, १२ भावना और ५ चरित्र का पालन करना। मवर के ये ५७ भद होते है। अब इनका प्रत्यक का अथ बतलाया जाता हे।

ममिति–आत्मा की यतनापूवक सम्यक प्रवत्ति को 'समिति' कहत हैं। ममिति के पाच भद और अथ इस प्रकार है–

१ ईया समिति–ज्ञान दशन और चारित्र के निमित्त, आगमोक्त काल मे युगपरिमाण भूमि को एकाग्र चित्त से देखते हुए यतनापूवक गमनागमन करना।

२ भाषा समिति–आवश्यकता होने पर सत्य, हित, मित निर्दोष और असदिग्ध भाषा बोलना।

३ एपणा ममिति–गवेषण, ग्रहण और ग्रास सम्बन्धी एपणा के दोषा से रहित आहार पानी आदि ग्रहण करना।

४ आदान भण्ड मात्र निक्षेपणा समिति–आसन, शय्या, सम्स्तारक, वस्त्र, पात्र आदि उपकरणो का उपयोगपूवक देख कर और पूज कर उठाना और रखना।

५ उच्चार प्रस्रवण खेल सिंघाण जल्ल पारस्थापनिका समिति–स्थण्डिल के दोषो को वजते हुए, परिठवने योग्य लघु-नीत (मूत्र), बडीनीत (मल) थूक, कफ, नाक का मैल आदि निर्जीव स्थान मे यतनापूवक परिठवना। इसे 'परिस्थापनिका समिति' भी कहते हैं।

गुप्ति–मन वचन और काया की अशुभ प्रवत्तिया को रोकना और शुभ प्रवृत्ति करना 'गुप्ति' कहलाता है। गुप्ति के तीन भेद हैं–

१ मन गुप्ति–आत्तध्यान, रौद्रध्यान, सरम्भ, समारम्भ और आरम्भ सम्ब धी सकल्प न करना, परलोक मे हितकारी धम ध्यान सम्ब धी चि तन करना, मध्यस्थ भाव रखना, शुभ, अशुभ योगो को रोक कर याग निराध अवस्था मे हानवाला अन्तरात्मा की अवस्था प्राप्त करना 'मन गुप्ति' है।

२ वचन गुप्ति–वचन के अशुभ व्यापार अर्थात सरम्भ समारम्भ और आरम्भ सम्ब धी वचन का त्याग करना, विकथा न करना और मौन रहना 'वचन गुप्ति' है।

३ काय गुप्ति–खडा होना, बैठना, उठना सोना आदि कायिक प्रवत्ति न करना, यतनापूवक काया की प्रवत्ति करना एव अशुभ प्रवत्ति का त्याग करना 'काय गुप्ति' है।

परीपह बाईस है वे इस प्रकार है।

१ क्षुधा परीपह–भूख का परीपह। साधु की मर्यादानुसार एपणीय आहार जब तक न मिले, तब तक ग्रहण न करके भूख सहन करना।

२ पिपासा परीपह–जब तक निर्दोप अचित्त जल न मिले, तब तक प्यास सहन करना।

३ शीत परीपह–ठण्ड का परीपह–कितनी भी कडी ठण्ड क्यो न पडती हो तो भी अपने पास मर्यादित और परिमित वस्त्र हो उन्ही से अपना निर्वाह करना, अकल्पनीय वस्त्र तथा अग्नि

काय का आरम्भ करने कराने की मन से भी इच्छा न करना और समभावपूर्वक शीत को सहन करना।

४ उष्ण परीषह–अत्यन्त गर्मी पडती हो, तो भी स्नान की इच्छा न करना, छाता धारण न करना, पखा एव वस्त्रादि से हवा न करना और गर्मी को समभावपूर्वक सहन करना।

५ दश मशक परीषह–डास, मच्छर, खटमल आदि के काटने पर जो वेदना होती है उसे समभावपूर्वक सहन करना, वेदना के भय से उस स्थान को छोड कर दूसरे स्थान पर जाने की इच्छा न करना उनको भगाने के लिए धूए आदि का प्रयोग भी न करना और न किसी से कराना।

६ अचेल परीषह–आगमोक्त साधु की मर्यादानुसार जितने वस्त्र रखने की आज्ञा है, उतने ही वस्त्र रखना, बहुमूल्य वस्त्र न रखना, जो कुछ साधारण या पुराने वस्त्र हो, उनमे सतोष करना।

७ अरति परीषह–मन मे अरति अर्थात उदासी से होने वाला कष्ट। स्वीकृत सयम मार्ग मे कठिनाइया आने पर उसमे मन न लगे और उसके प्रति अरति उत्पन्न हो, तो धैर्यपूर्वक उसमे मन लगाते हुए अरति को दूर करना।

८ स्त्री परीषह–स्त्रियो के अग, उपाग, आकृति, हास्य, कटाक्ष आदि पर ध्यान न देना विकार दृष्टि से उनकी ओर न देखना, ब्रह्मचर्य मे दृढ रहना यह स्त्री+ परीषह है (यह परीषह अनुकूल परीषह है)।

+ इसी प्रकार स्त्रियों के लिए 'पुरुष परीषह' समझना चाहिये।

६ चर्या परीपह–वहता हुआ जल आर विहार करता हुआ साधु स्वच्छ एव निमल रहता है। इसलिए साधु का विशप कारण के बिना किसी एक स्थान पर मयादा से अधिक नही ठहरना चाहिए। धम का उपदेश देते हुए उसे अप्रतिवद्ध विहार करना चाहिए। विहार के परिश्रम का एव विहार मे हानवाल कष्ट का 'चर्या परीपह' कहते है। इसे समभाव से सहन करना चाहिये।

१० निपद्या परीपह–श्मशान, शू य घर, सिंह की गुफा आदि स्थानो मे ध्यान करने के समय विविध उपसग हाने पर तथा स्त्री पशु पडक रहित स्थान मे, कामलोलुप स्त्रियो का अन कूल उपसग हाने पर एव हिंमक प्राणियो का प्रतिकूल उपसग होने पर, समभावपूवक सहन करना, कि तु निपिद्ध चेष्टा न करना निपद्या परीपह' है।

११ शय्या परापह–साने के लिय ऊची नीची कठार आदि भूमि का याग मिलने पर तथा बिछाने के लिए अल्प वस्त्र होन से नीद मे बाधा पहुँचती हा, तो भी मन मे उद्वग न लाना– शय्या परीपह' है।

१२ आक्रोश परीपह–कोई गाली दे या कटु वचन कहे तो उसको समभावपूवक सहन करना।

१३ वध परीषह–कोई दुष्ट मारे, पीटे या जान से मारडाले तो भी उस पर क्र ध न करते हुए समभावपूवक सहन करना।

१४ याचना परीपह–गहस्थ के द्वारा सामने लाया हुआ आहार, पानी, वस्त्र, पात्रादि न लेते हुए स्वय भिक्षा माग कर

सयम-यात्रा का निर्वाह करना, मागने मे कोई अपमान करे, तो वुरा न मानना और भिक्षा मागने मे लज्जा न करना 'याचना परीपह' है ।

१५ अलाभ परीपह–आगमोक्त मर्यादानुसार गोचरी के लिए जाने पर निर्दोप आहार न मिले तथा जिस वस्तु की आव श्यकता है, वह दाता के पास मौजूद होते हुए भी दाता नही दे, तो अपने लाभान्तराय कर्म का उदय समझ कर समभावपूर्वक सहना ।

१६ रोग परीपह–शरीर मे किसी प्रकार का रोग–व्याधि होने पर जिनकल्पी साधु को चिकित्सा कराना नही कल्पता है और स्थविरकल्पी साधु को शास्त्रोक्त विधि मे निरवद्य चिकित्सा कराना कल्पता है । रोगादि आने पर आर्त्तध्यान नही करे । अपने किये हुए कर्मो का फल समझ कर वेदना को समभावपूर्वक सहन करना ।

१७ तणस्पर्श परीपह–रोग पीडित अवस्था मे या वृद्धावस्था मे तथा तपश्चर्या आदि कारण विशेष से दर्भ (डाभ) आदि तणो का बिछौना लगा कर साधु को सोना पडे और कठोर तणो के स्पर्श से वेदना होवे या खाज आदि चले, तो उससे उद्विग्न चित्त न हो किन्तु उसे समभावपूर्वक सहन करना 'तणस्पर्श' परीपह है । अथवा–बिछाने के लिए कुछ न होने पर तिनकों पर सोते समय पैर मे तण आदि के चुभ जाने से होनेवाले कष्ट को समभावपूर्वक सहन करना ।

१८ जल्ल परीपह (मल परीपह)–शरीर और वस्त्र आदि

मे चाहे जितना मैल संचित हो जाय तो मन मे खेदित न होना तथा स्नान की इच्छा नही करना।

१९ सत्कार पुरस्कार परीषह–लोकसमुदाय द्वारा तथा राजा महाराजाओ की ओर से स्तुति नमस्कार एव आदर सत्कार होने पर अपने मन मे अभिमान न लाना और आदर सत्कार न पाने से मन मे खेदित न होना (यह अनुकूल परीषह है)।

२० प्रज्ञा परीषह–प्रखर विद्वत्ता होने पर भी अभिमान न करना तथा अल्प ज्ञान होने पर भी शोक न करना, किन्तु ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा रखना।

२१ अज्ञान परीषह–बहुत परिश्रम करने पर भी ज्ञान न बढे, तो खिन्न न होना, किन्तु ज्ञानावरणीय कर्म का उदय समझ कर अपने चित्त को शान्त रखना।

२२ सम्यक्त्व परीषह–अनेक कष्ट, उपसर्ग आने पर भी जिनेश्वर भाषित धर्म से विचलित न होना। शास्त्रीय सूक्ष्म अर्थ समझ मे न आवे तो उदासीन होकर विपरीत भाव न लाना तथा अन्य मतावलम्बियो के चमत्कार एव आडम्बर देख कर मोहित न होना।

श्रमणधर्म के दस भेद इस प्रकार है–

१ क्षमा–क्रोध पर विजय प्राप्त करना। क्रोध का कारण उपस्थित होने पर भी शान्ति रखना।

२ मार्दव–मान का त्याग करना। जाति, कुल, रूप, ऐश्वर्य, तप, ज्ञान, लाभ और बल–इन आठो मे से किसी का मद न करना।

३ आजव–कपट रहित होना। माया, दम्भ, ठगी आदि का सवथा त्याग करना, सरल होना।

४ मुक्ति–लोभ पर विजय प्राप्त करना, पौदगलिक, वस्तुओ पर आसक्ति न रखना।

५ तप–'इच्छा निरोधस्तप' इच्छा को रोकना और कष्ट सहन करना।

६ सयम–मन, वचन, काया की प्रवत्ति पर अकुश रखना, उनकी अशुभ प्रवत्ति न होने देना। पाचो इद्रियो का दमन, चारो कपायो पर विजय, प्रणातिपान आदि पाच पापो से निवत्त होना। इस प्रकार सयम १७ प्रकार का है।

७ सत्य–सभी जीवो के लिए सुखकारी, हित, मित, सत्य, निर्दोष वचन बोलना।

८ शौच–किसी भी प्राणी को कष्ट न हो–एसा बर्ताव करना, मन वचन और काया के व्यहार को पवित्र रखना।

९ अकिंचनत्व–किसी वस्तु पर मूच्छा न रखना, परिग्रह का त्याग करना।

१० ब्रह्मचय–नवबाड सहित पूण ब्रह्मचय का पालन करना।

बारह भावना इस प्रकार है,–

१ अनित्य भावना २ अशरण भावना ३ समार भावना ४ एकत्व भावना ५ अयत्व भावना ६ अशुचि भावना ७ आश्रव भावना ८ सवर भावना ९ निजरा भावना १० लोक भावना ११ बोधि दुलभ भावना १२ धम भावना।

१ अनित्य भावना–ससार अनित्य है। यहा सभी वस्तुएँ

परिवतनशील एव नश्वर हैं। कोई भी वस्तु शाश्वत दिखाई नही देती। इस प्रकार धन, यौवन, कुटुम्ब, शरीर आदि ससार के सभी पदाथ अनित्य हैं। जो सयोग हैं वे वियोग के लिए हैं –ऐसा विचार करना 'अनित्य भावना' है। अनित्य भावना भरत चक्रवर्ती ने भाइ थी।

२ अशरण भावना–जन्म, जरा, मरण, व्याधि, प्रिय वियोग, अप्रिय सयोग, दारिद्रच दौर्भाग्य आदि क्लेशो मे पडे हुए प्राणी का रक्षक, वीतराग भाषित धम के सिवाय दूसरा कोइ नही है। ऐसा चिन्तन करना 'अशरण भावना'है। अशरण भावना अनाथी मुनि ने भाइ थी।

३ ससार भावना–इस ससार मे जीव अनादि काल से जन्म मरण आदि विविध दुखो को सह रहा है। इस प्रकार ससार की अवस्था का विचार करना 'ससार भावना' है। ससार भावना भगवान मल्लिनाथ ने भाइ थी।

४ एकत्व भावना–यह आत्मा अकेला उत्पन्न होता है और अकेला मरता है। कर्मो का सचय भी यह अकेला करता है और उन्हे भोगता भी अकेला ही है। स्वजन मित्र आदि कोई भी व्याधि, जरा और मत्यु से उत्पन्न होने वाले दुख दूर नही कर सकते। ऐसा निरन्तर विचार करना 'एकत्व भावना' है। एकत्व भावना नमिराजर्षि ने भाई थी।

५ अन्यत्व भावना–मैं कौन हू ? माता पिता आदि मेरे कौन हैं ? इनका सम्बन्ध मेरे साथ कसे हुआ ? इसी प्रकार हाथी, घोड, महल, मकान, उद्यान, वाटिका तथा अन्य सुख ऐश्वय की

सामग्री मुझे कैसे मिली ? इस प्रकार का चिन्तन इस भावना का विषय है। इसी प्रकार इस शरीर पर भी ममता न करनी चाहिए। यह अन्यत्व भावना है। यह अन्यत्व भावना मृगापुत्रजी ने भाई थी।

६ अशुचि भावना—यह शरीर, रज और वीर्य जैसे घृणित पदार्थों के संयोग से बना है। माता के गर्भ में अशुचि पदार्थों के आहार के द्वारा इसकी वृद्धि हुई है। उत्तम स्वादिष्ट और रसीले पदार्थों का आहार भी इस शरीर मे जाकर अशुचि रूप से परिणत होता है। इस प्रकार इस शरीर की अशुचिता का विचार करना 'अशुचि भावना' है। अशुचि भावना सनत्कुमार चक्रवर्ती ने भाई थी।

७ आश्रव भावना—मन वचन और काया के शुभाशुभ व्यापार द्वारा जीव जो शुभाशुभ कर्म ग्रहण करते है, उसे 'आश्रव' कहते हैं। जिस प्रकार चारो ओर से आते हुए नदी, नालों और झरनो द्वारा तालाब भर जाता है इसी प्रकार आश्रव द्वारा आत्मा मे कर्म रूपी जल आता है और इस कर्म से आत्मा मलीन हो जाता है। इस प्रकार आश्रव भावना का चिन्तन करने से जीव अव्रत आदि का कुपरिणाम समझ लेता है, और इनका त्याग कर व्रत ग्रहण करता है इन्द्रिय और कषायो का दमन करता है, योग का निरोध करता है और क्रियाओ से निवृत्त होने का प्रयत्न करता है। आश्रव भावना समुद्रपाल मुनि ने भाई थी।

८ संवर भावना—जिस से कर्मों का आना रुक जाता है वह

'सवर' है। सवर द्वारा नये कर्मो का आगमन रुक जाता है और आत्मा निर्विघ्न रूप से मुक्ति की ओर बढता रहता है, एव अत मे अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार सवर भावना का चिन्तन करने वाला आत्मा सवर क्रियाओ मे रुचि रखने लगता है और सवर क्रियाओ का आचरण करता हुआ सिद्धि पद का अधिकारी होता है। सवर भावना हरिकेशी मुनि ने भाई थी।

६ निजरा भावना–सवर भावना द्वारा जीव नवीन कर्मो के आगमन को राकने वाली क्रियाओ का चिन्तन करता है, परतु जो कम आत्मा के साथ लगे हुए है, उन्ह कसे नष्ट किया जाय, यह चितन निजरा भावना द्वारा किया जाता है। ससार की हेतुभूत कम सन्तति का क्षय करना 'निजरा' है। निजरा भावना का चिन्तन अजुन अनगार ने किया था।

१० लोक भावना–लोक क सस्थान का विचार करना 'लोक भावना' है। कमर पर दोनो हाथ रखकर और दोना परो को फला कर खडे हुए पुरुप की आकृति के समान यह लाक है। जिस मे धर्मास्तिकाय आदि छहा द्रव्य भरे हुए हैं। इस प्रकार लाक भावना का चितन करने से तत्त्वज्ञान की विशुद्धि हाती है और मन अन्य बाह्य विपयो से हट कर स्थिर हा जाता है। मानसिक स्थिरता द्वारा अनायास ही आध्यात्मिक सुखा की प्राप्ति होती है। लाक भावना शिवराजर्षि ने भाई थी।

११ बोधिदुलभ भावना–बाधि का अथ है ज्ञान'। बोधि का अथ 'सम्यक्त्व भी किया जाता है। यही बोधि शब्द का

अथ 'रत्नत्रय' भी मिलता है। बोधि का अर्थ धर्मसामग्री की प्राप्ति' भी किया जाता है। परन्तु यहा ज्ञानरूपी आन्तरिक प्रकाश की ही प्रधानता है। इस प्रकार की भावना करने से जीव रत्नत्रय रूप मोक्ष मे अग्रसर बन कर धीरे धीरे अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता जाता है। 'बोधि दुर्लभ भावना' भगवान् ऋषभदेव के ९८ पुत्रो ने भाई थी।

१२ धर्म भावना—वस्तु के स्वभाव को 'धर्म' कहते हैं। क्षमा आदि दस विध धर्म को भी धर्म कहते हैं। जीवो की रक्षा करना धर्म है और सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र रूप रत्नत्रय धर्म है। इसी प्रकार दान, शील, तप और भाव रूप भी धर्म कहा गया। जिन भगवान से कहा हुआ उक्त स्वरूप वाला धर्म सत्य है, और प्राणियो के लिए परम हितकारी है। इस प्रकार धर्म की भावना से यह आत्मा धर्म से च्युत नहीं होता और धर्मानुष्ठान मे तत्पर रहता है। धर्मभावना धर्मरुचि अनगार ने भाई थी।

इन बारह भावनाओ पर कविवर भूधरदासजी ने जो भाव पूर्ण दोहे बनाये हैं। वे इस प्रकार हैं—

१ अनित्य—राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सब को एक दिन, अपनी अपनी बार॥
२ अशरण—दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरती बिरिया जीव को, कोई न राखणहार॥
३ ससार—दाम बिना निर्धन दुखी तृष्णा वश धनवान।
कहु न सुख ससार मे, सब जग देख्यो छान॥

४ एकत्व–आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यो कवहु या जीव को, साथी सगा न कोय॥
५ अन्यत्व–जहा देह अपनी नही, तहा न अपना कोय।
घर सपत्ति पर प्रकट ये, पर हैं परिजन लाय॥
६ अशुचि–दीपे चाम चादर मढी, हाड पीजरा देह।
भीतर या सम जगत मे, और नही घिन गह॥

(सोरठा)

७ आश्रव–मोह नीद के जोर, जगवासी घूमे सदा।
कमचोर चहु ओर, सरबस लूटे सुध नही॥
८ सवर–सतगुरु देय जगाय, मोह नीद जब उपशमे।
तब कछु बने उपाय, कम चोर आवत रुकं॥

(दोहा)

९ निजरा–ज्ञान दीप तप तेल भर घर शोधे भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसै नही पैठे पूरव चार॥
पच महाव्रत सचरण, समिति पच प्रकार।
प्रवल पच इद्रिय विजय, धार निजरा सार॥
१० लोक–चौदह राजु उत्तग नभ, लोक पुरुप सठान।
तामे जीव अनादि से, भरमत है विन ज्ञान॥
११ बोधि दुलभ–
धन जन कचन राज सुख, सबहि सुलभ कर जान।
दुलभ है ससार मे, एक यथारथ ज्ञान॥
१२ धम–जाचे सुरतरु देय सुख चिन्तित चिता रैन।
विन जाचे बिन चिंतिये, धम सकल सुख दैन॥

चारित्र के पाच भेद इस प्रकार हैं, –

१ सामायिक चारित्र, २ छेदापस्थापनीय चारित्र, ३ परिहार विशुद्ध चारित्र, ४ सूक्ष्म सम्पराय चारित्र और ५ यथाख्यात चारित्र ।

१ सामायिक चारित्र के दो भेद हैं, इत्वर कालिक सामायिक और यावत्कथिक सामायिक ।

इत्वर कालिक सामायिक–इत्वर काल का अथ है–अल्प काल । अर्थात भविष्य मे दूसरी बार फिर सामायिक व्रत का व्यपदेश होने से जो अल्प काल की सामायिक हो, उसे 'इत्वर कालिक सामायिक' कहते हैं। प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर भगवान के तीथ मे जबतक शिष्य मे महाव्रत का आरोपण नही किया जाता, तब तक उसके इत्वर कालिक सामायिक समझना चाहिये ।

यावत्कथिक सामायिक–यावज्जीवन की सामायिक बीच के बाईस तीर्थंकर भगवान (प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर भगवान के सिवाय) के साधुओ के एव महाविदेह क्षेत्र के तीर्थंकर भगवन्तो के साधुओ के यावत्कथिक सामायिक होनी है, क्योकि इन तीर्थंकरो के शिष्यो को दूसरी बार सामायिक व्रत नही दिया जाता ।

२ छेदापस्थापनीय चारित्र–पूव पयाय का छेद कर जो महाव्रत दिये जाते हैं उसे 'छेदोपस्थापनीय चारित्र' कहते हैं । यह चारित्र भरत ऐरावत क्षेत्र के प्रथम और अन्तिम तीथकर के तीथ मे ही होता है, शेप तीथकरो के तीथ मे नही हाता ।

छेदोपस्थापनीय चारित्र के दो भद हैं–१ निरतिचार छेदोपस्थापनीय और २ सातिचार छेदापस्थापनीय ।

निरतिचार छदोपस्थापनीय-इत्वर सामायिक वाले शिष्य के एवं तीर्थंकर के तीर्थ से दूसरे तीर्थंकर के तीर्थ में जाने वाले साधुओं के जो व्रतों का आरोहण होता है, वह निरतिचार छदो पस्थापनीय चारित्र है। इसे 'बड़ी दीक्षा' कहते हैं। यह सात दिन बाद, चार महीने बाद और उत्कृष्ट छह महीने बाद दी जाती है।

सातिचार छदोपस्थापनीय-मूलगुणों का घात करने वाले साधु के जो व्रतों का आरोपण होता है, वह 'सातिचार छदो पस्थापनीय चारित्र' है।

३ परिहार विशुद्धि चारित्र-जिस चारित्र मे परिहार तप विशेष से कर्मनिर्जरा रूप शुद्धि होती है उसे 'परिहार विशुद्धि चारित्र' कहते हैं। अथवा परिहार विशुद्धि चारित्र के दो भेद है-१ निर्विश्यमानक और २ निर्विष्ट कायिक।

तप करने वाले पारिहारिक साधु निर्विश्यमानक कहलाते हैं और उनका चारित्र निर्विश्यमान परिहार विशुद्धि चारित्र' कहलाता है।

तप करके वैयावच्च करने वाले आनुपारिहारिक साधु तथा तप करके गुरु पद पर रहा हुआ साधु निर्विष्ट कायिक कहलाते हैं और उनका चारित्र निर्विष्टकायिक परिहार विशुद्धि चारित्र' कहलाता है।

४ सूक्ष्मसम्पराय चारित्र-सम्पराय का अर्थ 'कषाय' होता है। जिस चारित्र मे सूक्ष्म सम्पराय अर्थात संज्वलन लोभ का का सूक्ष्म अंश रहता है उसे 'सूक्ष्म सम्पराय चारित्र' कहते हैं।

सूक्ष्म सम्पराय चारित्र के दो भेद है–विशुध्यमान और सक्लिश्यमान।

क्षपक श्रेणी या उपशम श्रेणी पर चढने वाले साधु के परिणाम उत्तरोत्तर शुद्ध रहने से उनका सूक्ष्म सम्पराय चारित्र विशुध्यमान कहलाता है।

उपशम श्रेणी से गिरते हुए साधु के परिणाम सक्लेश युक्त होते है, इसलिए उनका सूक्ष्म सम्पराय चारित्र सक्लिश्यमान कहलाता है।

५ यथाख्यात चारित्र–कपाय का सवथा उदय न होने से अतिचार रहित पारमार्थिक रूप से प्रसिद्ध चारित्र 'यथाख्यात चारित्र' कहलाता है। अथवा अकपायी साधु का निरतिचार यथाथ चारित्र 'यथाख्यात चारित्र' कहलाता है।

छद्मस्थ और केवली के भेद से यथाख्यात चारित्र के दो भेद हैं। अथवा उपशात मोह और क्षीण मोह, या प्रतिपाति और अप्रतिपाती के भेद से इसके दो भेद है।

सयोगी केवली और अयोगी केवली के भद से केवली यथाख्यात चारित्र के दो भेद हैं।

इस प्रकार ५ समिति, ३ गुप्ति, २२ परीषह १० श्रमण धम १२ भावना और ५ चारित्र–य कुल मिलाकर सवर के ५७ भेद हुए।

॥ सवर तत्त्व समाप्त ॥

७ निर्जरा तत्त्व

निर्जरा–आत्मा से कर्म वर्गणा का एक देशत: दूर होना 'निर्जरा' है। अथवा जीव रूपी कपडा, कर्म रूपी मल, ज्ञान रूपी पानी, तप संयम रूपी साबुन से धोकर कर्म मल को दूर करे उसे 'निर्जरा' कहते है।

निर्जरा के सामान्यत: बारह भेद हैं। वे इस प्रकार हैं–अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचर्या, रस परित्याग, कायक्लेश, प्रतिसलीनता। ये छह बाह्य तप के भेद है। प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग। ये छह आभ्यंतर तप के भेद है।

१ अनशन–अशन पान, खादिम और स्वादिम–इन चार प्रकार के आहार का त्याग करना अथवा पानी को छोडकर तीन आहार का त्याग करना 'अनशन' कहलाता है।

अनशन के मुख्य दो भेद है–इत्वरिक अनशन और यावत्कथिक अनशन। अल्पकाल के लिए किये जाने वाले अनशन को 'इत्वरिक अनशन' कहते है। इसके चौदह भेद है–१ चतुर्थ भक्त, २ षष्ठ भक्त, ३ अष्टम भक्त, ४ दशम भक्त, ५ द्वादश भक्त ६ चतुर्दश भक्त, ७ षोडश भक्त, ८ अर्ध मासिक, ९ मासिक, १० द्विमासिक ११ त्रैमासिक, १२ चातुर्मासिक, १३ पंचमासिक और १४ षाण्मासिक।

यावत्कथिक अनशन के छह भेद हैं–पादपोपगमन, भक्त प्रत्याख्यान, इंगितमरण। इन तीनो के निहारी और अनिहारी के भेद से छह भेद हो जाते हैं।

१ पादपोपगमन–चारो आहार का त्याग करके अपने शरीर के किसी भी अग को किंचितमात्र भी न हिलाते हुए निश्चल रूप से सथारा करना 'पादपोपगमन' कहलाता है।

२ भक्त प्रत्याख्यान–यावज्जीवन तीन या चारो आहारो का त्याग कर जो सथारा किया जाता है, उसे 'भक्तप्रत्याख्यान अनशन' कहते हैं। इसी को 'भक्त परिज्ञा' भी कहते हैं।

३ इगित मरण–यावज्जीवन चारो प्रकार के आहार का त्याग कर निश्चित स्थान मे हिलने डुलने का आगार रखकर जो सथारा किया जाता है, उसे 'इगित मरण' अनशन कहते हैं।

ये तीनो प्रकार के अनशन (सथारा) निहारी और अनिहारी के भेद से दो प्रकार के होते हैं। निहारी सथारा नगर आदि के भीतर किया जाता है और अनिहारी ग्राम, नगरादि से बाहर किया जाता है।

अनशन तप के दूसरी तरह से और भी भेद किये जाते हैं। इत्वरीक अनशन तप के छह भेद हैं–श्रेणी तप, प्रतर तप, घन तप, वग तप, वगवग तप, प्रकीणक तप। श्रेणी तप आदि तपश्चर्याएँ भिन्न भिन्न प्रकार से उपवासादि करने से होती हैं।

ऊनोदरी–भोजन आदि के परिमाण को और क्रोध आदि के आवेश को कम करना 'ऊनोदरी' तप कहलाता है। ऊनोदरी के दो भेद हैं–द्रव्य ऊनोदरी और भाव ऊनोदरी।

द्रव्य ऊनोदरी–भण्ड उपकरण और आहार पानी का शास्त्र मे परिमाण बताया गया है, उसमे कमी करना तथा अति सरस और पौष्टिक आहार का त्याग करना 'द्रव्य ऊनोदरी' है।

द्रव्य ऊनोदरी क दो भेद है–उपकरण द्रव्य ऊनोदरी और भक्त पान द्रव्य ऊनोदरी। उपकरण द्रव्य ऊनोदरी के तीन भेद हैं–एक पात्र, एक वस्त्र और जीण उपधि। भक्तपान द्रव्य ऊनोदरी के सामायत पाच भद है–१ आठ कवल (ग्रास) प्रमाण आहार करना अल्पाहार पौन ऊनादरी है। २ बारह कवल प्रमाण आहार करना उपाद्ध उनादरी है। ३ सोलह कवल प्रमाण आहार करना अद्ध ऊनोदरी है। ४ चौबीस कवल प्रमाण आहार करना पाव ऊनोदरी है। ५ इकत्तीस ,कवल प्रमाण आहार करना किंचित ऊनादरी है और पूरे बत्तीस कवल प्रमाण आहार करना 'प्रमाणापेत आहार' कहलाता है।

भाव ऊनोदरी–क्रोध, मान, माया और लोभ मे कमी करना, अल्प शब्द बोलना, कपाय के वश होकर भाषण न करना तथा हृदय मे रहे हुए कपाय को शान्त करना 'भाव ऊनोदरी' है। इसके सामायत छह भेद है–१ अल्प क्रोध, २ अल्प मान ३ अल्प माया ४ अल्प लोभ, ५ अल्प शब्द और ६ अल्प झन्झ (कलह)।

भिक्षाचर्या–विविध प्रकार का अभिग्रह लेकर भिक्षा का सकोच करते हुए विचरना 'भिक्षाचर्या' तप है। सामायत इसके तीस भेद है–

द्रव्य–किसी द्रव्य विशेप का अभिग्रह लेकर भिक्षाचर्या करना।

क्षेत्र–स्वग्राम और पर ग्राम से भिक्षा लेने का अभिग्रह करना।

काल–प्रात काल या मध्याह्न मे भिक्षाचर्या करना ।

भाव–गाना, हँसना आदि क्रियाओ मे प्रवृत्त पुरुष से भिक्षा लेने का अभिग्रह करना ।

उत्क्षिप्त चरक–गृहस्थ ने अपने प्रयोजन से भोजन के पात्र से आहार बाहर निकाला हो, उसकी गवेषणा करना ।

निक्षिप्त चरक–भाजन के पात्र से बाहर न निकाले हुए आहार की गवेषणा करना ।

उत्क्षिप्त निक्षिप्त चरक–भोजन के पात्र से उद्धृत और अनुद्धृत (बाहर न निकाले हुए) दोनो प्रकार के आहार की गवेषणा करना ।

निक्षिप्त उत्क्षिप्त चरक–पहले भोजन के पात्र मे डाले हुए और फिर अपने लिए बाहर निकाले हुए आहारादि की गवेषणा करना ।

वर्त्यमान चरक–गृहस्थ के लिए थाली परोसे हुए आहार की गवेषणा करना ।

साहरिज्जमाण चरए–कूरा (एक प्रकार का धान्य) जो ठण्डा करने के लिए थाली आदि मे डाल कर वापिस भोजन पात्र मे डाल दिया गया हो ऐसे आहार की गवेषणा करना ।

उपनीत चरक–दूसरे साधु द्वारा अन्य साधु के लिये लाये हुए आहार की गवेषणा करना ।

अपनीत चरक–पकाने के पात्र मे निकाल कर दूसरे स्थान रखे हुए पदार्थ की गवेषणा करना ।

उपनीतापनीत चरक–उपरोक्त दोनो प्रकार के आहार की

गवेषणा करना। अथवा दाता द्वारा उस पदाथ के गुण और अवगुण सुन कर फिर ग्रहण करना अर्थात एक ही पदाथ की एक गुण से ता प्रशसा और दूसरे गुण की अपेक्षा दूषण सुनकर फिर लेना। जैसे-यह जल ठण्डा तो है, किन्तु खारा है। इत्यादि।

अपनीतोपनीत चरक-मुख्य रूप से अवगुण और सामान्य रूप से गुण सुनकर फिर उस पदाथ को लेना। जसे यह जल खारा है, परन्तु ठण्डा है। इत्यादि।

ससष्ट चरक-उसी पदाथ से भरे हुए हाथ से दिये जाने वाले आहार की गवेषणा करना।

असंसष्ट चरक-विना भरे हुए हाथ से दिये जाने वाले आहार की गवेषणा करना।

तज्जातससष्ट चरक-भिक्षा मे दिये जाने वाले पदाथ क समान (अविरोधी) पदाथ से भरे हुए हाथ से दिये जाने वाले पदाथ की गवेषणा करना।

अज्ञात चरक-अपना परिचय दिये विना आहारादि की गवेषणा करना।

मौन चरक-मौन धारण करके आहारादि की गवेषणा करना।

दष्ट लाभिक-दष्टिगोचर होने वाले आहर की गवेपणा करना। अथवा सव प्रथम दष्टिगोचर होने वाले दाता से ही भिक्षा लेना।

अदृष्ट लाभिक-अदष्ट अर्थात पर्दे आदि के भीतर रहे हुए आहार की गवेपणा करना। अथवा पहले नही देखे हुए दाता

से आहारादि लेना ।

पृष्ट लाभिक– हे मुनि ! आपको किस वस्तु की आवश्यकता है ?' इस प्रकार प्रश्न पूछने वाले दाता से आहारादि की गवेपणा करना ।

अपृष्ट लाभिक–किसी प्रकार का प्रश्न नही पूछने वाले दाता से ही आहारादि की गवेषणा करना ।

भिक्षा लाभिक–रूख सूखे तुच्छ आहार की गवेपणा करना ।

अभिक्षा लाभिक–सामान्य आहार की गवेपणा करना ।

अन्नग्लायक–अन्न के बिना ग्लानि पाना अर्थात अभिग्रह विशेष के कारण प्रात काल ही आहार की गवेपणा करना ।

औपनिहितक–निकट रहने वाले दाता से आहारादि की गवेपणा करना ।

परिमित पिण्डपातिक–परिमित आहारादि की गवेपणा करना ।

शुद्धपणिक–शकादि दोष रहित शुद्ध ऐषणा पूर्वक कूरा आदि तुच्छ अन्नादि की गवेपणा करना ।

सख्यादत्तिक–बीच मे धार न टूटते हुए एक बार मे जितना आहार या पानी पात्र मे गिरे उसे 'दत्ति' कहते हैं। ऐसी दत्तियो की सख्या का नियम करके भिक्षा की गवेपणा करना ।

उववाई सूत्र मे इनका विस्तत वणन एव भेद आदि दिये गय हैं। यहा आहार के विपय मे कहा गया है, इसी प्रकार साधु के लिए सयमोपकारी सभी धर्मोपकरणो के विपय मे यथा योग्य समझ लेना चाहिये ।

रसत्याग–विकारजनक दूध, दही, घी आदि विगयो का तथा प्रणीत (स्निग्ध और गरिष्ठ) खान पान की वस्तुओ का त्याग करना रस त्याग' है। जिव्हा के स्वाद को छाडना 'रस त्याग' है। इसके अनक भेद हैं। कि तु सामान्यत नौ भेद है–

१ प्रणीतरस परित्याग–जिसमे घी आदि की बूदे टपक रही हो ऐसे आहार का त्याग करना।

२ आयम्बिल–भात, उडद आदि से आयम्बिल तप करना।

३ आयामसियभाजी–चावल आदि के पानी मे पडे हुए धान्य आदि का आहार करना।

४ अरसाहार–नमक मिर्च आदि मसाला के बिना रस रहित आहार करना।

५ विरसाहार–जिनका रस चल गया हो, ऐसे पुराने धान्य या भात आदि का आहार करना।

६ अन्ताहार–जघन्य अर्थात जो आहार बहुत गरीब लोग करते हैं, ऐसे चने चबीन आदि खाना।

७ प्रान्ताहार–गृहस्थो के भोजन कर लेने के बाद बचा हुआ आहार लेकर खाना।

८ रुक्षाहार–बहुत रूखा सूखा आहार करना। कही कही 'रूक्खाहार' के स्थान 'तुच्छाहार' पाठ है उसका अर्थ है तुच्छ, सत्त्वरहित, नि सार आहार करना।

९ निर्विगय–तेल घी, गुड आदि विगयो से रहित आहार करना।

इस प्रकार रसपरित्याग के और भी अनेक भेद हो सकते

है । यहा नौ भेद ही दिये गये हैं ।

कायाक्लेश–शास्त्रसम्मत रीति से शरीर को क्लेश पहुचाना 'कायाक्लेश' तप है । उग्र वीरासनादि आसनो का सेवन करना, लोच करना, शरीर की शोभा शश्रूषा का त्याग करना आदि कायाक्लेश के अनेक भेद है । सामान्यत इसके तेरह भेद इस प्रकार है–

१ स्थानस्थितिक–कायोत्सग करके निश्चल वैठना ।

२ स्थानातिग–आसन विशेष से बठकर कायोत्सग करना ।

३ उत्कुटुकासनिक–उक्कडु आसन से बठकर कायात्सग करना ।

४ प्रतिमास्थायी–एक मासिकी पडिमा, दो मासिकी पडिमा आदि स्वीकार करके विचरना ।

५ वीरासनिक–सिंहासन अर्थात कुर्सी पर बठे हुए पुरुप के नीचे से कुर्सी निकाल देने पर जो अवस्था रहती है, वह 'वीरासन' कहलाता है । ऐसे आसन से बठना ।

६ नैपधिक–निपद्या (आसनविशेप) से भूमि पर बठकर कायोत्सग करना ।

७ दण्डायतिक–लम्बे डण्डे की तरह भूमि पर लेट कर कायोत्सग आदि करना ।

८ लगण्डशायी–जिस आसन मे परो की दोनो एडिया और सिर पथ्वी पर लगे हो और शेप शरीर ऊपर उठा रहे, इस प्रकार टेढी लकडी की तरह के आसन को 'लगण्ड आसन' कहते है । इस प्रकार के आसन से रह कर कायोत्सग आदि तप करना ।

९ आतपक–शीतकाल मे शीत मे वैठकर और उष्णकाल मे सूर्य की प्रचण्ड धूप मे बैठ कर आतापना लेना ।

१० अपावत्तक–खुले मदान मे आतापना लेना ।

११ अकण्डूयक–शरीर का न खुजलाते हुए आतापना लेना।

१२ अनिष्ठीवक–निष्ठीवन (थूकना) आदि न करत हुए आतापना लेना ।

१३ द्युतकेशश्मश्रुलोम–दाढी, मूछ आदि के केशा को न सवारते हुए (अपने शरीर की विभूषा को छोडकर) आतापना लेना ।

इत्यादि प्रकार से कायाक्लेश क अनेक भेद हैं । अव प्रति सलीनता का वणन किया जाता है ।

प्रतिसलीनता-प्रतिसलीनता का अथ है गोपन करना । इसके मुख्य रूप से चार भेद है–१ इन्द्रियप्रतिसलीनता, २ कषायप्रति सलीनता, ३ योगप्रतिसलीनता और ४ विविक्त शय्यासनता ।

१ इन्द्रिय प्रतिसलीनता इसके पाच भेद है, यथा–

१ श्रोत्रेन्द्रिय प्रतिसलीनता–श्रोत्रेन्द्रिय को अपने विषयो की ओर जाने से रोकना । तथा श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा गहित विषया मे रागद्वेष न करना । इसी प्रकार २ चक्षुरिन्द्रिय प्रतिसलीनता, ३ घ्राणन्द्रिय प्रतिसलीनता, ४ रसनेन्द्रिय प्रतिसलीनता और ५ स्पशनेन्द्रिय प्रतिसलीनता ।

२ कषाय प्रतिसलीनता । इसके चार भेद हैं, यथा–

१ क्रोध प्रतिसलीनता–क्रोध का उदय न होने देना तथा उदय में आये हुए क्रोध को निष्फल बना देना । इसी प्रकार

२ मान प्रतिसलीनता, ३ माया प्रतिसलीनता और ४ लोभ प्रतिसलीनता ।

३ योग प्रतिसलीनता । इसके तीन भेद है, यथा--

१ मन प्रतिसलीनता—मन की अकुशल (अशुभ) प्रवृत्ति रोकना तथा कुशल प्रवृत्ति करना और चित्त को एकाग्र स्थिर करना । इसी प्रकार २ वचन प्रतिसलीनता और ३ काया प्रतिसलीनता—अच्छी तरह समाधिपूवक शात होकर, हाथ पैर सकुचित करके कछुए की तरह गुप्तेद्रिय होकर स्थिर होना ।

४ विविक्त शय्यासनता—स्त्री, पशु और नपुसक से रहित स्थान मे निर्दोष शयन आदि उपकरणा को स्वीकार करके रहना । आराम (बगीचा) उद्यान आदि मे सथारा अगीकार करना भी विविक्त शय्यासनता कहलाती है ।

इस प्रकार प्रतिसलीनता के कुल १३ भेद हैं । ये वाह्यतप के भेद हुए । अब आभ्यतर तप का वणन किया जाता है–

आभ्यतर तप—जिस तप का सम्बध आत्मा के भावो से हो । इसके छह भेद है—१ प्रायश्चित्त २ विनय, ३ वैयावृत्य, ४ स्वाध्याय, ५ ध्यान और ६ व्युत्सग ।

प्रायश्चित्त—जिससे मूल गुण और उत्तर गुण विपयक अतिचारो से मलिन आत्मा शुद्ध हो । अथवा प्राय का अथ 'पाप' और 'चित्त' का अथ है 'शुद्धि' । जिस अनुष्ठान से पाप की शुद्धि हो उसे प्रायश्चित्त कहते हैं । प्रायश्चित्त के ५० भेद इस प्रकार हैं—दस प्रकार का प्रायश्चित्त, प्रायश्चित्त दन वाले के दस गुण, प्रायश्चित्त लेने वाले के दस गुण, प्रायश्चित्त के दस

दोष, प्रायश्चित्त सेवन करने के दस कारण। ये सभी मिलाकर प्रायश्चित्त के ५० भेद हुए।

प्रायश्चित्त के दस भेद–

१ आलोयणारिहे २ पडिक्कमणारिहे, ३ तदुभयारिहे ४ विवेगारिहे, ५ विउस्सग्गारिहे, ६ तवारिहे, ७ छेदारिहे, ८ मूलारिहे, ९ अणवट्ठप्पारिहे और १० पारंचियारिहे।

१ आलोचनार्ह–संयम में लगे हुए दोष को गुरु के समक्ष स्पष्ट वचनों से सरलतापूर्वक प्रकट करना आलोचना है।

२ प्रतिक्रमणार्ह–प्रतिक्रमण के योग्य, प्रतिक्रमण अर्थात दोष से पीछे हटना एवं किये हुए पाप के लिए 'मिच्छामि दुक्कडं' कहना।

३ तदुभयार्ह–जो दोष आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों से शुद्ध किया जाने योग्य हो।

४ विवेकार्ह–जो प्रायश्चित्त आधाकर्म आदि दोषयुक्त आहारादि का विवेक अर्थात् त्याग करने से शुद्ध हो जाय।

५ व्युत्सर्गार्ह–जिस दोष की शुद्धि कायोत्सर्ग करने से हो जाय।

६ तपार्ह जिस दोष की शुद्धि तप से हो।

७ छेदार्ह–जिस दोष की शुद्धि दीक्षापर्याय का छेद करने से हो।

८ मूलार्ह–ऐसा दोष जिसके सेवन करने पर साधु को एक बार लिया हुआ संयम छोड़कर पुनः संयम लेना पड़े।

९ अनवस्थाप्यार्ह–तप के बाद दूसरी बार दीक्षा देने योग्य।

जब तक अमुक प्रकार का विशेष तप न करे उसे दीक्षा नहीं दी जा सकती।

१० पाराचिकाह-गच्छ से बाहर करने योग्य। जिस दोष मे साधु को गच्छ से निकाल दिया जाय।

साध्वी या रानी आदि का शीलभग करने पर यह प्रायश्चित्त दिया जाता है। यह महापराक्रम वाले आचाय को ही दिया जाता है। इसकी शुद्धि के लिए छह महीने से लेकर बारह वष तक गच्छ छोडकर जिनकल्पी की तरह कठोर तपस्या करनी पडती है। उपाध्याय के लिए नौवे प्रायश्चित्त तक का विधान है। सामान्य साधु के लिए आठवे प्रायश्चित्त मूलाह तक का विधान है।

जहा तक चौदह पूवधारी और'वज्रऋषभ नाराच'नामक पहले सहनन वाले होत है, वही तक दसो प्रायश्चित्त रहते है। उनका विच्छेद होने के बाद मूलाह तक आठ ही प्रायश्चित्त होते है।

आलोचना देने वाले के दस गुण–

१ आचारवान, २ आधारवान, ३ व्यवहारवान्, ४ अप व्रीडक, ५ प्रकुवक, ६ अपरिस्रावी, ७ निर्यापक, ८ अपायदर्शी, ९ प्रियधर्मा और १० दृढधर्मा।

१ आचारवान–ज्ञानादि आचार वाला।

२ आधारवान्–बताये हुए अतिचारो को मन मे धारण करने वाला।

३ व्यवहारवान–आगम व्यवहार, धारणा व्यवहार आदि पाच व्यवहारो का ज्ञाता।

४ अपव्रीडक–शम से अपने दोषो का छिपाने वाले शिष्य की शम को मीठे वचनो से दूर करके स्पष्ट आलोचना कराने वाला ।

५ प्रकुवक–आलोचित अपराध का प्रायश्चित्त देकर दोषो की शुद्धि कराने मे समथ ।

६ अपरिस्रावी–आलोचना करने वाले के दोषो को दूसरे के सामने प्रकट नही करने वाला ।

७ निर्यापक–अशक्ति या और किसी कारण से एक साथ पूरा प्रायश्चित्त लेने मे असमथ साधु को थोडा थोडा प्रायश्चित्त देकर निर्वाह करने वाला ।

८ अपायदर्शी–आलोचना नही लेने मे परलोक का भय तथा दूसरे दोष दिखाने वाला ।

९ प्रियधर्मा- जिसको धम प्यारा हो ।

१० दढधर्मा–जो धम मे दढ हो ।

प्रायश्चित्त लेने वाले साधु के दस गुण–

१ जाति सम्पन्न, २ कुल सम्पन्न ३ विनय सम्पन्न ४ ज्ञान सम्पन्न, ५ दशन सम्पन्न ६ चारित्र सम्पन्न ७ क्षमावान, ८ दान्त, ९ अमायी और १० अपश्चात्तापी ।

उपरोक्त दस गुणो से युक्त अनगार अपने दोषो की आलोचना करने योग्य होता है ।

१ जाति सम्पन्न–उत्तम जाति (मातृपक्ष) वाला । उत्तम जाति वाला प्रथम तो बुरा काम करता ही नही, कदाचित् उससे भूल हो भी जाय, तो वह शुद्ध हृदय से आलोचना कर लेता है ।

२ कुल सम्पन्न–उत्तम कुल (पितपक्ष) वाला। उत्तम कुल मे उत्पन्न व्यक्ति लिए हुए प्रायश्चित्त को उत्तम रीति से पूरा करता है।

३ विनय सम्पन्न–विनयवान।

४ ज्ञान सम्पन्न–ज्ञानवान्।

५ दशन सम्पन्न–श्रद्धालु।

६ चारित्र सम्पन्न–उत्तम चारित्रवाला।

७ क्षान्त–क्षमावान। किसी दोष के कारण गुरु भर्त्सना या फटकार आदि मिलने पर भी वह क्रोध नही करता।

८ दान्त–इन्द्रियो को वश मे रखने वाला।

९ अमायी–कपट रहित।

१० अपश्चात्तापी–आलोचना लेने के बाद जो पश्चात्ताप नही करता।

प्रायश्चित्त के दस दोष–१ आकम्पयित्ता, २ अणुमाणइत्ता, ३ दिट्ठ, ४ बायर, ५ सुहुम, ६ छण्ण ७ सद्दालुअय, ८ बहुजण, ९ अव्वत्त और १० तस्सेवी।

१ आकपयित्ता– प्रसन्न होने पर गुरुमहाराज थोडा प्रायश्चित्त देंगे' यह सोचकर उन्हे सेवा आदि से प्रसन्न कर फिर उनके पास दोषो की आलोचना करे, तो आकम्पयित्ता दोष है।

२ अणुमाणइत्ता–बिल्कुल छोटा अपराध बताने से गुरु महाराज थोडा दण्ड देंगे, यह सोचकर अपने अपराध का बहुत छोटा करके बताना 'अणुमाणइत्ता' दोष है।

३ दिट्ठ (दृष्ट)–जिस अपराध को आचाय आदि ने देख

लिया हो, उसी की आलाचना करना ।

४ बायर (वादर)–कवल वड वड अपराधा की ग्रालाचना करे और छाट दापो का छिपा लेना ।

५ सुहुम (सूक्ष्म)–जा अपने छाट छाट अपराधो की भी आलोचना कर लेता है, वह वड अपराधा को कैसे छाड सकता है' यह विश्वास उत्पन्न कराने के लिए छाट छाट दोपा की आलाचना करना ।

६ छिण्ण (छिन्न)–अधिक लज्जा के कारण प्रच्छन्न (जहा कोई न सुन रहा हो एसे) स्थान पर आलोचना करना ।

७ सद्दालुअय (शब्दालु)–दूसरा को सुनाने के लिये जार जोर से बोलकर आलोचना करना ।

८ बहुजन–एक ही दोप का बहुत से गुरुआ के पास आलाचना करना ।

९ अवक्तव्य–अगीताथ (किस दोप के लिए कसा प्रायश्चित्त दिया जाता है–ऐसा जिस साधु को ज्ञान नही हो, उस) के पास आलोचना करना ।

१० तत्सेवी–जिस दोप की आलोचना करनी हो, उसी दोष को सेवन करने वाले आचार्यादि के पास आलोचना करना ।

उपरोक्त दापो से रहित आचार्यादि के पास आलोचना करना चाहिये ।

दोप प्रतिसेवना के दस कारण हैं–१ दप २ प्रमाद, ३ अनाभोग, ४ आतुर, ५ आपत्ति ६ सकीण, ७ सहसाकार, ८ भय,

९ प्रद्वेप और १० विमर्श ।

१ दप–अहङ्कार के वश सयम की विराधना करना ।

२ प्रमाद–मद्यपान, विपय, कपाय, निद्रा और विकथा–इन पाच प्रमादा के सेवन से सयम की विराधना करना ।

३ अनाभोग–विना उपयोग अनजाने विराधना हो जाना ।

४ आतुर–भूख प्यास आदि किसी पीडा से व्याकुल होकर विराधना होना ।

५ आपत्ति–किसी आपत्ति के आने पर सयम की विरा धना करना । आपत्ति चार प्रकार की होनी है–द्रव्य आपत्ति–प्रासुक निर्दोप आहारादि का न मिल्ना । क्षेत्र आपत्ति–अटवी आदि भयकर जगल मे रहना पडे । काल आपत्ति–दुर्भिक्ष आदि के समय । भाव आपत्ति–बीमार पड जाना, शरीर का अस्वस्थ हो जाना आदि । इन आपत्तियो मे से किसी आपत्ति के आने पर सयम की विराधना करना 'आपत्ति दोप' है ।

६ सकीण–स्वपक्ष और परपक्ष से होने वाली स्थान की तगी आदि के कारण सयम मे दाप लगाना । अथवा शकित प्रतिसेवना–ग्रहण योग्य आहारादि मे भी किसी दाप की शका हो जाने पर उसे ले लेना 'सकीण प्रतिसेवना' दोप है ।

७ सहसाकार–अकस्मात (विना समझे बूझे और पडिलेहणा किये विना) सहसा किसी काम को करना ।

८ भय–भय से सयम की विराधना करना ।

९ प्रद्वेप–किसी पर द्वेप या ईर्ष्या से सयम की विराधना करना । यहा प्रद्वेप से चारो कपाय लिये जाते हैं ।

१० विमश–शिष्य की परीक्षा के लिए की गई सयम की विराधना ।

इन दस कारणो से सयम मे दोष लगता है और उस दोष की शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त लेना पडता है। अत सयम को दूषित करने वाले इन कारणो का त्याग करना चाहिए ।

विनय तप–विनय के सामान्यत सात भेद हैं–१ ज्ञान विनय २ दशन विनय, ३ चारित्र विनय, ४ मन विनय, ५ वचन विनय, ६ काय विनय और ७ लोकोपचार विनय । इन सातो के अवान्तर भेद १३४ होते हैं । वे इस प्रकार है–

ज्ञान विनय के पाच भेद हैं, यथा–ज्ञान तथा ज्ञानी पर श्रद्धा रखना, उनके प्रति भक्ति तथा बहुमान दिखाना, उनके द्वारा प्रतिपादित तत्त्वो पर अच्छी तरह विचार तथा मनन करना और विधिपूवक ज्ञान ग्रहण करना, ज्ञान का अभ्यास करना–ज्ञान विनय है । इसके पाच भेद हैं । यथा–मतिज्ञान विनय, श्रुतज्ञान विनय, अवधिज्ञान विनय, मन पययज्ञान विनय और केवलज्ञान विनय ।

दशन विनय के ५५ भेद इस प्रकार हैं–देव अरिहत गुरु निग्रन्थ और धम केवलीभाषित, इन तीन तत्त्वो मे श्रद्धा रखना 'दशन' या 'सम्यक्त्व' कहलाता है । दशन का विनय, भक्ति और श्रद्धा 'दशन विनय' है । इसके सामान्यत दो भेद हैं–शुश्रूषा विनय और अनाशातना विनय । शुश्रूषा विनय के दस भेद है–

१ अभ्युत्थान–गुरु महाराज या अपने से बडे रत्नाधिक

पधारते हो, तो उन्हे देखकर खड हो जाना । २ आसनाभिग्रह 'पधारिये, आसन अलकृत कीजिये'–इस प्रकार कहना ३ आसन प्रदान–बैठने के लिए आमन देना । ४ सत्कार–सत्कार करना । ५ सम्मान–सम्मान देना । ६ कीर्ति कर्म–उनके गुणग्राम–स्तुति करना । ७ अञ्जलिप्रग्रह–हाथ जोडना । ८ अनुगमनता–वापिस जाते समय कुछ दूर तक पहुँचाने जाना । ९ पर्युपासनता–बैठे हो, तो उनकी उपासना करना । १० प्रति ससाधनता–उनके वचन को स्वीकार करना ।

अनाशातना विनय–दशन और दशनवान की आशातना न करना अनाशातना विनय है । इसके पैंतालीस भेद है–१ अरिहन्त भगवान्, २ अरिहन्त प्ररूपित धम, ३ आचाय, ४ उपाध्याय, ५ स्थविर, ६ कुल, ७ गण ८ सघ, ९ साभागिक, सार्धर्मिक, १० क्रियावान्, ११ मति नानवान, १२ श्रुतज्ञानवान्, १३ अवधि ज्ञानवान, १४ मन पर्यय ज्ञानवान और १५ केवल ज्ञानवान् । इन १५ की आशातना न करके विनय करना, भक्ति करना और गुणग्राम करना । इन तीन कार्यो के करने से ४५ भेद हो जाते हैं ।

चारित्र विनय–चारित्र पर श्रद्धा करना, काया से उनका पालन करना तथा उनकी प्ररूपणा करना चारित्र विनय है । इसके पाच भेद हैं–१ सामायिक चारित्र विनय । २ छेदोपस्थापनीय चारित्र विनय । ३ परिहार विशुद्धि चारित्र विनय । ४ सूक्ष्म सम्पराय चारित्र विनय । और ५ यथाख्यात चारित्र विनय ।

इन पाचो चारित्रधारियो का विनय करना चारित्र विनय

है ।

मन विनय-आचार्य आदि का मन से विनय करना। मन की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना तथा उसे शुभ प्रवृत्ति मे लगाना मन विनय है। इसमें दो भेद हैं-अप्रशस्त मन विनय और प्रशस्त मन विनय। अप्रशस्त मन विनय के १२ भेद हैं-सावद्य, सक्रिय, सकर्कश, कटुक, निष्ठुर, परुष (कठोर) आश्रयकारी छेदकारी, भेदकारी, परितापनाकारी, उपद्रवकारी और भूतोपघातकारी। ये मन के अप्रशस्तभाव है। इन अप्रशस्त भावो को मन मे नही आने देना-'अप्रशस्त मन विनय' हैं। उपरोक्त बारह भेदो से विपरीत प्रशस्त मन विनय के भी बारह भेद होते हैं। इस प्रकार मन विनय के २४ भेद होते हैं।

वचन विनय-आचार्य आदि का वचन से विनय करना वचन की अशुभ प्रवत्ति को रोकना तथा शुभ प्रवत्ति मे लगाना। मन विनय की तरह वचन विनय के भी २४ भेद होते हैं।

काय विनय-काया से आचार्य आदि का विनय करना, काया की अशुभ प्रवत्ति को रोकना और शुभ प्रवत्ति करना। इसके दो भेद हैं-

प्रशस्त काय विनय और अप्रशस्तकाय विनय। प्रशस्त काय विनय के ७ भेद है--

१ आयुक्त गमन-सावधानीपूर्वक जाना।
२ आयुक्त स्थान-सावधानी पूर्वक ठहरना।
३ आयुक्तनिषीदन-सावधानी पूर्वक बैठना।
४ आयुक्त त्वग्वर्तन-सावधानी पूर्वक लेटना।

५ आयुक्त उल्लघन–सावधानी पूर्वक उल्लघन करना ।

६ आयुक्त प्रलघन–सावधानी पूवक वारवार लांघना ।

७ आयुक्त सर्वेन्द्रिय योग युजनता–सभी इन्द्रियों और योगो की सावधानी पूवक प्रवृत्ति करना ।

अप्रशस्त काय विनय के सात भद हैं । ऊपर कही हुई सात वाता म प्रमाद आदि मे होनी हुई असावधानी को रोकना–त्याग करना ।

इस प्रकार काय विनय के ये चौन्ह भेद हुए ।

लाकोपचार विनय–दूसरो को सुख पहुँचे, इस प्रकार की बाह्य क्रियाएँ करना 'लाकोपचार विनय' कहलाता है । इसके सात भेद हैं–

१ अभ्यास वतित्ता–गुरु आदि के पास रहना और अभ्यासमे रुचि रखना ।

२ परच्छन्दानुवर्तिता–गुरु आदि वडो की इच्छानुसार काय करना ।

३ कायहेतु–उनके द्वारा किये हुए ज्ञानदानादि कार्य के लिए उन्हें विशप मानना, उन्ह आहारादि ला कर देना ।

४ कृत प्रतिक्रिया–अपने ऊपर किये हुए उपकार का बदला चुकाना अथवा 'आहार आदि के द्वारा गुरु की शुश्रूपा करने से वे प्रसन्न होगे और उसके बदले मे वे मुझे ज्ञान सिखावेंगे'–ऐसा समझकर उनकी विनयभक्ति करना ।

५ आत्तगवेपणना–बीमार साधुओ की सार-सम्भाल करना।

६ देश कालानुनता–अवसर देख कर काय करना ।

७ सर्वाथ अप्रतिलोमता–सभी कार्यों मे गुरु महाराज के अनुकूल प्रवत्ति करना।

ये लोकोपचार विनय के सात भेद हैं।

विनय के सात भेदो मे अनुक्रम से–ज्ञानविनय के ५, दशन विनय के ५५, चारित्रविनय मे ५, मन विनय के २४, वचन विनय के २४, कायविनय के १४ और लोकोपचार विनय के ७। ये कुल मिला कर १३४ भद हुए।

वयावृत्य तप

अब वयावृत्य तप का वणन किया जाता है।

वैयावत्य–गुरु, तपस्वी, रोगी, नवदीक्षित आदि को विधि पूवक आहारादि लाकर देना 'वैयावत्य' कहलाता है। वया वत्य के दस भेद इस प्रकार हैं–आचाय, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लान (रोगी), शैक्षक (नवदीक्षित) कुल, (एक आचाय का शिष्य परिवार) गण (समूह), सघ और सार्धमिक (समान धम वाले) इन दस की वयावत्य करना।

स्वाध्याय

अब स्वाध्याय का वणन किया जाता है।

स्वाध्याय–अस्वाध्याय काल टाल कर मर्यादापूवक शास्त्रो का अध्ययन–अध्यापन आदि करना 'स्वाध्याय' है। स्वाध्याय के पाच भेद है–१ वाचना, २ पच्छना, ३ परिवतना, ४ अनुप्रेक्षा और ५ धमकथा।

१ वाचना–शिष्य को सूत्र और अथ पढाना।

२ पृच्छना-वाचना ग्रहण करके उसमे स देह होने पर पुन पूछना, अथवा पहले सीखे हुए सूत्रादि ज्ञान मे शका होने पर प्रश्न करना 'पच्छना' है।

३ परिवतना-पढा हुआ ज्ञान भूल न जाय, इसलिए उसे वार बार आवृत्ति करना 'परिवतना' कहलाती है।

४ अनुप्रक्षा-सीखे हुए सूत्र के अथ पर बार बार मनन करना, विचार करना।

५ धमकथा-उपरोक्त चारो प्रकार से शास्त्र का अभ्यास करने पर श्राताओ को शास्त्रो का व्याख्यान सुनाना, धर्मोपदेश देना।

ध्यान

ध्यान-एक लक्ष्य पर चित्त का एकाग्र करना 'ध्यान' है।

ध्यान के चार भेद इस प्रकार है,-

१ आत्तध्यान, २ रौद्रध्यान, ३ धमध्यान और ४ शुक्ल ध्यान।

आत्तध्यान-आत्त अर्थात दुख के निमित्त से या दुख मे होने वाला ध्यान आत्तध्यान' कहलाता है अथवा-मनोज्ञ वस्तु के वियाग और अमनोज्ञ वस्तु के सयोग आदि कारण से चित्त की चञ्चलता-आत्तध्यान है। अथवा-जीव मोहवश राज्य का उपभोग शयन आसन वाहन, स्त्री, ग ध, माला, रत्न, आभूषण आदि मे जो अतिशय इच्छा करता है वह 'आत्तध्यान' है। इसके चार भेद है-

१ अमनोज्ञ वियोग चिन्ता-अरुचिकर शब्द, रूप रस, गन्ध,

और स्पर्श विषय और उनकी साधनभूत वस्तुओं का संयोग होने पर, उनके वियोग का विचार करना तथा भविष्य में भी ऐसी वस्तुएँ नही मिलें–ऐसी इच्छा रखना। इस आर्त्तध्यान का कारण द्वेष है।

२ मनोज्ञ संयोग चिन्ता–पाँचों इन्द्रियों के इच्छित विषय एवं उनके कारण रूप माता, पिता, भाई, स्वजन, स्त्री, पुत्र और धन तथा साता वेदना के संयोग में उनका वियोग न हो जाय–ऐसा विचार करना तथा भविष्य में भी उनके संयोग की इच्छा करना। इसका मूल कारण 'राग' है।

३ रोग चिन्ता–किसी प्रकार का रोग होने पर उसे दूर करने की अथवा भविष्य में रोग न होने की चिन्ता करना।

४ निदान–देवेन्द्र, चक्रवर्ती आदि के रूप और ऋद्धि आदि को देख कर या सुन कर उनकी प्राप्ति के लिए तप संयम को दाव पर लगाने का संकल्प करना।

आर्त्तध्यान के चार लिंग हैं–

१ आक्रन्दन–ऊँचे स्वर से रोना चिल्लाना।

२ शोचन–आंखों में आंसू ला कर दीनभाव लाना।

३ परिदेवना–बारबार क्लिष्ट भाषण करना, विलाप करना।

४ तेपनता–टपटप आंसू गिराना।

इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग और वेदना के निमित्त से ये चार चिन्ह होते है।

रौद्रध्यान–हिंसा, झूठ, चोरी, सम्बन्धी तथा धन आदि की रक्षा में मन का जोडना 'रौद्रध्यान' है। अथवा–हिंसा आदि

विषय का क्रूर परिणाम 'रौद्रध्यान' है। इसके चार भेद हैं–

१ हिंसानुबंधी–प्राणियो को मारने, पीटने, बाधने, जलाने और प्राणान्त करने का चिंतन करना।

२ मृषानुबंधी–दूसरो को ठगने, धोखा देने के अनिष्ट सूचक असभ्य, असत प्रकाशन, सत्य का अपलाप आदि असत्य वचन एव प्राणियो का उपघात करने वाले वचन कहन का चिंतन करना।

३ चौर्यानुबंधी–तीव्र क्रोध और लोभ से चोरी करने का चिंतन करना।

४ सरक्षणानुबंधी–शब्दादि पाच विषय के साधनभूत धन स्त्री आदि की रक्षा करने की चिन्ता करना।

हिंसा, झूठ, चोरी और सरक्षण स्वय करना, दूसरो स करवाना और करते हुए की अनुमोदना करना तथा इन तीनो के विषय मे चिंतन करना।

रौद्रध्यान के चार लिंग (लक्षण) इस प्रकार हैं–

१ ओसन्न दोष–रौद्रध्यानी हिंसा मे निवृत्त न होने से बहुलतापूवक हिंसादि मे से किसी एक मे प्रवत्ति करता है।

२ बहुल दोष–रौद्रध्यानी हिंसादि सभी दोषो मे प्रवत्ति करता है।

३ अज्ञान दोष–अज्ञान से अधम स्वरूप हिंसादि मे धर्मबुद्धि से प्रवत्ति करना, अथवा नाना दोष–हिंसादि के विविध उपायों मे अनेक बार प्रवत्ति करना।

४ आमरणान्त दोष–मरण पर्यन्त हिंसादि क्रूर कार्यो का पश्चाताप न होना एव हिंसादि मे प्रवृत्ति करते रहना।

धमध्यान-धम के स्वरूप के पर्यालोचन मे मन का एकाग्र करना। इसके चार भद हैं।

१ आज्ञाविचय-भगवान् की आज्ञा को सत्य मानकर, श्रद्धा पूवक तत्त्वो का चितन मनन करते हुए एकाग्र होना।

२ अपाय विचय-राग, द्वप, कपाय, मिथ्यात्व, अविरति आदि पापा और उनके कुफल का चितन करना।

३ विपाक विचय-कम क शुभाशुभ फल विपयक चिन्तन करना। जसे-शुद्ध आत्मा का स्वरूप ज्ञान, दशन, सुख आदि रूप है, फिर भी कमवश आत्मा के निजी गुण दबे हुए हैं। कर्मों के वश होकर आत्मा ससार मे चारो गतिया म भ्रमण कर रही है। सपत्ति, विपत्ति सयोग वियोग आदि से होने वाले सुख दुख तो जीव के पूर्वोपार्जित शुभाशभ कर्मों का ही फल है। इस प्रकार कम विपयक चिन्तन मे मन को लगाना।

४ सस्थान विचय-लोक का स्वरूप, पथ्वी, द्वीप, सागर, नरक स्वग आदि के आकार का चिंतन करना। लोक स्थिति, जीव की गति, आगति, जीवन, मरण आदि शास्त्रोक्त पदार्थों का चिन्तन करना तथा इस अनादि अन त ससार सागर से पार करने वाली ज्ञान, दशन, चारित्र, तप, सवर रूप नौका का विचार करने मे एकाग्र होना।

धमध्यान के चार लिंग इस प्रकार है-

१ आज्ञा रुचि-शास्त्रोक्त अर्थो पर रुचि रखना।

२ निसग रुचि-किसी के उपदेश के बिना, स्वभाव से ही जिन भाषित तत्त्वो पर श्रद्धा होना।

३ सूत्र रुचि–सूत्रोक्त प्रतिपादित तत्त्वो पर श्रद्धा करना।

४ उपदेश रुचि–साधु के सूत्रानुसारी उपदेश से जो श्रद्धा होती है वह 'उपदेश रुचि' है।

तात्पर्य यह है कि तत्वार्थ श्रद्धान रूप सम्यक्त्व ही धर्मध्यान का लिंग है।

जिनेश्वर देव एव साधु मुनिराज के गुणो का कथन करना, भक्ति पूर्वक उनकी प्रशसा और स्तुति करना, गुरु आदि का विनय करना, दान देना, श्रुत शील एव सयम मे अनुराग रखना, ये धर्मध्यान के चिन्ह हैं। इन से धर्मध्यानी पहिचाना जाता है।

धर्मध्यान रूपी प्रासाद पर चढने के चार अवलम्बन हैं–

१ वाचना–निर्जरा के लिए शिष्य को सूत्रार्थ पढाना।

२ पृच्छना–सूत्रार्थ मे शका होने पर उसका निवारण करने के लिए पूछना।

३ परिवर्तना–पहले पढे हुए सूत्रादि भूल न जाय, इसलिए उनकी आवृत्ति करना।

४ धर्मकथा–धर्मोपदेश देना।

धर्मध्यान की चार अनुप्रेक्षाएँ इस प्रकार हैं–

१ एकत्व भावना–"इस ससार मे मैं अकेला हू, मेरा कोई नही है और मैं भी किसी का नही हू।" आत्मा के असहायपन की भावना करना एकत्व भावना है।

२ अनित्य भावना–ससार के सभी पदार्थों की अनित्यता का विचार करना।

३ अशरण भावना–ससार मे दुखो से बचाने वाला कोई

नही है। केवल जिनेन्द्र भगवान के प्रवचन ही एक त्राण शरण रूप है। इस प्रकार आत्मा के त्राण शरण के अभाव का चितन करना।

४ ससार भावना–चार गति मे सभी अवस्थाओ मे ससार के विचित्रतापूर्ण स्वरूप का विचार करना।

शुक्ल ध्यान-पूर्व विषयक श्रुत के आधार से मन की अत्यत स्थिरता और योग का निरोध–'शुक्ल ध्यान' कहलाता है। अथवा–जो ध्यान आठ प्रकार के कर्म मल को दूर करता है वह 'शुक्ल ध्यान' है। पर आलम्बन के बिना शुक्ल अर्थात निर्मल आत्म स्वरूप का तन्मयतापूर्वक चिन्तन करना 'शुक्ल ध्यान' है। अथवा जिस ध्यान मे विषयो का सम्बन्ध होने पर भी वैराग्य बल से चित्त बाहरी विषयो की ओर नही जाता तथा शरीर का छेदन भेदन होने पर भी स्थिर हुआ चित्त ध्यान से लेश मात्र भी नही डिगता उसे 'शुक्लध्यान' कहते हैं।

शुक्लध्यान के चार भेद इस प्रकार हैं–

१ पृथक्त्व वितर्क सविचारी–एक द्रव्य विषयक अनेक पर्यायो का पृथक पृथक रूप से विस्तारपूर्वक द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक आदि नयो से चिन्तन करना। यह ध्यान विचार सहित होता है। इस ध्यान मे अर्थ से शब्द मे, शब्द से अर्थ मे, शब्द से शब्द मे और अर्थ से अर्थ मे एव एक योग से दूसरे योग मे सक्रमण होता है।

२ एकत्व वितर्क अविचारी–उत्पाद आदि पर्यायो के एकत्व (अभेद) से किसी एक पदार्थ का अथवा पर्याय का स्थिर चित्त

मे चिन्तन करना। इसमे अर्थ, व्यञ्जन और योगो का संक्रमण नही होता। जिस तरह वायु रहित एकान्त स्थान मे दीपक की लौ स्थिर रहती है। इसी प्रकार इस ध्यान मे चित्त स्थिर रहता है।

३ सूक्ष्म क्रिया अनिवर्ती–मोक्ष जाने से पहले केवली भगवान मन और वचन–इन दो योगो का तथा अर्द्ध काययोग का भी निरोध कर लेते हैं। उस समय केवली भगवान के उच्छ्वास आदि कायिकी सूक्ष्म क्रिया ही रहती है।

४ समुच्छिन्न क्रिया अप्रतिपाती–शैलेशी अवस्था को प्राप्त केवली भगवान् सभी योगो का निरोध कर लेते है। योगो के निरोध से सभी क्रियाएँ नष्ट हो जाती हैं। यह ध्यान सदा बना रहता है।

पृथक्त्व वितर्क सविचारी शुक्लध्यान सभी योगो मे होता है। एकत्व वितर्क अविचारी शुक्लध्यान किसी एक ही योग मे होता है। सूक्ष्म क्रिया अनिवर्ती शुक्लध्यान केवल काययोग मे होता है और समुच्छिन्नक्रिया अप्रतिपाती शुक्लध्यान अयोगी को ही होता है। छद्मस्थ के मन को निश्चल करना 'ध्यान' कहलाता है और केवली का काया को निश्चल करना 'ध्यान' कहलाता है।

शुक्लध्यान के चार लिंग इस प्रकार हैं–

१ अव्यय–शुक्लध्यानी ध्यान से चलित नही होता।

२ असम्मोह–शुक्लध्यानी को किसी भी विषय मे सम्मोह नही होता।

३ विवेक-शुक्लध्यानी आत्मा को देह से भिन्न और सभी सयोगो को आत्मा से भिन्न समझता है।

४ व्युत्सग-शुक्लध्यानी निस्सग रूप से देह और उपाधि का त्याग करता है।

शुक्लध्यान के चार आलम्बन हैं। इन मे जीव शुक्लध्यान पर चढता है।

१ क्षमा-क्रोध न करना, उदय मे आये हुए क्रोध को विफल कर देना।

२ मादव-मान न करना, उदय मे आये हुए मान को विफल कर देना।

३ आजव-माया को उदय मे न आने देना एव उदय मे आई हुई माया को विफल कर देना। माया का त्याग आजव (सरलता) है।

४ मुक्ति-उदय मे आये हुए लाभ को विफल करना।

शुक्लध्यान की चार अनुप्रेक्षाएँ (भावनाएँ) इस प्रकार हैं-

१ अनत वर्तितानुप्रेक्षा-भव परम्परा की अनतता की भावना करना। जसे-यह जीव अनादि काल से ससार मे चक्कर लगा रहा है समुद्र की तरह इस ससार के पार पहुँचना उसे दुष्कर हो रहा है। वह नरक तिर्यच, मनुष्य और देव भवो मे लगातार एक के बाद दूसरे मे, बिना विश्राम के परिभ्रमण कर रहा है। इस प्रकार की भावना 'अनत वर्तितानुप्रेक्षा' है।

२ विपरिणामानुप्रेक्षा-वस्तुओ के विविध परिणमन पर विचार करना। जसे कि मनुष्य एव देव आदि की ऋद्धियाँ

और सुख अस्थायी है आदि ।

३ अशुभानुप्रेक्षा-ससार के अशुभ स्वरूप पर विचार करना । जैसे कि इस समार को धिक्कार है जिसमे एक सुन्दर रूप वाला अभिमानी पुरुष मर कर अपने ही मत शरीर मे कीडा बन कर उत्पन्न हो जाता है, इत्यादि ।

४ अपायानुप्रेक्षा-आश्रवो से होने वाले, जीवो को दुख देने वाले, विविध अपायो का चिन्तन करना । जैसे कि वश मे नही किय हुए क्रोध और मान बढती हुई माया और लोभ-ये चारो ससार के मूल का सीचने वाले हैं, इत्यादि ।

आर्त्तध्यान के ८, रौद्रध्यान के ८, धर्मध्यान के १६ और शुक्लध्यान के १६ । ये सभी मिलाकर ध्यान के ४८ भद हुए ।

चार ध्यानो मे से धमध्यान और शुक्लध्यान-निजरा के कारण है, अत ग्राह्य है । आर्त्त और रौद्र-ये दो ध्यान कम बन्ध एव ससार वृद्धि के कारण हैं, अत त्याज्य है ।

व्युत्सर्ग

अब व्युत्सग का वणन किया जाता है ।

व्युत्सग-ममत्व का त्याग करना 'व्युत्सग' तप है । इसके सामान्यत दो भेद है-द्रव्य व्युत्सग और भाव व्युत्सग । द्रव्य व्युत्सग के चार भेद है-

१ शरीर व्युत्सग-ममत्व रहित होकर शरीर का त्याग करना ।

२ गण व्युत्सग-अपने गण (गच्छ) का त्याग करके जिन कल्प स्वीकार करना ।

३ उपधि व्युत्सग–किसी वस्त्र विशप म उपधि का त्याग करना।

४ भक्त पान व्युत्सग–सदाप आहार पानी का त्याग करना।

भाव व्युत्मग के चार भेद हैं–

१ कपाय व्युत्सग–कपाय का त्याग करना। इसके चार भेद हैं–क्रोध व्युत्सग, मान व्युत्मग, माया व्युत्सग और लोभ व्युत्सग।

२ ससार व्युत्सग–नरक आदि आयुबध के कारण मिथ्यात्व आदि का त्याग करना। इसके चार भेद हैं–नैरयिक ससार व्युत्सग तियच ससार व्युत्सग, मनुष्य ससार व्युत्सग और देव ससार व्युत्सग।

३ कम व्युत्सग–कमबध के कारणो का त्याग करना। इसके आठ भद है–ज्ञानावरणीय कम व्युत्सग, दशनावरणीय कम व्युत्सग, वेदनीय कम व्युत्सग, मोहनीय कम व्युत्सग, आयुष्य कम व्युत्सग नाम कम व्युत्सग, गोत्र कम व्युत्सग और अन्तराय कम व्युत्सग।

४ भाव व्युत्सग–समस्त अशुभ भावो से विरत होकर धम भावना मे रमण करना। कही कही भाव व्युत्सग के स्थान पर 'याग व्युत्सग' बतलाया गया है। वचन और काय योग का त्याग करना–योग व्युत्सग है।

ये व्युत्सग तप के भद हुए।

आभ्यन्तर तप मोक्ष प्राप्ति मे अन्तरग कारण है। इनका प्रभाव बाह्य शरीर पर नही पडता, किन्तु आभ्यन्तर रागद्वेष

कपाय आदि पर पडता है। इसलिए उपरोक्त छह प्रकार का तप 'आभ्यन्तर तप' कहा जाता है।

॥ निजरा तत्त्व समाप्त ॥

८ वन्ध तत्त्व

अव व'घ तत्त्व का वणन किया जाता है—

व'ध—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कपाय और योग के निमित्त से आत्मप्रदेशो मे हलचल होती है, तव जिस क्षेत्र मे आत्मप्रदेश है, उसी क्षत्र मे रहे हुए अनन्तान त कम याग्य पुद गल जीव के साथ व'ध को प्राप्त होते हैं। जीव और कम का यह व'ध ठीक वैसा ही होता है, जैसा दूध और पानी का, अग्नि और लोहपिण्ड का। व'ध के चार भेद है—१ प्रकृति व'ध, २ स्थिति व'ध, ३ अनुभाग व'ध और ४ प्रदेश व'ध।

१ प्रकृति व'ध—जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कम पुद्गलो मे भिन्न भिन्न स्वभावो का होना।

२ स्थिति व'ध—जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए, कम पुद्गलों मे अमुक काल तक जीव के साथ लगे रहने की कालमयादा।

३ अनुभाग व'ध—इसे 'अनुभाव व'ध', 'अनुभव व'ध' तथा 'रस व'ध' भी कहते है। जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कम पुदगला मे फल देने की न्यूनाधिक शक्ति।

४ प्रदेश व'ध—जीव के साथ न्यूनाधिक परमाणु वाले कम स्कन्धो का सम्बन्ध होना।

चारो ब धो का स्वरूप समझाने क लिए मोदक (लड्डू) का दृष्टात दिया जाता है–

जसे–साठ पीपर, काली मिच आदि से बनाया हुआ लड्डू वायु नाशक होता है। इसी प्रकार पित्त नाशक और कफ नाशक पदार्थों से बना हुआ मोदक पित्त और कफ नाशक होता है। इसी प्रकार आत्मा से ग्रहण किये हुए कम पुदगला म से कि हीं मे ज्ञान गुण का आच्छादान करने की शक्ति होती है, कि हीं मे दर्शन गुण कि ही मे आत्मा के आन द गुण और कि ही म आत्मा की अनन्त शक्ति का घात करन की शक्ति होती है। इस प्रकार भिन्न भिन्न कम पुदगलो मे भिन्न भिन्न प्रकार की प्रकृतियो का ब ध होना 'प्रकृति ब ध' कहलाता है। कोई मोदक एक सप्ताह कोई एक पक्ष, कोई एक मास तक प्रभावशाली रहता है, इसके बाद व विकृत हो जाते ह। मोदको की कालमर्यादा के समान कर्मों की भी कालमयादा होती है, इसी को 'स्थिति ब ध' कहते है। स्थिति पूण होने पर कम आत्मा से पथक हो जाते है।

कोई मोदक रस मे अधिक मधुर होते है तो कोई कम। कोई रस मे अधिक कटु होते हैं, तो कोई कम। इस प्रकार मोदको मे रसो की यूनाधिकता होती है। उसी प्रकार कुछ कम पुदगलो मे शुभ रस अधिक और कुछ मे कम। कुछ कम पुद्गलो मे अशुभ रस अधिक और कुछ मे कम होता है। इसी प्रकार कर्मों मे तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम म द म दतर, म दतम शुभाशुभ रसो का ब ध होना–'रस ब ध' है।

कोई मोदक परिमाण मे दो तोले का, कोई पाच तोले का

और कोई पाव भर का होता है। इसी प्रकार भिन्न भिन्न कर्म-पुदगलो मे न्यूनाधिक परमाणु होना।

जीव संख्यात, असंख्यात और अनन्त परमाणुओ से बने हुए कार्माण स्कन्ध का ग्रहण नही करता, परन्तु अनन्तानन्त परमाणु वाले स्कन्ध ग्रहण करता है।

प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध तो योग के निमित्त से होता है और स्थिति बन्ध और अनुभाग बन्ध कषाय के निमित्त से होता है।

कर्मो के नाम और लक्षण

श्री भगवतीसूत्र शतक ८ उद्देशा ६ मे कर्मो की प्रकृति-बन्ध के ८५ कारण बताये और श्री पन्नवणा सूत्र पद २३ उद्देशा १ मे कर्म भाग के ६२ कारण बताये है वे इस प्रकार है।

कर्मो के नाम—१ ज्ञानावरणीय २ दर्शनावरणीय ३ वेदनीय ४ मोहनीय ५ आयु ६ नाम ७ गोत्र और ८ अन्तराय।

लक्षण—१ वस्तु के विशेष धर्म को जानना 'ज्ञान' कहलाता है और जिसके द्वारा ढाका जाय उसे ज्ञानावरणीय कर्म' कहते है। जैसे बादलो से सूर्य ढँक जाता है।

२ वस्तु के सामान्य धर्म का जानना 'दर्शन' कहाता है, उस दर्शन को आच्छादित करने वाले कर्म को 'दर्शनावरणीय' कहते हैं। जैसे द्वारपाल के रोक देने पर राजा के दर्शन नही हो पाते।

३ जिस कर्म के द्वारा साता (सुख) और असाता (दुःख)

का वेदन (अनुभव) हो उसे 'वदनीय कम' कहते हैं। जसे शहद लिपटी तलवार क चाटने से सुग और जीभ कटने से दुख होता है।

४ जिससे आत्मा मोहित (–सत और असत के ज्ञान से शून्य) हो जाय उसे 'मोहनीय कम' कहते हैं। जैसे मदिरा पीने से मनुष्य बभान हो जाता है ।

५ जिस कम के उदय से जीव चार गतियो मे रुका रहे उसे 'आयु कम' कहते हैं। जसे वडी मे बँधने से अपराधी रुक जाता है–पराधीन हो जाता है।

६ जिस कम से आत्मा, गति आदि नाना पर्यायो का अनुभव करे–(शरीर आदि बने या जो जीव के अमूतत्व गुण का न प्रगट होने दे) उसे 'नामकम' कहते हैं। जसे चित्रकार अनेक प्रकार के चित्र बनाता है।

७ जिस कम के उदय से जीव उच्च नीच कुलो मे उत्पन्न हो उसे 'गोत्र कम' कहते हैं। जसे कुभकार छाट बडे बतन बनाता है।

८ जिस कम से दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीय (शक्ति) मे विघ्न उत्पन्न हो उसे 'अन्तराय कम' कहते हैं। जसे राजा की आज्ञा होने पर भी भडारी दान प्राप्ति म बाधक होता है।

कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ–

आठ कर्मों की १४८ प्रकृतियाँ है। यथा–ज्ञानावरणीय की

पाच ५, दशनावरणीय की नौ ६ वेदनीय की दो २, मोहनीय की अट्ठाईस २८, आयु कम की चार ४, नाम कम की तिरानवे ६३, गोत्र कम की दो २ और अन्तराय कम की पांच ५, प्रकृतिया है ।

प्रकृतियों‡ के नाम

१ ज्ञानावरण* की प्रकृतिया ५– १ मतिज्ञानावरणीय+ २ श्रुतज्ञानावरणीय ३ अवधिज्ञानावरणीय ४ मन पयाय ज्ञानावरणीय और ५ केवलज्ञानावरणीय ।

२ दशनावरणीय की प्रकृतिया ६–१ निद्रा २ निद्रानिद्रा ३ प्रचला ४ प्रचलाप्रचला ५ स्त्यानगद्धि ६ चक्षुदशनावरण ७ अचक्षदशनावरण ८ अवधिदशनावरण और ६ केवलदशनावरण ।

जिसके उदय से सुख से सोवे और सुख से जागे उसे 'निद्रा' प्रकृति कहते हैं । जिसके उदय से एसी निद्रा आवे जो आवाज देने से टूटे उसे 'निद्रानिद्रा' प्रकृति कहते है । जिसके उदय से

---

‡ यहा प्रकृतियों का अथ 'अवान्तर भेद' है । यो तो सामान्य रूप से एक प्रकृति है, उसके उल्लिखित आठ भेद है । आठों के विवक्षा विशेष से १४८ भेद है । अन्य विवक्षाओं से कम या अधिक भेद हो सकते है । इसीलिए १५८ भेद भी हो जाते है ।

* ज्ञानावरणीय कम से ज्ञान का सवथा अभाव नहीं होता, परन्तु अव्यक्त होजाता है । जैसे बादलों से सूय का अभाव नहीं हो जाता, परन्तु अप्रगट हो जाता है ।

+ जो मतिज्ञान को ढके । इसी प्रकार चारों के लक्षण समझने चाहिए ।

बठे बठे नीद आव उमे 'प्रचला' कहते हैं। जिसके उदय से चलत फिरते नीद अ वे उस 'प्रचला प्रचला' कहते हैं और जिसके उदय से जाग्रत अवस्था म सोचा हुआ कार्य सुप्त अवस्था मे कर डाले उसे 'स्त्यानगद्धि●' प्रकृति कहते हैं।

३ वेदनीय कम की दा प्रकृतिया १—साता वदनीय और २ असातावेदनीय।

४ मोहनीय कम की २८ प्रकृतिया हैं। इनके मुख्य दो भेद है—१ दशन मोहनीय और २ चारित्र मोहनीय ४५। दशन माहनीय की तीन प्रकृतिया हैं—१ मिथ्यात्व मोहनीय २ मिश्र मो० और ३ सम्यक्त्व मोहनीय। चारित्र मोहनीय के भी दा भेद है—कषाय मोहनीय और नाकषाय माहनीय। कषाय मोहनीय के सोलह भद हैं—अनन्तानुबन्धी १ क्रोध २ मान ३ माया और ४ लोभ, अप्रत्याख्यानी ५ क्रोध ६ मान ७ माया और ८ लाभ, प्रत्याख्यानावरण ६ क्रोध १० मान ११ माया और १२ लोभ

● इस निद्रा में वासुदव का आधा बल आ जाता है। उस समय जीव इस निद्रा में ही उठ कर पेटी खालता है उसम से गहनों का डब्बा निकाल कर कपडे में पोटली बाधता है और नदी किनारे जाकर एक हजार मन की शिला ऊँची उठा कर पोटली को नीचे दबा देता है। फिर नदी में कपडे धो कर घर चला आता है। लेकिन जागन पर कुछ भी स्मरण नहीं रहता। छह महीने पश्चात जब दूसरी बार ऐसी निद्रा आती है, तब फिर वहा जाकर वही डिब्बा उठा लाता है। इस निद्रा वाला मनुष्य आयु कम न बँध चुका हो, तो नरक गति में जाता है। यह उत्कृष्ट स्त्यानगद्धि निद्रा की बात है।

मज्वलन का १३ क्रोध १४ मान १५ माया और १६ लोभ । नोकपाय× के नौ भेद हैं–१ हास्य २ रति ३ अरति ४ भय ५ शोक ६ जुगुप्सा ७ स्त्रीवेद ८ पुरुपवेद और ९ नपुसकवेद–ये सब मिलाकर अट्ठाईस भेद है ।

५ आयु कम की ४ प्रकृतिया–१ नरकायु, २ तिर्यचायु, ३ मनुष्यायु और ४ देवायु ।

६ नामकम की ९३ प्रकृतिया–४ गति (नरक, तियच, मनुष्य और देव) ५ जाति (एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय) ५ शरीर (औदारिक वैक्रिय आहारक तैजस और कामण) ३ अगोपाग (औदारिक, वक्रिय और आहारक) ५ बन्धन (औदारिक, वैक्रिय आहारक, तजस और कामण) ५ सघात (औदारिक, वक्रिय, आहारक तजस और कामण) ६ सस्थान (समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमडल सादि, वामन, कुब्जक और हुण्डक) ६ सहनन (वज्रऋषभनाराच, ऋपभ नाराच, नाराच अर्द्धनाराच कीलक और सेवात) ५ वण (कृष्ण, नील रक्त, पीत और श्वेत) २ ग ध (सुगध और दुगध) ५ रस (तीखा, कडुवा, कसायला, खट्टा और मीठा) ८ स्पश (कठोर, कोमल, हलका भारी, चिकना, रूखा ठण्डा और गम) ४ आनुपूर्वी (नरक तियच, मनुष्य और देव) १ अगुरुलघु १ उपघात १ पराघात १ उच्छवास १ आतप १ उद्योत १ निर्माण १ तीर्थंकर २ विहायोगति (शुभ–मनाज्ञ अशुभ–अमनोज्ञ) १ त्रस

× कषायों को हास्य आदि उत्तजित करते ह और उनके सहचारी ह इसलिए उन्हें नो (ईषत) कषाय कहते ह ।

१ स्थावर १ बादर १ सूक्ष्म १ पर्याप्त १ अपर्याप्त १ प्रत्येक १ साधारण १ स्थिर १ अस्थिर १ शुभ १ अशुभ १ सुभग १ दुभग १ सुस्वर १ दुस्वर १ आदेय १ अनादेय १ यश कीर्ति १ अयश कीर्ति। ये तिरानवे प्रकृतिया नामकर्म की हैं। इनमें निम्न लिखित दस और बढा देने से १०३ हो जाती हैं–१ औदारिक वैक्रिय बंधन, २ औदारिक आहारक बंधन, ३ औदारिक तैजस बंधन, ४ औदारिक कार्मण बंधन, ५ वैक्रिय औदारिक बंधन, ६ वैक्रिय तैजस बंधन, ७ वैक्रिय कार्मण बंधन, ८ आहारक तैजस बंधन, ९ आहारक कार्मण बंधन और १० तैजस कार्मण बंधन, ये एक सौ तीन प्रकृतिया है।

७ गोत्रकर्म की २ प्रकृतिया–१ उच्चगोत्र २ और नीचगोत्र।

८ अंतराय कर्म की ५ प्रकृतिया–१ दानांतराय २ लाभान्तराय ३ भोगांतराय ४ उपभोगांतराय और ५ वीर्यांतराय।

कर्म बंध के कारण और फल

१ ज्ञानावरणीय कर्म छह प्रकार से बंधता है। यथा–१ णाणपडिणीययाए–ज्ञान और ज्ञानी की प्रत्यनीकता (विरोध) करने से २ णाणणिण्हवणयाए–ज्ञान एवं ज्ञानदाता का अपलाप करने (लोप करने–छुपाने) से, ३ णाणंतराएण–ज्ञान प्राप्त करने वाले को अंतराय डालने (बाधक बनने) से ४ णाणप्पओसेण–ज्ञान व ज्ञानी से द्वेष करके, ५ णाणच्चासायणाए–ज्ञान व ज्ञानी की आशातना करने से और ६ णाणविसंवायणाजोगण–ज्ञानी से विसंवाद (वितण्डावाद) करने से।

इस कर्म का फल दस प्रकार का है–१ श्रोत्र इन्द्रिय का

आवरण २ श्रुतज्ञान का आवरण ३ चक्षुइन्द्रिय का आवरण ४ चक्षु इन्द्रिय से होने वाले नान का आवरण ५ घ्राण इन्द्रिय का आवरण ६ घ्राण ज्ञान का आवरण ७ रमना इन्द्रिय का आवरण ८ रसना ज्ञान का आवरण ९ स्पशनेन्द्रिय का आवरण और १० स्पश ज्ञान का आवरण।

२ दशनावरणीय कम छह प्रकार से बँधता है–१ यथा–दशन और दशनी की प्रत्यनीकता (विरोध) करने मे २ दशन एव दशनी का अपलाप करने (लोप करने–छुपाने) से ३ दशन प्राप्त करनवाले का अन्तराय डालने (बाधक बनने) से ४ दशन व दशनी से द्वष करके ५ दशन व दशनी की आशातना करने स और ६ दशनी म विसवाद (वितण्डावाद) करने से।

इस कम के फल नौ प्रकार के हैं–१ निद्रा २ निद्रानिद्रा ३ प्रचला ४ प्रचलाप्रचला ५ स्त्यानगृद्धि ६ चक्षुदशनावरण ७ अचक्षु दशनावरण ८ अवधिदशनावरण और ९ केवलदशनावरण।

३ साता वेदनीय कम दस प्रकार स बँधता है। यथा–पाणाणु कपयाए–द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवो पर अनुकम्पा (दया) करने से २ भूयाणुकपयाए–वनस्पतिकाय के जीवा की अनुकम्पा करने म ३ जीवाणुकपयाए–पचेन्द्रिय जीवो की अनुकम्पा करने से ४ सत्ताणुकपयाए–पथिवीकायादि चार स्थावरकाय जीवो की अनुकम्पा करन से ५ बहूण पाणाण जाव सत्ताण अदुक्खणयाए–उपरोक्त प्राणा भूतो जीवा और सत्वों को दुख नही देने से ६ असोयणयाए–शोक उत्पन्न नही करने स, ७ अजूरणयाए–नही रुलाने, पीडित नही करने से, ८ अति-

प्पणयाए–आसू नही गिराने से, ६ अपिट्टणयाए–नही पीटने स और १० अपरियावणयाए–परिताप (दु ख) उत्पन नही करने से।

इस कम का फल आठ प्रकार का है–मनाज्ञ शब्द २ मनो हर रूप ३ मनोहर गध ४ मनोहर रस ५ मनोन स्पश ६ इच्छित सुख ७ अच्छ वचन और ८ शारीरिक सुख का प्राप्त हाना।

(ख) असातावेदनीय बारह प्रकार स बँधता है–

१ प्राण भूत जीव और सत्व को दु ख दने से २ शाक कराने से ३ झुराने ४ रुलाने ५ मार पीट करने ६ परिताप उत्पन्न करने ७ बहुत दु ख देन ८ बहुत शाक कराने ६ बहुत झुराने १० बहुत रुलाने ११ बहुत मार पीट करने आर १२ बहुत परिताप उत्पन्न करने से।

इसका फल आठ प्रकार का है–१ अमनोन शब्द २ अम नोज्ञ रूप ३ अमनोज्ञ गध ४ अमनाज्ञ रस ५ अमनाज्ञ स्पश ६ मन का दु ख ७ वचन का दु ख और ८ काया का दु ख।

४ मोहनीय कम छह प्रकार से बँधता है–१ तीव्र क्रोध करने स २ तीव्र मान करने स ३ तीव्र माया करने से ४ तीव्र लोभ करने से ५ तीव्र दशनमोहनीय और ६ तीव्र चारित्र मोहनीय से।

यह कम अट्ठाईस प्रकार से भोगा जाता है–वे अट्ठाईस प्रकार वही हैं जो प्रकृतियो मे गिनाय जा चुके है। उनमे से अनन्तानुबधी चौकडी का लक्षण इस प्रकार है।

१ अनन्तानुबधी क्रोध, जसे पत्थर पर लकीर करने से वह मिट नही सकती अथवा पवत के फटने से जो दरार होती

है, उसका मिलना कठिन है, उसी प्रकार जो क्रोध शात न हो वह अनतानुबन्धी क्रोध है। अनन्तानुबन्धी मान, जैसे पत्थर का खभा नही नमता, वसे ही जो मान दूर न हो उसे अनन्तानुबधी मान कहते हैं। अनन्तानुबधी माया जैसे बिलकुल टेढी मेढी कठिन बास की जड का टढापन मिट नही सकता, उसी प्रकार जो माया अमिट हो उसे अनन्तानुबन्धी माया कहते है। अनन्तानुबन्धी लोभ जैसे किरमिची रग का छूटना दुष्कर है, उसी प्रकार जो लोभ छूट न सके उसे अनन्तानुबन्धी लोभ कहते है।

इस चौकडी से नरक गति मे जाना पडता है। स्थिति यावज्जीवन की है और सम्यक्त्व का घात करती है।

२ अप्रत्याख्यानी चोक के क्रोध का लक्षण-पानी सूखने से तालाब मे जो दरार पड जाती है, वह आगामी वर्ष मे वर्षा होने पर मिटती है उसी प्रकार जो क्रोध विशेष परिश्रम से शान्त हो उसे अप्रत्याख्यानी क्रोध कहते है। मान-हाथी दात के खभे की तरह जो बडी मुश्किल से दूर हो, वह अप्रत्याख्यानी मान है। माया--मेढ के सीग की तरह जो कठिनाई से मिटे उसे अप्रत्याख्यानावरण माया कहते हैं। लोभ--गाडी के ओगन की तरह अति कष्ट से छूटे वह अप्रत्याख्यानी लोभ है।

इस चौकडी मे तिर्यच गति होती है। इसकी स्थिति बारह महिने की है। यह एक देश सयम का घात करती है।

३ प्रत्याख्यानावरण चोक का लक्षण-क्रोध जसे रेत मे खिची हुई लकीर बहुत काल तक नही रहती, इसी प्रकार जो

क्रोध बहुत काल तक न ठहरे, उसे प्रत्याख्यानावरण क्रोध कहते है। मान-बेत के खम्भ की तरह जिस मान को दूर करने के लिए बहुत अधिक श्रम न करना पड, उसे प्रत्याख्यानावरण मान कहते है। माया-चलता हुआ बैल मूतता है तो टेढी लकीर हो जाती है, उनका मिटना अति कष्टसाध्य नही होता उसी प्रकार जिस माया का मिटना कठिन न हो उसे प्रत्याख्यानावरण माया कहते हैं। लोभ-दीपक के काजल की तरह जो लोभ थोडी कठिनाई से छूट उसे प्रत्याख्यानावरण लोभ कहते हैं। इससे चारो गतियो का बन्ध हो सकता है। स्थिति चार महीने की है। यह सकल सयम का घात करती है।

४ सज्वलन चौक का स्वरूप-क्रोध-पानी मे खीची हुई लकीर तरह जो क्रोध शीघ्र ही शान्त हो जाता है, वह स० क्रोध है। मान-तिनके के खम्ब के समान शीघ्र ही नम जाय, उसे स० मान कहते है। माया-बाँस का छिलका जसे सरलता से सीधा किया जा सकता है उसी प्रकार जो माया बिना विशेष श्रम के दूर हो जाय उसे स० माया कहते है। लोभ-हल्दी के रग के समान जो सहज ही छूट जाय उसे सज्वलन लोभ कहते है।

इस चौकडी से देवगति होती है। क्रोध की स्थिति दो महिने की, मान की एक महीने की, माया की पन्द्रह दिन की और लोभ की अन्तमुहूर्त की है। यह कषाय यथाख्यात चारित्र का घात करती है। (यह कषाय का सामान्य लक्षण है)

ये सोल्ह भेद कषाय के और पूर्वोक्त नौ भेद नोकषाय के, इस प्रकार पच्चीस प्रकार से मोहनीयकर्म भोगा जाता है।

५ आयुकर्म सोलह प्रकार से बँधता है और चार प्रकार से भोगा जाता है–

नरकायु ४ प्रकार से बधता है–१ महाआरम्भ करने से, २ महापरिग्रह करने से ३ पचेंद्रिय की घात करने से और ४ मद्य मास का सेवन करने से।

तियचायु बध के कारण–१ माया करने से, २ गूढ माया करने से, ३ असत्य बोलने से ४ न्यूनाधिक नापने तोलने से।

मनुष्यायु बध के कारण–१ प्रकृति की भद्रता से २ विनीतता से ३ दयाभाव रखने से और ४ मद मत्सर आदि से रहित होने से।

देवायु बध के कारण–१ सराग सयम पालने से २ देश–सयम पालने से ३ बाल तपस्या करने से और ४ अकाम निजरा करने से।

आयुकर्म चार प्रकार से भोगा जाता है–१ नरक आयु २ तियच आयु ३ मनुष्य आयु और ४ देव आयु।

नामकर्म आठ प्रकार से बँधता है। यह दो प्रकार का है–१ शुभ नामकर्म और २ अशुभ नामकर्म।

शुभ नामकर्म चार प्रकार से बँधता है–१ काया की सरलता २ वचन की सरलता ३ मन की सरलता और ४ विसवाद रहितता से। यह चौदह प्रकार से भोगा जाता है–१ इष्ट शब्द २ इष्ट रूप ३ इष्ट गध ४ इष्ट रस ५ इष्ट स्पर्श ६ इष्ट गति ७ इष्ट स्थिति ८ इष्ट लावण्य ६ इष्ट यश कीर्ति १० इष्ट उत्थान कर्म बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम ११ इष्ट स्वर १२ कान्त

स्वर १३ प्रिय स्वर और १४ मनाज्ञ स्वर से।

अशुभ नामकर्म चार प्रकार से बँधता है–१ काया की वक्रता (वाकापन) २ वचन की वक्रता ३ मन की वक्रता और ४ विसवाद योग सहितता से। यह चौदह प्रकार से भोगा जाता है–१ अनिष्ट शब्द २ अनिष्ट रूप ३ अनिष्ट गंध ४ अनिष्ट रस ५ अनिष्ट स्पर्श ६ अनिष्ट गति ७ अनिष्ट स्थिति ८ अनिष्ट लावण्य ९ अनिष्ट यश कीर्ति १० अनिष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम ११ हीन स्वर १२ दीन स्वर १३ अप्रिय स्वर और १४ अमनाज्ञ स्वर से।

७ गोत्र कर्म सोलह प्रकार से बँधता और सोलह प्रकार से भोगा जाता है। इसके दो भेद हैं–१ उच्च गोत्र और २ नीच गोत्र। उच्च गोत्र आठ प्रकार से बँधता है–१ जाति+ का मद (घमण्ड) न करने से २ कुल× का मद न करने से ३ बल का मद न करने से ४ रूप का मद न करने से ५ तपस्या का मद न करने से ६ श्रुत (ज्ञान) का मद न करने से ७ लाभ का मद न करने से और ८ एश्वर्य का मद न करने से। यह उच्च गोत्र आठ प्रकार से भोगा जाता है, अर्थात इन आठ का मद न करे तो उच्च गोत्र पाता है।

नीच गोत्र कर्म आठ प्रकार से बँधता और आठ प्रकार से भोगा जाता है–पूर्वोक्त जाति कुल बल रूप तप श्रुत लाभ और ऐश्वर्य का घमण्ड करने से बँधता है और इनका घमण्ड करने

+ मातपक्ष को 'जाति' कहते हैं।
× पितपक्ष को 'कुल' कहते हैं।

से नीच गोत्र की प्राप्ति होती है।

८ अन्तराय कम पाच प्रकार से वँधता और पाच प्रकार से भागा जाता है। यह दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीय मे अतराय डालने से बँधता है और इससे पाचो अन्तरायो की प्राप्ति होती है।

कर्मो की स्थिति और आबाधा काल*

ज्ञानावरणीय, दशनावरणीय और अतराय कम की जघय स्थिति अतर्मुहूत और उत्कृष्ट तीस कोडाकोडी सागरोपम की है। आवाधा काल ज अ मु उ तीन हजार वप का है। साता वेदनीय की ज स्थिति इर्यापथिकी क्रिया की अपेक्षा दो समय की, सम्परा की अपेक्षा १२ महूत की और उ पद्रह कोडीकोडी सागरोपम की है। आबाधा काल ज अ मु उ डढ हजार वप का है। असातावेदनीय की ज स्थिति एक सागर के सात भागो मे से तीन भाग और पल्योपम से असख्यात भाग कम की और उ तीस कोडाकोडी सागरोपम की है। इसका आवाधा काल ज अ मु उ तीन हजार वप का है। मोहनीय कम की ज स्थिति अतमुहूत और उ सत्तर कोडाकाडी सागरोपम की है। आबाधा काल ज अ म उ सात हजार वप का है। नारकी तथा देवो के आयुकम की स्थिति ज दस हजार वप की, उ तेतीस सागरोपम की। मनुष्य और तियच के आयु कम की ज स्थिति अन्त

---

* कमबध होने के प्रथम समय से लेकर जब तक उस कम का उदय या उदीरणाकरण नहीं होता तब तक का काल 'आबाधा काल' कहलाता है।

मुहूत की, उ तीन पल्यापम की। नामकम की ज स्थिति आठ महूत की, उ वीस काडाकोडी सागरोपम की और आबाधाकाल ज अतमुहूत, उ दा हजार वप का है। गोत्रकम की ज स्थिति आठ महूत की, उ बीस काडाकोडी सागरोपम की तथा आवाधा काल जघय अतर्मुहूत, उत्कृष्ट दो हजार वप का है।

॥ बन्ध तत्त्व समाप्त ॥

९ मोक्ष तत्त्व

मोक्ष—आत्मा का कमरूपी बधन से सवथा छूट जाना 'माक्ष' है। आत्मा के सम्पूण प्रदेशो से सभी कर्मो का क्षय हो जाना 'मोक्ष' कहलाता है।

मोक्ष तत्त्व का विचार नौ द्वारा से किया जाता है—

१ सत्यपद प्ररूपणा द्वार, २ द्रव्य प्रमाण द्वार, ३ क्षेत्र द्वार, ४ स्पशना द्वार, ५ काल द्वार, ६ अतर द्वार, ७ भाग द्वार, ८ भाव द्वार और ९ अल्प-बहुत्व द्वार।

सत्पद प्ररूपणा द्वार का निम्न लिखित चौदह मार्गणाओ के द्वारा भी वणन किया जा सकता है,—

गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कपाय ज्ञान, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व सज्ञी और आहार। ये चौदह मागणाएँ है। इनके अवातर भेद ६२ होत है। यथा-गति ४, इन्द्रिय ५ काय ६ योग ३ वेद ३, कपाय ४, ज्ञान ८ (पाच ज्ञान तीन अज्ञान), सयम ७, (सामायिक चारित्र आदि पाच चारित्र, देशविरति

चारित्र और अविरति) दर्शन ४, लेश्या ६, भव्य २, (भव-सिद्धिक और अभवसिद्धिक) सम्यक्त्व ६, (औपशमिक, सास्वादन, क्षायोपशमिक, क्षायिक, मिश्र और मिथ्यात्व) सज्ञी २, (सज्ञी और असज्ञी) आहारी २ (आहारी और अनाहारी) ये ६२ भेद होते है।

उपरोक्त चौदह मार्गणाओ मे से अर्थात ६२ भेदो मे से जिन जिन भेदो (मार्गणाओ) से जीव मोक्ष जा सकते है। उनके नाम इस प्रकार हैं—

मनुष्य गति, पचेद्रिय जाति, त्रसकाय, भवसिद्धिक, सज्ञी, यथाख्यात चारित्र, अनाहारक, केवलज्ञान और केवलदर्शन, इन दस मार्गणाओ से युक्त जीव मोक्ष जा सकता है। शेष चार मार्गणाओ (कषाय, वेद, योग, लेश्या) युक्त जीव मोक्ष नही जा सकता।

२ द्रव्य द्वार—सिद्ध जीव अनन्त है।

३ क्षेत्र द्वार—वे सभी सिद्ध जीव लोकाकाश के असख्यातवे भाग मे अवस्थित है।

४ स्पर्शना द्वार—सिद्ध भगवान की जितनी अवगाहना है उससे स्पर्शना अधिक है। इसका कारण यह है कि जितने आत्म प्रदेश हैं, अवगाहना तो उतनी ही रहेगी परन्तु अवगाहना के चारो ओर नीचे ऊपर आकाश प्रदेश लगे हुए है इसलिए अवगाहना से स्पर्शना अधिक है।

५ काल द्वार—एक सिद्ध की अपेक्षा से सिद्ध जीव आदि अनन्त हैं और सभी सिद्धो की अपेक्षा से अनादि अनन्त हैं।

६ अतर द्वार–सिद्ध जीवो मे अतर नही है, क्योकि सिद्ध अवस्था को प्राप्त करने के बाद फिर वे ससार मे आकर जन्म नही लेते ।

७ भाग द्वार–सिद्ध जीव, ससारी जीवो के अनन्तवे भाग हैं । ससारी जीव सिद्ध जीवो से अनन्त गुण अधिक हैं ।

८ भाव द्वार–औपशमिक क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक, इन पाच भावो मे से सिद्ध जीवो मे क्षायिक और पारिमाणिक–ये दो भाव पाये जाते हैं । केवलज्ञान केवलदर्शन क्षायिक भाव मे है और जीवत्व पारिणामिक भाव मे है ।

९ अल्पबहुत्व द्वार–सब से थोडे नपुसक लिंग सिद्ध है । स्त्रीलिंग सिद्ध उनसे सख्यातगुण अधिक है और पुरुषलिंग सिद्ध उनसे सख्यात गुण अधिक हैं । इसका कारण यह है कि नपुसक एक समय मे उत्कृष्ट दस मोक्ष जा सकते हैं, स्त्रीलिंग एक समय मे उत्कृष्ट बीस और पुरुषलिंग एक समय मे उत्कृष्ट १०८ मोक्ष जा सकते हैं ।

मनुष्य गति से ही जीव मोक्ष जा सकते हैं । नरकगति, तिर्यंचगति और देवगति से कोई भी जीव मोक्ष नही जा सकता ।

१ सब से थोडे जीव चौथी नरक से निकल कर मनुष्य हो सिद्ध हुए ।
२ तीसरी नरक से निकल कर सिद्ध हुए सख्यातगुण ।
३ दूसरी नरक से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण ।
४ वनस्पतिकाय से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण ।
५ पृथ्वीकाय से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण ।

६ अप्काय से निकल कर मनुष्य हो सिद्ध हुए सख्यात गुण ।
७ भवनपति देवियो से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण ।
८ भवनपति दवो से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण ।
६ वाणव्य तर दवियो से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण ।
१० वाणव्य तर देवो से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण ।
११ ज्योतिपी देवियो से निकल कर मिद्ध हुए सख्यात गुण ।
१२ ज्योतिपी दवा से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण ।
१३ मनुष्यिनी से सिद्ध हुए सख्यात गुण ।
१४ मनुष्य से मिद्ध हुए सख्यात गुण ।
१५ पहली नरक से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण ।
१६ तियचिनी से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण ।
१७ तियच से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण ।
१८ अनुत्तरविमानवासी देवो से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण ।
१६ नवग्रवेयक देवलोका से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण ।
२० बारहवे देवलोक से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण ।
२१ ग्यारहवे देवलोक से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण।
२२ दसवे देवलोक से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण ।
२३ नौवे देवलोक से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण ।
२४ आठवे देवलोक से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण ।
२५ सातवे देवलोक से निकल कर मिद्ध हुए सख्यात गुण ।
२६ छठे देवलोक से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण ।

२७ पाचवे देवलोक से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण।
२८ चौथे देवलोक से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण।
२९ तीसरे देवलोक से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण।
३० दूसरे देवलोक की देवियो से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण।
३१ दूसरे देवलोक के देवो से निकल कर सिद्ध हुए सख्यात गुण।
३२ पहले देवलोक की देवियो से निकल कर सिद्ध हुए सरयात गुण।
३३ पहले देवलोक के देवो से निकल कर सिद्ध हुए सरयात गुण।

एक समय से आठ समय तक एक एक से लेकर बत्तीस तक जीव मोक्ष जा सकते है। इसका तात्पय यह है कि पहले समय मे जघन्य एक दो और उत्कृष्ट वत्तीस जीव सिद्ध हो सकते हैं। इसी प्रकार दूसरे समय मे, तीसरे चौथे यावत आठव समय तक जघन्य एक, दो और उत्कृष्ट बत्तीस जीव मोक्ष जा सकते हैं। आठ समयो के बाद निश्चित रूप से अन्तर पडता है।

तेतीस से लेकर अडतालीस तक जीव निरन्तर सात समय तक मोक्ष जा सकते है। ऊनपचास से लेकर साठ तक जीव निरन्तर छह समय तक मोक्ष जा सकते है। इकसठ से बहत्तर तक जीव निरन्तर पाच समय तक, तिहत्तर से चौरासी तक निरन्तर चार समय तक, पिचासी से छयानवे तक निरन्तर तीन समय तक, सत्तानवे से एक सौ दो तक निरन्तर दो समय तक

और एक सौ तीन से लेकर एक सौ आठ तक जीव एक समय मे मोक्ष जा सकते है, इसके पश्चात अवश्य अन्तर पडता है। दो तीन आदि समय तक निरन्तर उत्कृष्ट सिद्ध नही हो सकते।

इति मोक्ष तत्त्व समाप्त

नव तत्त्व जानने का लाभ—

जीवाइनवपयत्थे जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्त।
भावण सद्दहतो, अयाणमाण वि सम्मत्त॥

जो जीवादि नव तत्त्वा को जानता है, उसे सम्यक्त्व प्राप्त होता है। जीवादि तत्त्वो को नही जानने वाले भी यदि शुद्ध अन्तःकरण से जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए नव तत्त्वा पर श्रद्धा रखते हैं, तो उन्हे भी सम्यक्त्व प्राप्त होता है। यथा—

सव्वाइ जिणेसरभासियाइ वयणाइ णण्णहा हुति।
इय बुद्धी जस्स मणे, सम्मत्त णिच्चल तस्स॥

अर्थ—'जिनेन्द्र भगवान के कहे हुए सभी वचन सत्य है"— ऐसी जिसकी बुद्धि हो, उसे निश्चय से सम्यक्त्व प्राप्त होता है।

अतोमुहुत्तमित्त वि फासिय हुज्ज जहिं सम्मत्त।
तेसिं अवडढपुग्गल–परियट्टो चेव ससारो॥

अर्थ—जिन जीवो ने अन्तमुहूर्तमात्र भी समकित की स्पर्शना कर ली, उनको उत्कृष्ट अर्द्ध पुदगल परावर्तन से अधिक ससार मे परिभ्रमण नही करना पडता। वे अर्द्ध पुदगल परावर्तन के भीतर ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

अद्ध पुदगल परावतन–

उस्सप्पिणी अणता, पुग्गलपरियट्टा मुणेयव्वो ।
तेणता तीअद्धा अणागयद्धा अणतगुणा ।।

अथ–अनन्त उत्सर्पिणी और अनन्त अवसर्पिणी बीत जाने पर एक पुदगल परावतन हाता है। इस तरह के पुदगल परावतन अनन्त हो चुके हैं और अनन्त हाने वाले है।

भव्य जीव इन नव तत्त्वा का अभ्यास कर के श्री जिनेश्वर भगवान की आज्ञा का सम्यक श्रद्धान करे और विशुद्ध आचरणरूप सम्यक चारित्र का पालन कर के मोक्ष पद प्राप्त करें। यही नव तत्त्वा का जानन का सार है।

।। इति नव तत्त्व समाप्त ।।

।। जैन सिद्धात थोक सग्रह भाग २ सम्पूर्ण ।।